॥ ओ३म् ॥

सत्यार्थप्रकाश

का

महत्व

—लेखक—

व्याख्यान वाचस्पति

पं० बिहारीलाल शास्त्री

शास्त्रार्थ महारथी

प्रकाशक :

दयानन्द—संस्थान

वेद मन्दिर, शहीद लेखराम नगर,

दिल्ली-११००३६

दयानन्द संस्थान प्रकाशन का १२१वां पुष्प

प्रकाशक —

पं० राकेशरानी अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर,
शहीद लेखराम नगर, दिल्ली-३६

दूरभाष ८०१२२१/८०१२११

मुद्रक :
संजीव प्रिंटर्स
9/B-27, रोहतक रोड औद्योगिक क्षेत्र,
नई दिल्ली-११०००५

मूल्य : ५) पांच रु० केवल

आर्यसमाज स्थापना दिवस सम्वत् २०३६

सत्यार्थ प्रकाश को पढ़कर ज्ञान का अंधेरा कहीं भी नहीं रह सकता। —वेदभिक्षु:

दिल्ली कार्यालय :
दयानन्द संस्थान
१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग, करौलबाग,
नई दिल्ली-११०००५
दूरभाष : ५६६६३६

अपनी ओर से !

धरती से यदि असत्य समाप्त होकर सभी को सत्य का परिचय हो जाए तो मनुष्य-मात्र दुःख अशान्ति से छुटकारा पाकर अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इस तथ्य को भली-भांति समझ सत्य के परम प्रसारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने महान ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की थी।

सत्यार्थ प्रकाश सत्य का ऐसा स्तम्भ है जिसे पढ़कर मन और मस्तिष्क पर छाया अज्ञान तिमिर स्वत: समाप्त हो, ज्ञान और सत्य प्रकट हो, अन्तर को आलोक से भर देता है। धर्म के नाम पर अधर्म, पुण्य के नाम पर पाप और सत्य के नाम पर असत्य तभी तक रह सकता है, जब तक कि वहां पर सत्यार्थ प्रकाश नहीं पहुंचा।

वस्तुत: आज भटके हुए मानव समुदाय को मृत्यु मार्ग से हटाने और जीवन पथ पर चलाने की सामर्थ्य यदि किसी एक ग्रन्थ में है तो वह है सत्यार्थ-प्रकाश।

'सत्यार्थ प्रकाश' उस महान् व्यक्ति की रचना है जिसने जीवन भर कभी असत्य से समझौता नहीं किया। जिसके मन में कभी किसी के प्रति एक पल के लिए द्वेष नहीं उभरा। जो मनुष्य-मात्र के कल्याण और उत्थान के लिए मृत्यु पर्यन्त संघर्ष करता रहा। जिसके हृदय में सभी के प्रति मां की ममता और स्नेह का सागर उमड़ता था।

ऋषि दयानन्द का खण्डन किसी मत विशेष के प्रति विरोध का सूचक न होकर अज्ञान, अधर्म और असत्य की समाप्ति के लिए था। वे चाहते थे कि—

१. मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य जाने और एक परमात्मा को अपना उपास्य देव मान मोक्ष मार्ग का पथिक बने।

२. मनुष्य और मनुष्य के मध्य खड़ी भेदभाव की दीवारों को वे मानव-जाति के पतन और द्वेष का कारण मानते थे। इसलिए उनका लक्ष्य मनुष्यों के चलाए मतवाद को समाप्त कर धर्म के उस स्वरूप को स्थापित करना था, जिसमें व्यक्ति, देश, काल, जाति, वर्ग विशेष के लिए कोई पक्षपात न हो।

३. सत्य, प्रेम, न्याय और ज्ञान ऋषि के अस्त्र थे। इन्हीं के बल पर, इन्हीं का प्रसार उनका इष्ट और मनुष्य मात्र की उन्नति उनका चरम लक्ष्य था।

इसी महान ग्रन्थ को सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाने व उस पर किए आरोपों का उत्तर देने के लिए विद्वान् लेखक श्री पं० बिहारीलाल शास्त्री ने यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। इसके लिए सभी उनके कृतज्ञ रहेंगे।

आप इसे पढ़कर सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें। आपके जीवन में सत्य का प्रकाश ज्योतिर्मय हो यह हमारी कामना है। —वेद भिक्षुः

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य का अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।……… जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो ……… क्योंकि सत्य उपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

❁ ❁ ❁
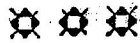
—सर्व सत्य का प्रचार कर, सबको ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा के सबसे सबको सुख-लाभ पहुंचाने का मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।

❁ ❁ ❁

—मैं अपना मंतव्य उसी को जानता हूं जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई कल्पना का मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना-छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती
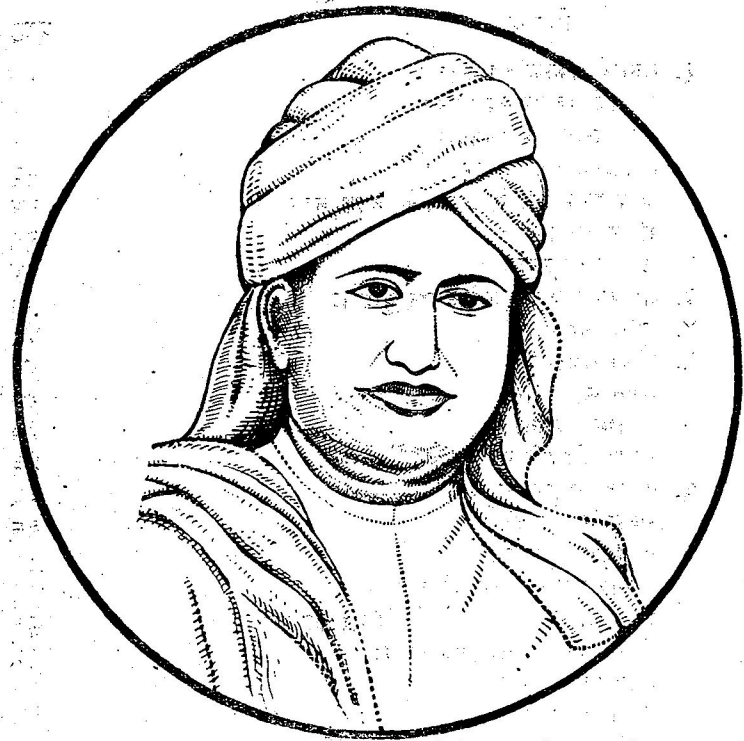
आदि मनुज से, सुन्दरतम तुम, आदि 'प्राण' से सुन्दर प्राण।
तुम 'मानव' थे युगमानव या, मानवता के ही अभियान।
तुम अद्भुत थे, मन्जुल कवि की, शाश्वत वीणा के अनुरूप।
तुम में झाँक रहा था ऋषिवर! सतयुग का अभिनव प्रारूप।
बीच भंवर जग नाव पड़ी थो, तुम ही खोज सके पतवार।
हे युग स्रष्टा! हे युग द्रष्टा! हे युग गौरव! युग आधार!!!

—राकेश रानी

विषय–सूची

विषय	पृष्ठ

सत्यार्थ प्रकाश का महत्त्व	१७
सत्यार्थ प्रकाश का रहस्य	१७
एकसत्-विप्राबहुधावदन्ति	१९
व्याकरण की शंकाएं	२३
अन्य सम्प्रदायों में ईश्वर के अनेक नाम	२४
मंगलाचरण	२६
द्वितीय समुल्लास	३४
आत्माओं का प्लेनचिट पर बुलाना	३८
तृतीय समुल्लास	४१
चौथा समुल्लास	४८
मंगत की कहानी	५२
सन्तान बदलना	५३
सालम मिसरी का नुस्खा	५३
पांचवां समुल्लास	६५
संन्यासी और भिक्षु	६८
एकादश समुल्लास	९१
भारतोत्पन्न मतो की आलोचना	९१
मांस खाने न खाने पर स्वामी जी का मत	११३
विज्ञानादिभाव वा तदप्रतिषेध:	११५
राधा स्वामी मत	११८
११वां समुल्लास	१२०
बौद्धों के चार सम्प्रदायों के दार्शनिक भेद	१२२
भूदान और जैन विचार धारा	१४१
१३वां समुल्लास	१४५
ईसाई मत की समीक्षा	१४५
यहोशू के कारनामे	१५६
ईसाई मत का मूलाधार	१५९
१४वां समुल्लास	१६७
सप्तम समुल्लास	१९३
ईश्वर और वेद	१९३
कुरान और इंजील	२१३
नवम समुल्लास	२२२
मुक्ति के साधन	२३१
दशम समुल्लास	२३४

सत्यार्थ प्रकाश का महत्व

'सत्यार्थ प्रकाश' श्री स्वामी दयानन्द जी का लिखा एक महान् क्रान्तिकारी ग्रन्थ है। इसमें धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति पर ही विचार नहीं किये गये हैं किन्तु राजनैतिक क्रान्ति की भी विचार—चिनगारियां इसमें पायी जाती हैं। श्री स्वामी जी के घोर विरोधी पं० अखिलानन्द अपने पुस्तक सत्यार्थ प्रकाशालोचन में लिखते हैं :—

सत्यार्थ प्रकाश का रहस्य

बहुत से अनपढ़ लोग प्राय: कहा करते हैं कि स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश धार्मिक दृष्टि से लिखा है परन्तु विचारपूर्वक आद्योपान्त उसके पढ़ने से मालूम होता है कि यह ग्रन्थ हिन्दुस्तान को इंग्लैंड बनाने के लिये लिखा गया है। और उसमें स्वराज्य का भली प्रकार बीज बोया गया है। हम इसके कतिपय उदाहरण देते हैं :—

१. जब से पुलिस का प्रबन्ध भया है तब से बहुधा अन्याय व्यवहार ही सुनने में आता है। इससे प्रजा को बहुत क्लेश प्राप्त होता है।

—संस्करण १ पृ० ३८९

२. अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद परस्पर विरोध से आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखंड स्वतन्त्र स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है।

—संस्करण १३ पृ० २३७

३. दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दु:ख झेलने

पड़ते हैं। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

४. मतमतान्तर के आग्रहरहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है। पृष्ठ २३८

५. सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे। अब इनकी सन्तानों का अभाग्योदय होने से राज-भ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं। पृष्ठ २९०, २९१

सत्यार्थ प्रकाश के विषय में पण्डित जी ने उस समय इसलिये यह सब कुछ लिखा था कि अंग्रेजी सरकार सत्यार्थप्रकाश को जब्त कर ले। परन्तु अंग्रेज इतना मूर्ख नहीं था जैसा पंडित जी समझते थे। अंग्रेज जानता था कि कांग्रेस के आन्दोलन से निबटना कठिन पड़ रहा है। अब एक और नया धार्मिक विरोध क्यों सिर पर लिया जाये।

उस समय के सनातन-धर्मी उपदेशक प्रायः अमन-सभाओं में काम करते थे। प्रसिद्ध सनातनधर्मी उपदेशक और सनातनधर्म मंडल के नेता पं० दुर्गादत्त जी नाटकी ने अमन-सभाओं में डटकर काम किया तो रायबहादुर की पदवी और कुछ भूमि सरकार से प्राप्त की। अन्य भी कई सनातन धर्मी उपदेशक अमन-सभाओं में काम करते थे।

अस्तु ऊपर के लेख से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ में स्वतन्त्रता की चिनगारियां ही नहीं किन्तु धधकते अंगारे विद्यमान हैं और पंडित अखिलानन्द जी ने यह ठीक लिखा है कि "इसमें (सत्यार्थ प्रकाश में) स्वराज्य का बीज भली प्रकार बोया गया है।"

ईश्वर कृपा से वीरों के बलिदानों और जनता के तप से सत्यार्थ प्रकाश में बोया हुआ बीज अब वृक्ष रूप में है। और पुष्प फल भी उस पर आने लगे हैं।

अब सत्यार्थ प्रकाश की आलोचना में धार्मिक दृष्टिकोण से विचार करना है। इस ग्रन्थ में १४ समुल्लास अर्थात् अध्याय हैं। प्रथम समुल्लास में ईश्वर के सौ से ऊपर नामों के अर्थ दिये गये हैं और यह सिद्ध किया गया है कि यत्र-तत्र दिव्य शक्तियों के जो अनेक नाम आते हैं वे सब एक ही महान् सर्वशक्तिमान ईश्वर के नाम हैं। ये सब नाम ईश्वर ही के हैं यह पक्ष केवल कल्पना के आधार पर नहीं किन्तु वेदोपनिषदों के प्रमाणों से सिद्ध किया गया है। ऋग्वेद मं० १० सू० ८२ में है "यो देवानां नामधा एक एव" देवों के नाम रखने वाला वह एक ही है। यह मन्त्र यजु: १७ वें अध्याय में भी है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः। ऋग् १०।८२

सब ओर जिसके नेत्र हैं, सब ओर जिसके मुख हैं, सब ओर जिसकी भुजायें हैं, सब ओर जिसके पाँव हैं। अर्थात् उसका ज्ञान, दर्शन, गति, क्रिया सब जगह है। भावार्थ है कि वह सर्वव्यापक है और सर्वज्ञ है। सर्वव्यापक और सर्वज्ञ हुए बिना सृष्टि को बना नहीं सकता। और सृष्टि को बनाने वाला वह एक है।

श्री स्वामी जी ने एकेश्वरवाद की मान्यता में जो प्रमाण प्रस्तुत किए हैं वेद-उपनिषद् के अकाट्य प्रमाण हैं।

'इन्द्रं मित्रं' आदि मन्त्र ऋग् १।१६४।४६ का मन्त्र है इसमें कितना स्पष्टतः बताया गया है कि

'एकं सद् ···विप्रा बहुधा वदन्ति

इन्द्र मित्रादि सब सत्-सत्ता एक ही है ज्ञानी लोग बहुत प्रकार से उसे कहते हैं। यह मन्त्र प्रथम मण्डल का है। अतः जो लोग यह बकवास करते हैं कि क्रमशः एकेश्वरवाद का विचार आर्यों ने जाना उनके मुंह पर यह तमाचा है।

डाक्टर ताराचन्द प्रोफेसर हुमायूं कबीर विनोबा भावे आदि जिन लोगों ने यह बकवास की है कि एकेश्वरवाद को स्वामी शंकराचार्य ने इस्लाम से लिया, आर्य लोग बहुदेववादी थे। इन घोर पक्षपातियों—मुसलमानों को खुश करने के लिए झूठे लेख लिखने वालों—के मुंह पर यह मन्त्र (१।१६४।४६) चपत लगा रहा है।

डाक्टर ताराचन्द जैसे संस्कृत-ज्ञान शून्य अभागे हिन्दू लिखते हैं कि एकेश्वरवाद को आचार्य शंकर ने इस्लाम से लिया। पर मुगल शाहजादा संस्कृत का विद्वान् दारा शिकोह उपनिषदों के एकेश्वरवाद की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहा है। और मौलाना सुलैमान नदवी साहब अपने ग्रंथ "अरब और हिन्द के पुराने ताल्लुकात" में लिखते हैं कि एक दिन रसूलुल्लाह पूर्व की ओर मुख किये ध्यान मग्न थे तो साथियों ने पूछा कि हुजूर पूर्व को मुंह करके क्या दुआ पढ़ रहे थे, तो नबी ने फर्माया कि पूर्व की ओर से (भारत से) मुझे वहदानियत (एकेश्वरवाद) की ठंडी हवायें आ रही हैं।

इसी विचार को मुस्लिम लीग के लीडर सर इकबाल ने अपने शेर में यूं लिखा :—

"मीरे अरब को आई ठंडी हवा जहां से,
वहदत की लै सुनी थी दुनियां ने जिस मकां से,
मेरा वतन वही है मेरा वतन वही है।"

पं० हबीबुर्रहमान शास्त्री प्रोफेसर मुस्लिम विश्व-विद्यालय अलीगढ़

अपने ग्रन्थ 'तत्त्व प्रकाश' (ईशोपनिषद् का भाष्य), में लिखते हैं:—

१ उपनिषदों में प्रतिपादित विषय ऐसे गूढ़ और व्यापक हैं कि उनके प्रभाव से प्राय: सभी विद्वान् प्रभावित हो जाते हैं चाहे वे किसी धर्म के अनुयायी क्यों न हों। इसका कारण प्राय: यही प्रतीत होता है कि उनमें प्रधान रूप से एक ऐसे आन्तरिक सत्य का प्रतिपादन किया गया है जो प्रत्येक मनुष्य के अन्त:करण में पहले ही से अंकित है। वेदों के मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग में प्राय: ईश्वर की दिव्य उपाधियों अर्थात् देवताओं का ही वर्णन है किन्तु उपनिषद् भाग तो ब्रह्म, उसका स्वरूप, ब्रह्म प्राप्ति का उपाय, जीव की तात्त्विकस्थिति, ब्रह्म प्राप्ति के बाद जीव की अवस्था इत्यादि के वर्णन से पूरित हो रहा है। पृष्ठ XI

२. उपनिषदों का प्रधान विषय एकत्व अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन है। पृष्ठ XI

यह है मुसलमान विद्वानों की सम्मति कि आर्यों का एकेश्वरवाद अति प्राचीन है।

अब विचारना यह भी तो है कि एकेश्वरवाद के साथ वेदों में बहुदेववाद भी तो है। सब पुराण, उप पुराण और पंडित इन्द्रादि देवों और उनके राजा इन्द्र वरुण आदि को पृथक् देवता मानते हैं। वेदों के प्रत्येक सूक्त और अध्यायों पर भिन्न-भिन्न देवता लिखे हुए हैं। इस विषय में सनातनी पंडित सत्यव्रत जी सामश्रमी वेदाध्यापक कलकत्ता संस्कृत कालेज के विचार पढ़िये। इनका लिखा एक बड़ा ग्रन्थ है 'ऐतरेयालोचन'—इसमें देवताओं पर विचार करते हुए वे लिखते हैं:—

अयमेव पार्थिवो भौतिकोऽग्निः सर्वत्र यज्ञेषु देव इति गृह्यते। नान्य: कश्चन कुत्रचित् जागर्ति कूर्म क्षीरचये स्नात: शशश्रृंग धनुर्धर: ख पुष्प कृत शेखरो वन्ध्यासुत: पौराणिक मानसोद्यान विहारी व्यक्ति विशेष इति।" पृष्ठ १६६

सर्वत्र यज्ञों में देव यह पार्थिव भौतिक अग्नि ही ग्रहण किया जाता है। और कोई कहीं कछुए के दूध में स्नान किए हुए खरगोश के सींग का धनुष लिए हुए आकाश पुष्पों का मुकुट धारण किए हुए, वन्ध्या पुत्र और पौराणिकों के मन में विहार करने वाला कोई व्यक्ति विशेष अग्नि देव अर्थात् देवों का होना निरी कल्पना हैं:—

फिर लिखते हैं:—

'तथा पौराणिक देवताऽकारादि कल्पना नूनं वेदार्थ ग्रहण समर्थ-मतीनां स्त्री शूद्र द्विजवंधु रूपाणां बालधियां धर्मोपदेशादि साहाय्या-

यैव .... तथैव विद्यापरपर्याय वेदाध्ययनहीना बाला: कल्पित देवस्य रूपादौ विश्वसन्त्येव परं न तथा वेदस्वरूप-प्रत्यक्ष-दर्शिनो विद्वांसो वैदिका:।" पृष्ठ १७०

भावार्थ:—पौराणिक देवताओं की कल्पना साधारण बुद्धि वालों को उपदेश देने के लिए है। ऐसे देवताओं के आकार पर वेदज्ञान से हीन लोग विश्वास करते हैं, वेदज्ञ विद्वान् नहीं।

यह तो है एक महान् सनातनी विद्वान् का निर्णय, भिन्न-भिन्न देवों को चेतन मानने वाले पौराणिकों के लिए। अब प्रश्न है कि अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र ये सब जड़ पदार्थों के ही नाम हैं वा ईश्वर के भी?

इस प्रश्न का उत्तर वेदान्त दर्शन अध्याय १ पाद २ सूत्र १० में है:—

'प्रकरणाच्च'

प्रकरण जहां अध्यात्म का प्रकरण है वहां ये नाम ईश्वर के समझे जायेंगे।

पौराणिक पं० अखिलानन्द जी ने आपेक्ष किया है कि चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु, रवि ये नाम संसार में नवग्रह प्रसिद्ध हैं। इन नामों से यदि ईश्वर का ग्रहण किया जाये तो ज्योतिष नामक एक वेदाँग ही व्यर्थ हो जाता है परन्तु यहां क्या है?

"बूढ़ा मरे या जवान, हमें हत्या से काम"

(सत्यार्थ प्रकाश आलोचना)

परन्तु उनकी यह कहावत उनके ही सिर पर चढ़ती है:—

वेद मरे या पुराण, हमें खंडन से काम।

❋ ❋ ❋

जिस बात को वेद कहता है, उसी को पौराणिकों का पंचम वेद महाभारत बता रहा है। पं० अखिलानन्द जी उसका उपहास उड़ा रहे हैं। ये नाम ईश्वर के होने से ज्योतिष व्यर्थ कैसे हो जाएगा? आध्यात्मिक अर्थ और होते हैं, लौकिक अर्थ और। श्री पंडित जी को वेदान्त दर्शन तो देख लेना था:—

प्रकरणाच्च (प्र० अध्याय २।१०)

भगवान् शंकराचाय इस सूत्र पर लिखते हैं :—

"इतश्च परमात्मा एव इह अत्ता भवितुमर्हति यत्कारणम् प्रकरणमिदं परमात्मनः" ।

यहां अर्थात् सूत्र ६ में जो ईश्वर को अत्ता (खाने वाला) कहा है वहां परमात्मा ही हो सकता है । क्योंकि यह प्रकरण परमात्मा का है । चर-अचर स्थावर जगम को वह ग्रहण कर रहा है । अर्थात् सर्वव्यापक है । यहां पर श्री आचार्य शंकर ने उपनिषदों के अनेक प्रमाण दिये हैं । यथा—

"अग्निरन्नादः" बृहदारण्यक उपनिषद् (१।४।६) आदि ।

आकाशस्तल्लिगात् (वे० १।१।२२)

ज्योतिश्चरणाभिधानात् (१।१।२४)

प्राणस्तथानुगमात् । (१।१।२८)

उक्त वेदान्त सूत्रों पर उपनिषदों के प्रमाण देकर आचार्य ने 'ज्योतिः' और 'प्राण' ये नाम ब्रह्म के सिद्ध किये हैं ।

सूत्र १।१।२२ पर आचार्य लिखते हैं:—

"कुतः संशयः उभयत्र प्रयोगदर्शनात्"

पूर्वपक्ष की इस शंका का कि आकाश शब्द पंचभूतों (पृथिवी आदि) वाले आकाश के लिए आता है वा ब्रह्म के लिये ? तो उत्तर में कहा है कि दोनों अर्थों में देखा जाता है फिर संशय क्यों ? अर्थात् आकाश का अर्थ अध्यात्म में ब्रह्म ही रहेगा । पंचभूतों के नामों के जो अर्थ स्वामीजी ने किये हैं उन पर भी पं० जी ने आक्षेप किया है । उनके इस आक्षेप पर भी भगवान् शंकर दंड प्रहार करके आक्षेप को धिक्कार रहे हैं । जो धूल आप सत्यार्थ प्रकाश पर फेंक रहे हैं वह आपके माननीय आचार्य के ऊपर जा रही है । है कुछ पता ?

अच्छा अब वेद में देखिये

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः ।यजु० ३२।१

वही विराट् पुरुष जिसका वर्णन ३१ वें अध्याय में है अग्नि है, वही आदित्य है वही वायु है, वही चन्द्रमा है वही शुक्र है वह ब्रह्मा है, वही आपः (जल) है, वही प्रजापति है ।

ध्यान से पढ़ो ! चन्द्र सूर्य शुक्र आपके ३ ग्रह आ गए । वायु और जल २ भूत आ गए । चाहे आचार्य उव्वट का भाष्य पढ़ो चाहे महीधर का चाहे ऋषि दयानन्द का कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता । इससे अगले मन्त्र में आचार्य उव्वट और महीधर 'विद्युतः पुरुषादधि" में विद्युत् का अर्थ विद्योतते इति जो प्रकाशमान है करके विद्युत् भी ईश्वर नाम बता रहे हैं ।

आगे अपने पंचमवेद महाभारत में पढ़िये :—

चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्वरः ।

अत्रि रत्र्या नमस्कर्त्ता मृगवाणार्यणोऽनद्यः ।।

म० भा० अनुशा० १७।३८

टीकाकार श्री नीलकंठ ने उक्त श्लोक में आये ग्रह का अर्थ राहु किया और ग्रहपति का अर्थ मंगल किया है । वर का अर्थ बृहस्पति और शुक्र किया है । अत्रि का अर्थ बुध किया है - ये सब नाम शंकर ने ईश्वर के ही बताये हैं ।

व्याकरण की शंकाएं

दो शंकाएं व्याकरण सम्बन्धी भी उठायी जाती हैं:—

पहली महादेव शब्द का स्वामी जी ने विग्रह कर दिया है 'महतां देवः' जो है होना चाहिए :—'महाश्चासौ देवः'

आज-कल के व्याकरण के अनुसार शंका ठीक है किन्तु जब तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रथम काण्ड अनुवाक ६ को देखें तो महाव्रतम् का विग्रह देखा जाता है 'महतां व्रतम्' और महद् व्रतम्' भी । इस पर आचार्य सायण का भाष्य भी है । वहां भी 'महताम् व्रतम' यह विग्रह स्वीकार किया गया है । श्री स्वामी जी ने इसी वैदिक प्रयोगविधि के अनुसार यह विग्रह किया है ।

दूसरी शंका है कि श्री स्वामी जी ने न्याय शब्द को 'णीञ् प्रापणे धातु से बनाया जो नहीं बन सकता । 'नि' उपसर्ग पूर्वक इण धातु से न्याय शब्द बनता है । ठीक है, इसीलिये अष्टाध्यायी में न्याय आदि कई शब्दों का निपात किया है । परन्तु यहां बात दूसरी जो है ।

श्री स्वामी जी यहां व्याकरण प्रक्रिया को न लेकर नैरुक्तिक प्रक्रिया को ध्यान में रखकर ऐसा लिख रहे हैं व्याकरण और निरुक्त की प्रक्रियाओं में बड़ा अन्तर है 'मनुष्य' शब्द व्याकरण में "मनोर्जातावञ् यतौ षुक् च" इस सूत्र से मनु शब्द से यत् और षुक् (ष्) होकर मनुष्य बनता है । किन्तु निरुक्त में

'मत्वा कर्माणि सीव्यति इति मनुष्यः"

काम को मनन करके करे वह मनुष्य है । यहां 'मन' धातु और षीव् धातु से मनुष्य बनाया गया । इसी प्रकार णीञ् प्रापणे धातु का अर्थ न्याय में लगाना आवश्यक समझ कर णीञ् प्रापणे से न्याय माना ।

एक ही महान् तत्त्व ईश्वर के ही शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि अनेक नाम हैं। पढ़ो, शैवों का उपनिषद् :—

हैरम्बोपनिषद

मायास्वरूपो मधुरः स्वभावः, तस्य ध्यानात् पूजनात् तत् स्वभावः। संसारपारं मुनयोऽपि यान्ति, स वा ब्रह्म स प्रजेशो हरिः सः ॥६॥
इन्द्रः स चन्द्रः परमः परात्मा, स एव सर्वो भुवनस्य साक्षी। स सर्वलोकस्य शुभाशुभस्य, तत्वै ज्ञात्वा मृत्युमत्येति जन्तुः ॥७॥

अर्थ – माया स्वरूप मधुर स्वभाव जो भगवान् है, उनके ध्यान और पूजन से जीव उसी (पवित्र) स्वभाव का हो जाता है। मुनि लोग उसे ही जानकर संसार के पार (मुक्ति) को पहुंचते हैं। यह ब्रह्मा है, प्रजाओं का स्वामी है। हरि (विष्णु) है, वही इन्द्र है, चन्द्र है परात् पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व वही है। वही (शिव) सर्व लोगों के शुभ-अशुभ कर्मों का साक्षी है अर्थात् सर्वज्ञ है। उसको ही जानकर जीव मुक्ति को प्राप्त करता है।

यह डौरू बजाने वाले, त्रिशूल धारी, नन्दी पर सवार, कैलाश पर्वत पर विचरने वाले पार्वतीपति शंकर और क्षीर सागर निवासी लक्ष्मीपति विष्णु और चतुर्मुख हंस पर सवार ब्रह्मा ये सब साकार रूप समाप्त कर दिये उप-उपनिषद् ने। ये सब साकार देव समाप्त कर दिये, सर्वव्यापक सर्वज्ञ देव तत्त्व एक ही है उसे चाहे शिव कहो, चाहे विष्णु कहो या ब्रह्मा कहो वा इन्द्र कहो। नाम अनेक है तत्त्व एक है। शैव, वैष्णवों का साम्प्रदायिक झगड़ा समाप्त कर दिया उपनिषद् ने।

अन्य सम्प्रदायों में ईश्वर के अनेक नाम :—

वैदिक धर्मी चाहे पौराणिक हों वा आर्यसमाजी ; इनमें तो ईश्वर के सैकड़ों, सहस्रों नाम हैं ही, परन्तु यहूदी ईसाई, मुसल्मान भी ईश्वर के अनेक नाम मानते हैं। बाइबिल में 'यहोवा' 'ईल' दो नाम तो आये हुये हैं। कुरान में तो 'अल्लाह' कादिर, रहीम, खालिक आदि तिरासी के लगभग ईश्वर के नाम हैं। खुदा नाम फारसी का है जो संस्कृत के 'स्वतः' शब्द से बना है। पहलबी भाषा में 'स्वतः' का अपभ्रंश रूप बना 'खुतः', फारसी में यही रूप खुदा बन गया।

बाइबिल का 'यहोवा' शब्द वेद के 'यह्व' शब्द से बना। ऋग्वेद का शब्द है 'यह्वो अग्निः' यज्ञ योग अग्नि यही 'यह्व' यजनीय, पूजनीय 'यहोवा' बन गया। वेद के 'ईड्य' शब्द से ही हिब्रू (इबरानी, यहूदी) भाषा में 'ईल'

बना। वेद में आता है 'अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत' अग्नि ज्ञान स्वरूप परमात्मा पूर्व काल के और पर काल के ऋषियों से स्तुति योग्य है। 'ईड् स्तुतौ' धातु से यह शब्द बना। यही 'ईड्यः, अरबी में जाकर 'इलाह्' बना और 'इलाह' से अल्लाह शब्द बन गया। मूल ज्ञान सबमें वेदों से ही गया है। अल्लाह का अर्थ भी 'ईड्य' स्तुत्य है।

वेद, उपनिषद् तथा गीता में ईश्वर के 'ओम्' नाम को मुख्य माना गया है यथा-- यजुर्वेद ४०।१५ में 'ओं क्रतो स्मर' ४०।१७ में "ओम् खं ब्रह्म"

मुण्डकोपनिषद्

"अरा इव रथनाभौ संहिता यत्र नाड्यः। सः एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः" ओमित्येव ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः परा च तमसः परस्तात् ॥ २।२।६ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥
गीता अ. ८।१३

'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत।
छा. उ. १।१।१

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपाख्यानम्।

इस प्रकार सब ही आर्ष ग्रन्थों में ईश्वर का प्रमुख माण्डूक्य नाम 'ओम्' ही बताया गया है। जैन लोग भी अपने पंच नमस्कार मंत्र 'ओं नमो अरिहन्ताणं, ओं नमो सिद्धाणं, ओं नमो आयर्याणं, ओं नमो उज्झायाणं, ओं नमो लोए सब्ब साहूणम्" में ५ बार ओम् का उच्चारण करते हैं।

बौद्धों का मंत्र हैं :—ऊं मनि पद्म हुम् ॥ सिक्खों के गुरुग्रन्थ साहब में 'ओंकार' का जप बताया गया है। कबीर साहब ने भी ओंकार को ईश्वर का नाम माना है।

इस प्रकार आर्यों के तो सब ही वर्ग, आर्यसमाजी सनातनी, जैन, बौद्ध, सिक्ख सबमें ही 'ओम्' नाम की प्रतिष्ठा है। यह नाम एक ध्वनि है, जो कान बन्द करके बैठो तो अपने में ही सुनायी देगी और आकाश में जाओ तो वही ध्वनि गूंजती मिलेगी इस ध्वनि के सहारे ही सुरत (वृद्धिति, प्राण)

को योगी ऊपर चढ़ाते हैं। जब तक यह ध्वनि अनाहतनाद (परावाणी) परिपात न हो जाये तब तक अभ्यास करना पड़ता है, यह बात नाद बिन्दूपनिषद् में पढ़ने योग्य है, यथा :—

१. निःशब्दं तत् परब्रह्म परमात्मा समीयते ।
२. स शब्दश्चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ।
३. सर्वे तत्र लयं यान्ति ब्रह्म प्रणव ··· ।

इस प्रकार सशब्दनाद ओम् से चलकर योगी जब निःशब्द दशा में पहुंच जाता है तब Physical Chemistry ब्रह्म ज्ञानी बनता है।

अन्य नाम मुख्य क्यों नहीं ?

ओम् में ३ अक्षर हैं — "अ" "उ" "म्" अ के उच्चारण करते ही मुख खुलता है। तो संकेत मिला कि जिसके नाम का उच्चारण करते ही मुख खुला, बड़ी संसार को खोलने वाला है, सृष्टिकर्ता है। "उ" के उच्चारण पर मुख स्थिर रहा तो शिक्षा मिली कि जिसके नाम में उकार है वही सृष्टि को स्थिर रखने वाला है 'म्' पर मुख बन्द हो गया तो संकेत मिला कि वही सृष्टि को बन्द करता है, अर्थात् प्रलयकर्त्ता है। इस प्रकार बिना कोष और व्याकरण के उच्चारण मात्र से "ओम्" के तीन अर्थ प्रगट हो जाते हैं यह बात अन्य नामों में नहीं है। गोस्वामी जी की कल्पना राम नाम पर 'तुलसी 'रा' के कहते ही, निकसत पाप पहार। पुनि आवत पावत नहीं, देत मकार किवार।) रा' के उच्चारण पर मुख खुला तो पाप निकल गये। 'म' के उच्चारण पर होंठ बन्द हो गये, किबाड़े बन्द हो गयीं अब पाप भीतर नहीं आ सकते। किन्तु गोस्वामीजी ने धोखा खाया यहां 'म' हलन्त 'म्' तो है नहीं, फिर मुख बन्द कहाँ हुआ। अकारान्त शब्द है 'राम'। 'अ' के उच्चारण पर मुख अवश्य खुलेगा यह दोहा संगत न रहा। दोहे का सन्दर्भ फिटिंग गलत हो गया हाँ, 'ओम्' नाम पर दोहा लागू होता है क्योंकि 'ओम्' में मकार हल् है इसके उच्चारण में मुख बन्द हो जाता है।

मंगलाचरण

श्री स्वामी जी से प्रश्न है कि सत्यार्थ प्रकाश में मंगलाचरण क्यों नहीं किया गया? मंगलाचरण की परम्परा संस्कृत ग्रन्थों में पाई जाती है, जैसे संस्कृत काव्यों और नाटकों में तथा दार्शनिक ग्रन्थों में भी। यथा :—

न्याय कुसुमाञ्जलि में श्री आचार्य उदयन प्रथम ही लिखते हैं :—

ईषदीषदनधीत विद्यया, तातमातृ सुखमाविवर्धयन् ।
क्षेपणाय भव जन्म कर्मणां, कोऽपि गोपतनयो नमस्यते ।।

कुछ-कुछ थोड़ी-थोड़ी बिना पढ़ी विद्या से अर्थात् अटपटी बातें करके पिता माता के सुख को खूब बढ़ाते हुये संसार में जन्म लेने के कारणों को दूर करने अर्थात् मुक्ति प्राप्ति के लिये माता पिता के सुख को बढ़ाने वाले किसी गोप बालक को प्रणाम किया जाता है अर्थात् बालकृष्ण को प्रणाम करता हूं। दूसरा है मालती माधव का :—

सानन्दं नन्दि हस्ताहत मुरजरवाहूतकौमारबर्हि—
लासान्नासाग्ररन्ध्रं विशति फणिपतौ भोगसंकोचभाजि ।
गण्डोड्डीनालिमालामुखरितककुभस्ताण्डवे शूलपाणेः,
वैनायिक्यश्चिरं वो वदन विधुतयः पान्तु चीत्कारवत्यः ।।

शंकर का ताण्डव नृत्य प्रारम्भ है, नन्दी ने मृदंग पर थाप दी ऐसा तो लगा मानो बादल गरज रहा है। बस मेघ-गर्जन सुन कुमार कार्त्तिकेय पार्वती पुत्र की सवारी का मोर आ गया, उसको देखकर श्रीगणेशजी के गले में पड़े साँप ने अपना फन सिकोड़ कर डरके मारे श्रीगणेशजी के नाक के छेद में घुसना प्रारम्भ किया। गणेशजी को गुदगुदी लगी तो गणेशजी ने सूंड फटकारी तो गणेशजी के गालों पर लिपटे हुए वे भौंरे भनभनाकर उड़े जो गणेशजी के कपोलों से निकले हुये मधु को पीने आये थे, तो सूंड फटाफट करने से उड़ते हुये भौंरों की ध्वनि चारों दिशाओं में छागई, इधर सांप के नाक में घुसने से गणेशजी चीखने लगे और उनके मुख पर सिकुड़न, खिंचाव और कंपन होने लगा। गणेशजी के ऐसे मुख की कम्पनाएं श्रोताओ! तुम्हारी रक्षा करें।

हास्य रस से भरा कैसा सुन्दर पद्य है और कविकल्पना का भी चमत्कार प्रशंसनीय है। शृंगार रस के नाटक में ऐसा ही मंगलाचरण होना चाहिये था; किन्तु सत्यार्थ प्रकाश न तो नव्यन्याय का ग्रन्थ है, न कोई नाटक। यह तो ऋषियों के धर्म के समर्थन वा लिखा गया पुस्तक है। अतः उसमें ऋषियों की परम्पराओं का अनुसरण किया गया है किसी भी आर्ष ग्रन्थ में ऐसे मंगलाचरण नहीं मिलते। ग्रन्थ ओम् वा अथ से प्रारम्भ कर दिया जाता है। ओम् और अथ ही प्रारम्भ में लिखना आर्ष प्रथा है।

उसी का पालन श्री स्वामी जी ने किया है। पौराणिक लोग जो श्री गणेशाय नमः, हनुमते नमः आदि शब्द अपने ग्रन्थों के प्रारम्भ में लिखते हैं यह वैदिक विधि वा आर्ष पद्धति नहीं है और जो लोग अवैधानिक काम करते हैं उनके विषय में गीता कहती है :—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्त्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति, न सुखं न परां गतिम् । अ. १६।२३

जो शास्त्र की विधि को छोड़कर स्वेच्छाचार से व्यवहार करते हैं वे सिद्धि

सुख और मोक्ष को नहीं पाते। अत: आर्ष परम्परा का श्री स्वामीजी ने पालन किया है।

आगे श्री स्वामीजी ने ईश्वर के गौणिक, कार्मिक, स्वाभाविक वैदिक नाम दिये हैं जिनकी सूची अर्थ सहित देकर विषय को समाप्त किया जायेगा—

१. ओम्—रक्षक।
२. प्रशासिता—सबको शिक्षा देने हारा।
३. अग्नि—स्वप्रकाशयुक्त।
४. भनु:—विज्ञानस्वरूप।
५. प्रजापति:—सबका पालन करने हारा।
६. इन्द्र—परम ऐश्वर्यवान्।
७. प्राण—सबका जीवन मूल।
८. ब्रह्म—निरन्तर व्यापक।

उक्त नामों पर श्री स्वामीजी ने मनु का प्रमाण दिया है। अ० १२।१२३

९. ब्रह्मा—सब जगत् को बनाने हारा।
१०. विष्णु—चराचर में व्यापक।
११. रुद्र—दुष्टों को दण्ड देनेहारा।
१२. शिव—मंगल रूप, सब का कल्याण कर्त्ता।
१३. अक्षर—सर्वत्र व्याप्त अविनाशी।
१४. स्वराट्—स्वयं प्रकाश स्वरूप।
१५. कालाग्नि—प्रलय में सबका काल और काल का भी काल।
१६. दिव्य—प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में व्याप्त।
१७. सुपर्ण—जिसके उत्तम पालन और पूर्ण कर्म हैं।
१८. गरुत्मान्—जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान् है।
१९. मातरिश्वा—जो वायु के समान अनन्त बलवान् है।
२०. भूमि—जिसमें सब भूत (प्राणी) होते हैं।
२१. विराट्—जो विविध प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे।
२२. विश्व—जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो सबमें व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है।

२३. हिरण्यगर्भ—जिसमें सूर्यादि तेज वाले लोक उत्पन्न हो के जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेज: स्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवास स्थान है।
२४. वायु—जो सब जगत् का धारण, जीवन और प्रलयकर्त्ता, सब बल वालों से बलवान् है।
२५. तैजस—जो आप स्वयं प्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करने वाला है।
२६. ईश्वर—जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है।
२७. आदित्य—जिसका विनाश कभी नहीं होता।
२८. प्राज्ञ—जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त सब चराचर जगत् के व्यापार को यथावत् जानता है।
२९. मित्र—जो सबको स्नेह करता और जो सबको प्रीति करने योग्य है।
३०. वरुण—जो आत्म योगी विद्वान् मुक्ति की इच्छा करने वाले, मुक्त और धर्मात्माओं का स्वीकार करता अथवा जो शिष्ट मुमुक्षु, मुक्त और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है।
३१. अर्यमा—जो सब न्याय के करने हारे मनुष्यों का मान्य और पाप, पुण्य करने वालों को पाप वौर पुण्य के फलों का यथावत् सत्य सत्य नियम करता है।
३२. बृहस्पति—जो बड़ों से भी बड़ा, बड़े आकाशादि ब्रह्मांडों का स्वामी है।
३३. उरुक्रम—महापराक्रम युक्त।
३४. सूर्य—जो जड़ और चेतन का आत्मा स्व प्रकाशरूप और सबको प्रकाशित करता है।
३५. आत्मा—जो सब जीवादि जगत् में निरन्तर व्यापक है।
परमात्मा—जो सब जीवादि से उत्कृष्ट और जीव, प्रकृति और आकाश से भी अति सूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी है।
परमेश्वर—समर्थों में समर्थ, जिसके तुल्य और कोई नहीं।
३६. सविता—सब जगत् का उत्पादक।
३७. देव—जो शुद्ध जगत् को क्रीड़ा कराने, धार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त सब चेष्टाओं के साधनो पसाधनों का दाता, सबका प्रकाशक, स्वयं प्रकाशरूप, प्रशंसा के योग्य, आप आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द देने हारा, मदोन्मत्तों का ताड़ने हारा, सबके शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करने हारा, कामना के योग्य और

ज्ञानरूप है, अथवा जो अपने स्वरूप में आप ही क्रीडा करे अथवा किसी के सहाय के बिना, क्रीडावत् सहज स्वभाव से सब जगत् को बनाता वा सब क्रीड़ाओं का आधार है, जो सबका जीतने हारा स्वयं अजेय, जो न्याय और अन्यायरूप व्यवहारों का जानने हारा और उपदेष्टा, सबका प्रकाशक, सब मनुष्यों के योग्य और निन्दा के योग्य न हो और जो स्वयं आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्दित करता—जिसको दुःख-लेश भी न हो, जो सदा हर्षित, शोक-रहित और दूसरों को हर्षित करने और दुःखों से पृथक् रखने वाला, जो प्रलय समय अव्यक्त में सब जीवों को सुलाता, जिसके सब सत्यकाम और जिसकी प्राप्ति की कामना सब शिष्ट करते हैं तथा जो सबमें व्याप्त और जानने योग्य है।

३८. कुवेर—जो अपनी व्याप्ति से सबका अच्छादन करे।

३९. पृथिवी जो सब विस्तृत जगत् का विस्तार करने वाला है।

४०. जल—जो दुष्टों का ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओं का अन्योन्य संयोग-वियोग करता है।

४१. आकाश—जो सब ओर से जगत् का प्रकाशक है।

४२. अन्न-अन्नाद अत्ता —जो सबको भीतर रखने वाला, वा सबको ग्रहण करने योग्य, चराचर जगत् का ग्रहण करने वाला है। 'अत्ता चराचर ग्रहणात् (वेदान्त)।

४५. वसु – जिसमें आकाशादि सब बसते हैं और जो सबमें वास करता है।

४६. नारायण—जल और सब जीवों में रहने वाला (जल-प्रकृति)

४७. चन्द्र —स्वयं आनन्द स्वरूप और सबको आनन्द देने वाला।

४८. बुध —जो स्वयं बोध स्वरूप और सब जीवों को बोध का कारण है।

४९. मंगल—जो आप मंगल स्वरूप और सब जीवों के मंगल का कारण है।

५०. शुक्र—जो अत्यन्त पवित्र और जिसके संग से जीव भी पवित्र हो जाता है।

५१. शनैश्चर—सहज भाव से प्राप्त धैर्यवान्।

५२. राहु —जो एकान्त स्वरूप, जिस के स्वरूप में दूसरा पदार्थ संयुक्त न हो, जो दुष्टों को त्यागने और अन्यों को छुड़ाने हारा है।

५३. केतु—जो सब जगत् का निवास स्थान, सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं को मुक्ति-समय सब रोगों से छुड़ाता है।

५४. यज्ञ—जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेकर सब ऋषि-मुनियों का पूज्य था और होगा।

५५. बन्धु—जिसने अपने में सब लोक लोकान्तरों को बद्ध कर रखा है, इसीसे अपनी परिधि का, नियम का उल्लंघन नहीं कर सकते और सहोदर के समान सहायक है जैसा भ्राता भाइयों का सहायक होता है, वैसे ही परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकों का धारण, रक्षण करता और सुख देता है।

५६. पिता जो सबका रक्षक और जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उन्नति चाहता है वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है।

५७. पितामह—प्रपितामह भी वह है।

५८. माता—जैसे पूर्ण कृपायुक्त जननी अपने सन्तान का सुख और उन्नति चाहती हैं वैसे ही परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है।

५९. आचार्य—सत्य आचरण का ग्रहण कराने हारा, सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु है।

६०. गुरु जो सत्यधर्म प्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि के आदि में, अग्नि, वायु, आदित्य अंगिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता (स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। योगदर्शन समाधिपाद सूत्र २६)

६१. अज—जो सब प्रकृति के अंवयव, आकाशादि भूत परमाणुओं को मिलाता, शरीरों के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता।

६२. ब्रह्मा—जो सम्पूर्ण जगत् को रचके बढ़ाता है।

६३. सत्य—जिसका स्वरूप सत्य है, सत्य से ही प्राप्त किया जाने योग्य है। (सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म-तैत्तिरीयोपनिषद्)

६४. ज्ञानम् —सब जगत् का जानने वाला।

६५. अनन्त—जिसकी अवधि, मर्यादा, परिमाण (इतना लम्बा, चौड़ा, छोटा बड़ा) न हो।

६६. अनादि—जिसका आदि कारण कोई भी नहीं है।

६७. सत्—जो सदा-वर्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालों में जिसका बाध न हो।

६८. चित्—जो सब जीवों को चिताने और सत्यासत्य का जानने हारा।

६९. आनन्द—जो आनन्दस्वरूप, जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते हैं, जो सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है।

७०. सच्चिदानन्द—उक्त तीनों शब्दों के विशेषण होने से सच्चिदानन्द स्वरूप।

७१. नित्य—निश्चल अविनाशी।

७२. शुद्ध—स्वयं पवित्र सब अशुद्धियों से पृथक् और सबको शुद्ध करने वाला।

७३, बुद्ध—सदा सबको जानने हारा।

७४. मुक्त—सर्वदा अशुद्धियों से अलग और सब मुमुक्षुओं को क्लेश से छुड़ा देता है।

७५. निराकार—जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है।

७६. निरञ्जन—आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्ट कामना और चक्षुरादि इन्द्रियों के पथ से पृथक्।

७७. गणेश, गणपति—जो प्रकृत्यादि जड़ एवं जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी पालन करने हारा।

७८. विश्वेश्वर—संसार का अधिष्ठाता।

७९. शक्ति—जो सब जगत् के बनाने में समर्थ है।

८०. श्री—जिसका सेवन सब जगत् के विद्वान् और योगीजन करते हैं।

८१. लक्ष्मी—जो चराचर जगत को देखता चिन्हित अर्थात् दृश्य बनाता जैसे शरीर के नेत्र नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल में कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र सूर्यादि चिन्ह बनाता तथा सबको देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने (जानने) योग्य है।

८२. सरस्वती—जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे वह।

८३. निर्गुण—सत्व, रज, तम, शब्दस्पर्शादि गुणों से रहित।

८४. सगुण जो ज्ञान, आनन्द, पवित्रतादि गुणों से युक्त है।

८५. अन्तर्यामी—जो सबका नियामक है और सबमें व्यापक है।

८६. धर्मराज—जो धर्म में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है।

८७. यम—जो सब प्राणियों को कर्म फल देने की व्यवस्था करता है।

८८. भगवान्—जो सब एश्वर्यों से युक्त भजने योग्य है।

८९. मनु—विज्ञानशील और मानने योग्य।

९०. पुरुष जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है।

९१. विश्वम्भर—जो जगत् का धारण और पोषण करता है।

९२. काल—जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है।

९३ शेष जो उत्पत्ति और प्रलय से बच जाता है।

९४. आप्त—जो सत्योपदेशक, सकल विद्या युक्त सब धर्मात्माओं को प्राप्त होता है और धर्मात्माओं को प्राप्त होने योग्य, छलकपट से रहित है।

९५. शंकर—जो कल्याण अर्थात् सुख करने वाला है।

९६. महादेव—जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान्, सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक।

९७. प्रिय—जो सब धर्मात्माओं, मुमुक्षुओं को प्रसन्न करता और सबको कामना के योग्य है।

९८. स्वयंभू—जो आपसे आपही है, किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ।

९९. कवि—जो वेद द्वारा सब विद्वानों को उपदेश करता और वेत्ता है। सौ नाम लिखने का प्रयोजन यही है कि अनेक नाम होने पर भी वह तत्त्व एक ही है। हमें एक विद्वान ने बताया कि गुजराती में कोई पुस्तक छपी है। जिसमें उक्त नामों में स्वामी जी की व्याकरण की अशुद्धियाँ दिखायी गयीं हैं। वेदभाष्य में भी एक पंडित ने व्याकरण की अशुद्धियाँ बतायीं थीं। व्याकरण की अशुद्धियाँ कविवर कालिदास जी की भी पंडितों ने निकाली हैं। हमें इस व्याकरण के झंझट से बचकर देखना यह है कि ऋषि दयानन्द की विचारधारा क्या है? वह जाति को जीवन और स्फूर्ति देती है वा मृत्यु वा आलस्य? ये बड़े-बड़े वैयाकारण रात दिन खुपड़हाव करते रहे किन्तु जिस प्रयोजन के लिये व्याकरण बना था—रक्षार्थम् वेदानाम्—वेदों की रक्षा के लिये—यह वह काम पूरा न कर पाये। ऋषि दयानन्द के प्रचार से आज कई करोड़ हिन्दू नर-नारियों को २-४ वेद मन्त्र याद हैं।

द्वितीय समुल्लास

सृष्टि में पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष, लता, गुल्म—तृण आदि जितने भी पदार्थ हैं, यदि स्वाभाविक रूप से बढ़ते हैं तो कोई विशेषता प्रकट नहीं कर सकते और उनमें संस्कार विशेष क्रियायें की जायें तो विलक्षणतायें उत्पन्न हो जाती हैं। सैकड़ों प्रकार के आम, सेव, चावल आदि संस्कारों का ही प्रभाव है। जो मनुष्य सृष्टि की अनुपम रचना है और जो सृष्टि में अपनी रचना के अद्भुत कौतुक दिखाता है उसके निर्माण की विधि न ईसाइयों में है, न मुसलमानों में, न मार्क्सवादियों में, न बौद्धों में। मानव-निर्माण की विधि ब्राह्मण-ग्रन्थों में और सूत्र-ग्रन्थों में है जो वेदों से आई है। ऋषि दयानन्द इसी भूली हुई विधि को पुन: चलाने की इच्छा से दूसरा समुल्लास लिख रहे हैं। मानव-निर्माण कैसे हो ? यही विधि बताना है स्वामी जी का लक्ष्य।

आकार मात्र से तो मानव-निर्माण स्वत: ही हो रहा है, किन्तु सुसंस्कृत-मानव का निर्माण करना हमारे धर्म ग्रन्थ बताते हैं। समाज के वातावरण द्वारा मनुष्य बन जायेगा और शिक्षा के द्वारा उसके विचार बन जायेंगे। यह तो मोटी बात है, किन्तु वातावरण के प्रभाव को ग्रहण करने और शिक्षा को धारण करने की शक्ति तो जन्मजात ही होती है। वातावरण और शिक्षा के दूषित भावों को ग्रहण करने का विवेक यह सब माता के गर्भ से, गोद से ही मिलता है। भूमि के ही गर्भ से अंकुर अच्छा पुष्ट निकले, फिर सिंचन रक्षण आदि भी आवश्यक है और भूगर्भ से ही अंकुर मृतवत् निकले तो सिंचाई आदि क्या करेगी। पेड़ पौधों तक पर भूमि का, बीज का प्रभाव रहता है। जो आम अवध और बिहार का होता है उसकी समता अन्यत्र का आम नहीं कर सकता।

अपने बीज का खट्टा मीठा स्वाद तो ये फल कभी छोड़ते ही नहीं और बाहरी संस्कारों के प्रभाव भी इनके विकास पर, गुणों पर पड़ते हैं। अत: ऋषि दयानन्द ने दूसरे समुल्लास में बीज और भूमि, पिता और माता तथा गर्भाधान (बीजवपन) पर ध्यान को आकर्षित किया, फिर ध्यान दिलाया शिक्षा आदि बाहरी विधियों पर।

मानव-निर्माण की विधि बताना ऋषि दयानन्द की विशेषता है। विधि तो सनातन है किन्तु भूली हुई विधि को स्मरण कराना इस युग के लिये ऋषि दयानन्द की बड़ी उपकारभरी सूझ है, बीज और क्षेत्र की शुद्धि के लिये श्री स्वामी जी लिखते हैं :—

"माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और

पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध (लशुन, प्याज जैसे) रूक्ष बुद्धिनाशक (भंग जैसे) पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम, और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे, वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्न पान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रजस्, वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों।"

श्री स्वामी जी ने यह सम्मति भी दी है कि प्रसूता स्त्री बच्चे को स्वयं दुग्ध न पिलाकर धायी का दूध पिलाये ताकि प्रसूता शीघ्र बलयुक्त हो जाये किन्तु यह बात सबके लिये सम्भव नहीं है। श्री स्वामी जी ही स्वयं लिखते हैं :—

'जो कोई दरिद्र हों धायी न रख सकें तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम औषध जो कि बुद्धि, पराक्रम आरोग्य करने हारी हों उनको शुद्ध जल में भिजा, और छान के दूध के समान जल मिला के बालक को पिलावें।"

स्वामी जी का अभिप्राय यह है कि प्रसूता को स्वस्थ रक्खा जावे और बालक को भी पुष्ट बनाया जावे। स्वामी जी ने यह अपनी विधि लिख दी है यदि कोई अन्य प्रकार से भी जच्चा, बच्चा को स्वस्थ बना सके तो बनावे, कोई अन्य औषध हों दूध के समान वा कोई अन्य वस्तु हो।

इस धायी के प्रकरण को लेकर पौराणिकों से आर्य पण्डितों के बहुत शास्त्रार्थ होते रहे हैं। पौराणिक धायी के विषय में वेद का प्रमाण माँगा करते थे और आर्य पण्डित 'द्वे विरूची धाययेते' इस मन्त्र को प्रस्तुत कर देते थे : पौराणिक चुप हो जाते थे. किन्तु यह सब व्यर्थ का खुड़हाव था, धाय रखना कोई अनिवार्य धर्म का अंग तो स्वामी जी ने बताया नहीं है यह सामान्य व्यवहार की बात है। रोगी को बताये कि लौकी का शाक खाना, यदि वह परबल का शाक खा ले तो भी ठीक है। प्रत्यक्ष काम में वेद के प्रमाण की क्या आवश्यकता है ? स्वामी जी स्वयं कहते हैं कि बकरी का दूध भी पिला सकते हो, औषधों का रस भी दे सकते हो फिर इस पर शास्त्रार्थ कैसा ? परन्तु पौराणिक लोग सत्यार्थ-प्रकाश में कोई शास्त्रीय त्रुटि तो पा नहीं सके थे और ऊट पटांग ऐसे चकमा देने वाले प्रश्न करके समय नष्ट करते थे। आर्य पण्डित भी इन चालाक लोगों को वैसे उत्तर देकर चुप करते थे। वस्तुत: यहाँ कोई परीक्षा धार्मिक विषय नहीं है जो वेद की खोज की जाये। वेद तो परोक्ष ज्ञान के लिये हैं यथा :—

प्रत्यक्षेणाऽनुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एतं विदन्ति वेदेन, तस्माद् वेदस्य वेदता॥

आचार्य सायण कहते हैं जो बात प्रत्यक्ष और अनुमान से न जानी जाये वह वेद से जानी जाती है, यही है वेद का वेदत्व। सामान्य बातों में वेद की

खोज करना, समय को नष्ट करना और बुद्धूपन प्रकट करता है। पौराणिक स्वयं तो समझ से काम लेते नहीं, आर्य समाजियों को भी अपने में घसीटने का यत्न करते हैं।

आगे श्री स्वामी जी ने माता-पिता का कर्त्तव्य बताया है कि बच्चों को अच्छे व्यवहार सिखावें "जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्या प्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करें'—कितनी अच्छी है यह चेतावनी माता और पिता को ! "गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो करावें" इस शिक्षा से कौन विरोध कर सकता है ? "जब पांच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देव नागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी" देव नागरी अक्षरों से अच्छी लिपि विश्व भर में नहीं है, परन्तु स्वामी जी ने उदारता पूर्वक निर्देश कर दिया कि अन्य लिपियों का भी ज्ञान करा दिया जाये। और किससे किस प्रकार का व्यवहार किया जाये, यह शिष्टता की शिक्षा भी बच्चों को दी जाये यह भी निर्देश ऋषि ने दिया। हां ! स्वामी जी ने यह भी चेतावनी बड़ी हितकारक दी है कि बच्चों को अन्ध विश्वासों से बचाकर रक्खा जावे। "जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो" बच्चे निर्भय बनें यही है स्वामी जी का अभिप्राय।

पौराणिक पण्डित तथा अन्य मत वाले भी यहाँ स्वामी जी से सहमत नहीं हैं वे भूत प्रेतों का अस्तित्व मानते हैं। किन्तु विज्ञान से, दर्शन से, शास्त्र से तो भूत प्रेत का होना सिद्ध नहीं होता।

पौराणिक पं० अखिलानन्द ने अथर्व वेद से भूत-प्रेत सिद्ध करने का मिथ्या प्रयास किया है। मन्त्र यह है :—

"येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णिः पुरो मुखः"।

जिनके पंजे पीछे को हैं और एड़ी तथा मुख आगे को। बस ये भूत ही तो है। अखिलानन्द जी कवि थे, लोभ ने उनकी सब प्रतिभा नष्ट कर दी थी। यही भूत वा धूर्त्त मनुष्यों का वर्णन है 'जिनके पंजे पीछे को हों अर्थात् उलटी गति वाले, प्रतिक्रियावादी (Reactionary) मुंह सामने हैं अर्थात् बातें मीठी-मीठी करें और चलें उनके विपरीत। यहां मुहावरा है। इस पर अन्ध विश्वास के वश में हुए पंडित की बुद्धि नहीं पहुंची।

मन्त्र में आगे कहा है। "खलजाः शक मूमजा उरुण्डा येच मटमराः। ये लोग खलों की सन्तान हैं, धूर्तों के पुत्र धूर्त हैं, उपलों के धुएं से पैदा हैं अर्थात् तमोगुणी हैं। दुष्ट विचारों के हैं। बहुत लम्बे हैं और बहुत ठिगने हैं। बहुत लम्बे मूर्ख माने जाते हैं और बहुत ठिगने चालाक समझे जाते हैं अर्थात् मूर्ख हैं वा चालाक हैं। इन सबसे बचो। अथर्ववेद के इन सूक्तों में 'क्रिमिः और 'किमिदिन' शब्द आये हैं जो कीटाणुओं का अर्थ देते हैं। वेद की

शिक्षा है कीटाणुओं से बचे रहने की। यहां भूत प्रेत का कोई वर्णन नहीं। गरुड़ पुराण, इंजील आदि हैं भूतों को मानने वाले पुस्तक। हमने तो बहुत खोज की। मरघटों में भी ढूंढे। मन्त्र भी जपे किन्तु भूत नहीं मिले। यह सब गपोड़ा हैं, अन्ध विश्वास है इससे बच्चों को सावधान कर दिया जाये।

भूतों की कहानियाँ —हिन्दी और अंग्रेजी पुस्तकों में भूतों की बड़ी मनोरंजक कहानियां पढ़ने को मिलेंगी, परन्तु ये केवल कहानियां ही हैं, इसे वस्तु जगत् की बात मत मान लेना। हाँ ! कई प्रकार के वायु रोग भी होते हैं और प्रायः रजो धर्म के बिगड़ जाने से ऐसे रोगों का शिकार स्त्रियां अधिक होतीं हैं। बस ये रोग हैं भूत प्रेत-नहीं। इनकी चिकित्सा योग्य वैद्य वा डाक्टरों से करानी चाहिये।

श्री स्वामीजी लिखते हैं—

जब कोई प्राणी मरता है तो उसका जीव पाप-पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख-दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है ? अज्ञानी लोग वैद्यक-शास्त्र वा पदार्थ-विद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सान्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि रखते हैं। सब ही मनुष्यों के लिये श्री स्वामी जी का लेख हितकारक है। पंजाब में एक कस्बे में एक जैन युवति पर भूत आते हैं—यह बात उड़ी। वास्तव में लड़की मानस रोग से पीड़ित थी। जैन लोग भी ईश्वर को तो नहीं मानते, परन्तु भूत प्रेत और लाखों देवों को मानते हैं। बस दो साधुओं को ले आये। उन साधुओं ने लोहे की सलाखें आग में गरम कर करके लड़की के शरीर में मारीं, लड़की मर गई। घर वाले और साधु पकड़े गये, जेलें हुईं। यह सब हाल—'हिन्दुस्तान टाइम्स' धर्मयुग आदि में चित्रों सहित प्रकाशित हुआ। ऐसे अनेक कांड इन अन्धविश्वासों के कारण होते रहे हैं। इस लिये श्री स्वामीजी ने चेतावनी दी है कि ऐसे अन्ध-विश्वासों से बालकों को बचाया जाये।

✲ ✲ ✲

आत्माओं का प्लेनचिट पर बुलाना

सर ओलिवर लाज ने आत्मतत्त्व की सिद्धि के लिए रूहों के बुलाने की चर्चा बहुत की है। अनेक घटनायें लिखी हैं यह सब भी एक धोखा है। भारत में भी कई व्यक्तियों ने यह जाल फैलाया और पढ़े लिखे लोग इसमें फंसे भी किन्तु फिर धीरे-धीरे यह भ्रान्ति दूर हो गई। कोई आत्मा नहीं आती थी, सब कल्पनाएं मात्र थीं। आत्मायें तो जब तक सूक्ष्म शरीर रहता है तब तक स्थूल शरीर अवश्य धारण करतीं हैं। जब सूक्ष्म शरीर से छुटकारा हो जाये तो मुक्ति की दशा को पा लेती हैं।

दूसरा भ्रम है ज्योतिष का, जन्म पत्र, हाथ देखना, रमल डालना आदि सब ढोंग है। पूरा अन्धविश्वास है। इस ज्योतिष के अन्धविश्वास ने भारत की स्वतन्त्रता को कई वार हानि पहुंचाई है। सिन्ध पर जब अरबों का अधिकार हो गया तब जाटों ने अरबों को निकालना चाहा। एक ज्योतिषी जिसे सब काका कहते थे उससे पूछा तो उसने कह दिया कि मुहूर्त ठीक नहीं है। ग्रह तुम्हारे प्रतिकूल हैं, जाट शान्त बैठ रहे। काका अरबों से मिला हुआ था बाबर और राणा साँगा के युद्ध में भी ज्योतिषियों ने महाराणा को आक्रमण से रोके रखा। इतने में बाबर तैयार हो गया, बाबर को भी ज्योतिषियों ने लड़ाई से रोका था किन्तु बाबर नहीं माना। ज्योतिषियों को बन्द कर रखा, जीतने पर ज्योतिषियों को पिटवाकर निकलवा दिया।

किसी कवि ने कहा है:—

मिलत न पतरा में नखत, लड़त न कायर मन्द।
नहिं खोजत रण बांकुरे, नखत वार तिथि चन्द॥

कर्मवीरों को इन ज्योतिषियों के चक्कर से पृथक् रहकर काम करना चाहिए। श्री स्वामी जी लिखते हैं:—

प्रश्न- तो क्या ज्योतिष शास्त्र झूठा है?

उत्तर- नहीं, जो उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सच्ची है जो फल की लीला है, वह सब झूठी है। फलित की बातें मैथमेटिकल फैलेसी अर्थात् गणित सम्बन्धी हेत्वाभास है। जैसे एक बढ़ई एक चौकी को एक दिन में बनाता है तो पच्चीस सहस्र बढ़ई एक चौकी को कितने दिन में बना देंगे। गणित से तो उत्तर मिल जाएगा कि इतने सैकेण्ड में परन्तु एक चौकी तक पच्चीस सहस्र बढ़इयों का पहुंचना असम्भव है उसी प्रकार सूर्यादि ग्रहों के प्रभाव भूगोल में, खगोल में पड़ते हैं किन्तु व्यक्तियों पर तो उनका प्रभाव नाम मात्र होता है. सो भी, सब पर एक सा ही। जिस पर सूर्य उत्तम हों, और जिस पर क्रूर हों, उसे भी ज्येष्ठ की धूप में खड़ा कर दो, दोनों को एक सा ही ताप लगेगा। स्वाभाविक आकर्षण सर्दी, गर्मी, वर्षा, आँधी, भूचाल आदि प्राकृतिक प्रभाव सृष्टि में चलते रहते हैं, उनका सम्बन्ध व्यक्तियों से कुछ नहीं है।

पोपजी—देखो ज्योतिष का फल आकाश में रहने वाले सूर्य, चन्द्र और राहु केतु का संयोग-वियोग ग्रहण को पहले ही कह देते हैं। जैसा यह प्रत्यक्ष होता है, वैसा ही ग्रहों का फल भी प्रत्यक्ष हो जाता है। देखो धनाढय दरिद्र राजा-रंक, सुखी-दुःखी ग्रहों से ही होते हैं।

सत्यवादी—जो यह ग्रहण रूप प्रत्यक्ष फल है वह गणित विद्या का है फलित का नहीं, जो गणित विद्या है वह सच्ची और फलित स्वाभाविक संबंध जन्य को छोड़कर झूठी है। जैसे अनुलोम-प्रतिलोम घूमने वाले पृथिवी और चन्द्र के गणित से स्पष्ट विदित होता है कि अमुक समय अमुक देश व अमुक अवयव में सूर्य व चन्द्र ग्रहण होगा। जैसे **छादयत्यर्कमिन्दुः विधुं भूमिभाः** यह सिद्धान्त शिरोमणि का वचन है और इसी प्रकार सूर्य सिद्धान्त आदि में है। अर्थात् जब सूर्य-भूमि के मध्य में चन्द्रमा आता है तब सूर्य-ग्रहण, और जब सूर्य और चन्द्र के बीच में भूमि आती है तब चन्द्र-ग्रहण होता है जो धनाढय दरिद्र, प्रजा राजा रंक होते हैं, वे अपने कर्मों से होते हैं। (सत्यार्थ प्रकाश समु० ११)।

अतः बच्चों को भूत, प्रेत, ज्योतिष, देवी, शीतला, काली आदि के भ्रान्ति व भयों से सावधान कर देना चाहिए किसी भी भूत के बहकावे में न आयें। हमने स्वयं इन स्यौते सयाने और भूतों की करतूतें देखी हैं। पूरा जाल है। बच्चों को विज्ञान और गणित की थोड़ी बहुत शिक्षा अवश्य दी जाये। सदाचार और ब्रह्मचर्य पर श्री स्वामी जी ने बहुत बल दिया है जो उचित है।

सदाचार से ही स्वास्थ्य ठीक रहता है, और स्वास्थ्य ठीक रहने से ही विद्या, परिश्रम, उद्योग की उपलब्धि होती है।

श्री स्वामी जी लिखते हैं—

"मद्य-मांसादि के सेवन से अलग रहें।

"द्विज आठवें वर्ष के आरम्भ में अपने सन्तानों का उपनयन करके अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें"

"शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल में भेजदें"।

आगे तीसरे समुल्लास में तो स्वामी जी ने गुरुकुलों में भेजना अनिवार्य बताया है।

"इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पांचवे अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़के और लड़कियों को कोई अपने घर में न रख सके" शिक्षा के विषय में स्वामी जी कितनी अनिवार्यता प्रकट कर रहे हैं। वह देश के प्रत्येक व्यक्ति को सभ्य, शिक्षित और सदाचारी देखना चाहते हैं। स्वामी जी के इस विधान को मनुष्य मात्र पसन्द करेगा और अब सब देशों की सरकारें यथाशक्ति शिक्षा पर धन लगा भी रही हैं। श्री स्वामी जी शिक्षा में वर्ण भेद नहीं करते। सबके बालक शिक्षा के लिए विद्यालयों में पहुंचें। हां शूद्र (वर्ण-हीन, अन्त्यज तक सबके बालक गुरुकुलों में भरती हों। शूद्रों और उनसे भी छोटे वर्गों को एक भार से बचा दिया कि उन्हें अपने बच्चों का उपनयन नहीं कराना पड़ेगा। वे इस घरेलू व्यय से बचे रहेंगे यदि उनके बच्चों ने योग्यता प्रकट की तो उनका यज्ञोपवीत गुरुकुलों में ही हो जाएगा और द्विजों के बालक यदि किसी भी वर्ण के योग्य न हुए तो उनका यज्ञोपवीत उतार लिया जायेगा, वर्ण-व्यवस्था गुरुकुलों के हाथ में रहेगी।

जो लोग बकवास करते हैं कि स्वामी जी ने सवर्ण-अवर्ण का भेद किया है कि द्विजों के बालक आचार्यकुल में और शूद्रों के गुरुकुल में भेजे जावें वे शब्द जाल का धोखा देते हैं। आचार्य कुल और गुरुकुल एक ही बात है। तीसरे समुल्लास में स्वामी जी ने पाठशाला शब्द का प्रयोग किया है तो क्या पाठशाला का अर्थ कुछ और लिया जाएगा।

गुरुकुल, आचार्यकुल, पाठशाला सबका तात्पर्य है विद्या शिक्षण स्थान।

श्री स्वामी जी ने सबकी समानता का पक्ष बड़े बल से लिया है, देखो—

"क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों को पढ़ने-सुनने का शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करे?"

तृतीय-समुल्लास

स्वामी जी सबको शिक्षा पाने का अधिकारी बताते हैं। जो न पढ़ पावे तो लाचारी है। द्वितीय समुल्लास को समाप्त करते हुए स्वामी जी लिखते हैं "यही माता-पिता का कर्तव्य कर्म, परमधर्म और कीर्ति का काम है जो सन्तानों को तन मन धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना" अब बिचारिये कि कौन से मत वाला व देश वाला स्वामी जी के इस शिक्षा विधान का विरोध कर सकता है? मानव मात्र के कल्याण की बात स्वामी जी लिख रहे हैं।

प्रश्न —शिक्षा को अनिवार्य किया और राजा का कर्त्तव्य ठहराया, यह तो श्री स्वामी जी ने अच्छा किया; किन्तु शिक्षा के साथ धर्म को जोड़ना व्यर्थ है।

उत्तर—स्वामी जी जिस धर्म को शिक्षा के साथ जोड़ रहे हैं, वह धर्म कोई परोक्ष विश्वास रूप मत या मजहब नहीं हैं कि अमुक व्यक्ति पर ईमान लाओ वा अमुक व्यक्ति के चमत्कारों पर विश्वास अवश्य करो आदि। स्वामी जी का धर्म विश्वासात्मक न होकर आचारात्मक है:—

"जैसी अन्य शिक्षा की वैसी चोरी जारी आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य मिथ्या भाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें"। बुरे व्यवहारों का त्याग, उत्तम व्यवहारों का ग्रहण ही स्वामी जी का धर्म है।

ब्रह्मचर्य (वीर्य रक्षा) पर स्वामी जी ने बहुत बल दिया है क्योंकि निर्वीर्य व अल्पवीर्य व्यक्ति निस्तेज एवं रोगी रहते हैं।

प्रश्न तो परमेश्वर को न मानने और उसकी उपासना की आवश्यकता विद्यार्थियों पर क्यों लाद रहे हैं? यह तो बुड्ढों के समय काटने की बातें हैं।

उत्तर—ईश्वर को मानकर सदाचार पालन में श्रद्धा बढ़ती है, दृढ़ता होती है और वह सदाचार रोचक बन जाता है। जैसे एक लड़की माला गूंथती है निरुद्देश्य और दूसरी गूंथती है अपने भाई को पहनाने के लिए। पहली का मन शुष्क रहेगा दूसरी का सरस। ईश्वर को मानकर सदाचार-सेवन सरस बन जाता है। मनोबल बढ़ता है। उपासना से इन्द्रियों की चंचलता मिटती है। प्राणायाम से धैर्य मिलता है। रोग दूर रहते हैं। स्वास्थ्य बन जाता है। यह किसी मत मजहब की बात न होकर सार्वभौम हितकारक विधि है। स्वामी जी जिस उपासना विधि की शिक्षा दे रहे हैं, उससे विद्यार्थी का स्वास्थ्य बढ़ेगा और बुरे विचारों-आचारों से दूर रहने का भाव दृढ़ होगा। ईश्वरोपासना, सन्ध्या-हवन का अभ्यास बचपन से ही होना चाहिए, बुढ़ापे में क्या हो सकता है। सदाचार पर स्वामी जी का कितना बल है कि:—

"माता, पिता, आचार्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा उपदेश करें और यह भी कहें कि जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन-उनका ग्रहण करो और जो जो दुष्कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो।"

शिक्षा पर हर्बर्ट स्पेंसर ने एक बड़ी मोटी पुस्तक लिखी है और उसने बल दिया है कि शिक्षा विद्यार्थियों की मनोवृत्ति देखकर दी जावे। आज-कल के भी शिक्षा शास्त्री यही कहते हैं कि शिक्षा देने से प्रथम विद्यार्थियों की रुचि जानी जाये। विद्यार्थियों की स्वाभाविक रुचि को संयमित रखते हुए उसका उचित विकास रखना ही शिक्षा का लक्ष्य है। श्री स्वामी जी इसी को वर्णानुसार शिक्षा कहते हैं।

आचार्यलोग विद्यार्थी के लक्षणों से वर्ण जानकर उसका ही विकास करें किन्तु संयम अनिवार्य है। श्री स्वामी जी ने जो लिखा है "कि माता पिता बच्चों को सद्व्यवहार के मन्त्र, श्लोक गद्य-पद्य भी अर्थ सहित कण्ठ करा दें" यह भारत के लिए है, अन्य देश के लोग अपनी भाषा के सुभाषित कण्ठ करावें ताकि बालक उसही शिक्षा के अनुसार व्यवहार करना सीखें।

तीसरे समुल्लास में गुरुकुल की शिक्षा का आदर्श श्री स्वामी जी ने बताया है। गायत्री मन्त्र का उपदेश, सन्ध्या करना, प्राणायाम करना और हवन करना छात्रों के लिए अनिवार्य रखा है। धर्माचरण को स्वामी जी जीवन का उद्देश्य मानते हैं, फिर गुरुकुल में धर्माचरण पर बल क्यों न देते! गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम में स्वामी जी साम्यवाद का जीवन बिताना बता रहे हैं। देखो:—

"सबको तुल्य खान-पान आराम दिया जाये चाहे वह राजकुमार हो या दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए।"

समाजवादी देशों में भी ऐसी समान व्यवस्था अभी तक नहीं हो पाई है जैसी ऋषि दयानन्द ने लिखी है। इस व्यवस्था से वर्ग भेद, मिथ्या अभिमान, ईर्ष्या द्वेष नष्ट हो जायेंगे, सौहार्द बढ़ेगा, फिर घरों पर भी जाकर ऐसे विद्यार्थी धन पाकर भी विषय भोगों के दास नहीं बनेंगे। छुटाई-बढ़ाई के कारण पैदा हुई भावनायें मिट जायेंगी, फिर श्री कृष्ण और सुदामा की मित्रता के दृश्य देखेंगे। तब किसी को भी पूंजी और उद्योगों का राष्ट्रीयकरण न अखरेगा। यहां समाजवाद को जीवन में ढालने की विधि बता रहे हैं। मार्क्स को भी यह योजना नहीं सूझी। श्री स्वामी जी ने आचरण पर अधिक बल दिया है। सदाचारी जीवन—भोग विलासों में न फंसा जीवन—पूंजी में कोई मोह न करेगा, उसकी पूंजी जन हित के लिए होगी। श्री स्वामी जी विद्यार्थी जीवन से ही अनासक्ति योग की शिक्षा दिलाना चाहते हैं। ऐसे मनुष्यों का समुदाय संसार को स्वर्ग बना देगा। अब स्वामी जी ने व्याकरण निरुक्त आदि के पढ़ाने की

जो बात लिखी हैं वह धर्म के पण्डित बनाने वालों के लिए है। जो सामान्य जन हैं वे धर्म का साधारण ज्ञान करके अपने मनचाहे व्यवसाय की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

स्वामी जी लिखते हैं:—

"अर्थ वेद कि जिसको शिल्प विद्या कहते हैं उसको पदार्थ, गुण, विज्ञान, क्रिया कौशल नाना विधि पदार्थों का निर्माण पृथिवी से लेकर आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् सीख के अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है उस विद्या को सीख के दो वर्ष में ज्योतिष शास्त्र सूर्य सिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अंकगणित, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है उसको यथावत सीखें। तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्त क्रिया, यन्त्र कला आदि को सीखें।

(अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित पाठ रहा होगा जो अस्तव्यस्त हो गया है)।

श्री स्वामी जी विज्ञान (Science) यन्त्र कला टेक्नोलोजी की शिक्षा पर बल दे रहे हैं। क्योंकि ये विद्यायें सत्यार्थ प्रकाश में लिखे ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली हैं। सूर्य सिद्धान्त तो उदाहरण मात्र है, आज ज्योतिष शास्त्र पर अनेकों ग्रन्थ अन्य भाषाओं में हैं, उन्हें भी सीखें पढ़ें। विज्ञान और यन्त्र कला पर तो विदेशी भाषाओं में ही सीखना पढ़ना होगा। इन विद्याओं के ग्रन्थों को अपनी भाषा में अनुवाद करना चाहिए। छोटे से देश इस्राइल ने विज्ञान के यन्त्र कला के सब ग्रन्थों को अपनी भाषा में अनूदित कर लिया हमें भी अपनी भाषा के गौरव हित विज्ञान यन्त्र कला तथा अन्य उत्तम विषयों का राष्ट्र भाषा में अनुवाद शीघ्र कर डालना चाहिए।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वामी जी शिक्षा के विषय में कितने उदार हैं और उनकी शिक्षा दृष्टि कितनी व्यापक है।

श्री स्वामी जी ने प्रसंगवश यह भी लिखा है कि विद्यार्थियों को कुछ दार्शनिक कसौटियां भी सत्यासत्य विवेक की बतादी जायें, इसीलिए न्याय वैशेषिक दर्शन के अनेक सूत्र भी तीसरे समुल्लास में लिखे हैं। और इसी प्रसंग में लिखते हुए विद्वानों में फैली हुई इस भ्रान्ति को दूर किया है कि वैदिक दर्शनों में विरोध है। श्री स्वामी जी लिखते हैं—

प्रश्न सृष्टि विषय में छः शास्त्रों का विरोध है। मीमांसा कर्म, वैशेशिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य प्रकृति और वेदान्त ब्रह्म से सृष्टि उत्पत्ति मानता है। क्या यह विरोध नहीं है?

उत्तर—जैसा एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एक दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है, वैसे सृष्टि विद्या के भिन्न-भिन्न छः अवयवों का शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इसमें कुछ भी विरोध नहीं। जैसे घड़े के बनाने में कर्म,

समय, मिट्टी, संयोग वियोगादिका, पुरुषार्थ, प्रकृति के गुण, और कुंभार कारण हैं वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशेषिक में, अपादान कारण की व्याख्या न्याय में, तत्वों के अनुक्रम के परिगणन की व्याख्या सांख्य में और निमित्त कारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या वेदान्त शास्त्र में है । इसमें कुछ भी बिरोध नहीं'' छैओ दर्शनों का समन्वय कर देना यह ऋषि दयानन्द की अनुपम सूझ है । पण्डितों ने अपनी पण्डिताई जताने के लिए एक ही दर्शन में भिन्नतायें उत्पन्न करदी हैं । यथा न्याय में सत्कार्यवाद और असत्कार्यवाद को लेकर अच्छा द्वन्द्व होता है. ऐसा ही और दर्शनों में भी बिचार से देखो तो भारत के नौ दर्शन हैं, इनमें भी समन्वय हो सकता है ।

सबसे प्रथम मनुष्य की दृष्टि प्रकृति पर जाती है, ईश्वर, जीव तो दिखाई देते नहीं । इस चार्वाक दर्शन ने प्रकृति को ही संसार का कारण सिद्ध कर दिया । प्रकृति भी तो आवश्यक कारण है ही उपादान कारण ।

ईश्वर जीव कर्म फल आदि को न मानते हुए भी आचार्य बृहस्पति ने सदाचार पर, दान धर्मादि पर पूरा बल दिया, सद्व्यवहार का सदाचार का पालन तो अवश्य होना चाहिए यह चार्वाक का सिद्धान्त है ।

इससे आगे बढ़ा जाये को एक शक्ति जो विचार करने वाली है- विवेक करती है । स्मृति रखती है, वह तो प्रकृति से भिन्न ही है । वह है पंच स्कन्ध मय जीव, रूप संज्ञा संस्कार वेदना बिज्ञान इन पांचों का समूह ।

क्षण-क्षण परिवर्तन हो रहा है नाश और उत्पत्ति—यह है क्षणिकवाद । ''प्रतीत्य-समुत्पादवाद, बौद्ध दर्शन, जड़-प्रकृति के अतिरिक्त चेतन भी कुछ है, यह है बौद्ध दर्शन । और चेतन, मरने पर रूप, संज्ञा, संस्कार, वेदना, विज्ञान इन पांच स्कन्धों का समूह जीवात्मा पुनर्जन्म लेता है । संस्कारों के कारण सुख-दुःख, कर्म फल भोगता है । सदाचार और सद्विचार पर बौद्धदर्शन ने भी पूरा बल दिया है ।

ये पांचों स्कन्ध गुण ही हैं जिन्हें द्रव्य के आश्रय की आवश्यकता है । रूप तो प्रकृति में हैं, पर संज्ञा, संस्कार, वेदना, विज्ञान का आश्रय जड़ प्रकृति नहीं हो सकती । अतः जीव एक स्वतन्त्र संज्ञा है वह त्रिविध परिणामों वाला है अनेक आकार से उसका वर्णन होगा । यह है जैनों का 'स्याद्वाद ''अनेकान्त-वाद ।

कर्म फल भोग और पुनर्जन्म पर तो जैन दर्शन ने सबसे अधिक बिचार दिये हैं । सदाचार की शिक्षा तो जैन दर्शन का मुख्य लक्ष्य है । छैओं वैदिक दर्शन भी कर्म फल भोग और पुनर्जन्म को मानते हैं । भारतीय दर्शनों में क्रम विकास का कैसा अच्छा दर्शन होता है ।

जैन दर्शन जीवात्मा तक पहुंचता है तो आगे वेदान्त विश्वात्मा परमात्मा की व्याख्या करता है, योग को तो सबही ने स्वीकार किया है । योग तो एक व्यावहारिक (प्रेक्टिकल) दर्शन है, बौद्ध, जैन तो क्या मुसलमान सूफी और ईसाई संतों ने इसे अपनाया ।

मसीह के चमत्कार जो कि मसीह ने लामाओं से सीखे योग पर आधारित थे ।

श्री स्वामी जी ने उदारता पूर्वक विज्ञान कला आदि सब विद्याओं को सीखने की आज्ञा दी है, किन्तु जिन पुस्तकों से अन्ध विश्वास बढ़े या फलित ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र आदि इन भ्रमात्मक पुस्तकों की शिक्षा का विरोध किया है । हां, जब विद्यार्थी परिपक्वबुद्धि हो जाये तो खंडन के लिये इन ग्रन्थों को भी देखे । सब ही आर्य सम्प्रदाय सदा बुद्धिवादी रहे हैं । बिचारों का उत्तर विचार से ही दिया जाता रहा है तलवार से नहीं । श्री स्वामी जी ने यन्त्र कला, विज्ञान, गणित की शिक्षा प्राप्त करने का उपदेश दिया है । यत्र तत्र वेद भाष्य में भी विज्ञान को पढ़ाना आवश्यक बताया है अथर्ववेद और यजु-र्वेद में कई स्थानों पर विज्ञान के संकेत मिलते हैं । ऋग्वेद में भी अनेक मन्त्रों में विज्ञान सम्बन्धी संकेत मिलते हैं । चाणक्य मुनि के अर्थ शास्त्र में भी कई प्रयोग विज्ञान सम्बन्धी हैं । किन्तु ईसाई मत के गुरुओं (पोपों) ने विज्ञान का गणित का शक्ति भर विरोध किया । हाईप्रेशिया नामक स्त्री को रेखागणित का प्रचार करने पर जीवित जला दिया गया । गैलीलिओ को भी बड़े कष्ट दिये गये । कई वैज्ञानिक मारे भी गये किन्तु विजय विज्ञान की हुई । अब पादरी ठण्डे पड़ गये हैं । चुप हैं । मुसलमानों ने भी ज्ञान, विज्ञान का घोर विरोध किया और अब भी करते हैं । खलीफा उमर ने सिकन्दरिया का पुस्तकालय फुकवा दिया जिसमें कई लाख पुस्तकें थीं । स्पेन के खलीफा हकुम का मंत्री काजी मंसूर इब्ने अली था । हकम के पुस्तकालय में ४ लाख पुस्तकें गणित, दर्शन, ज्ञान विज्ञान की थीं हकम के मर जाने पर इस मन्त्री ने मुसलमानों से राय लेकर सब पुस्तकें फुकवा दीं । यह बड़ा कट्टर मुसलमान था । भारत में भी मुसल-मानों ने पुस्तकें जला दीं । चित्र नष्ट किये । मूर्तियाँ तोड़ीं । कला के ये घोर विरोधी रहे । भारत की मूर्तियाँ और चित्र भावाभिव्यक्ति में अनुपम कलात्मक थे जो इन बर्बरों ने सब नष्ट कर डाले । सीकरी में अकबर ने अपने शयना-गार में चित्र बनवाये थे क्योंकि अकबर मजहब में कट्टर नहीं था, परन्तु औरंगजेब ने उन सब चित्रों को बिगड़वा दिया । यह काण्ड सीकरी में आज भी देखा जा सकता है । औरंगजेब कट्टर मुसलमान था अतः चित्रकला, संगीत कला आदि सब कलाओं का घोर विरोधी था । जबलपुर में नर्मदा के किनारे भेड़ाघाट में बने चोंसठ योगिनियों के मन्दिर में सब मूर्तियों के नाक, मुख आदि टूटे हुए हैं जो औरंगजेब की सेना का कुकृत्य है । चित्तौड़ में भी महाराणा

कुम्भा के कीर्ति स्तम्भ की सब मूर्तियाँ खण्डित मिलेंगी। जो अकबर की सेना की कुचेष्टा है। इस्लाम से बढ़कर कला और विज्ञान का और कोई विरोधी नहीं। इसीलिये संसार भर के मुसलमान विद्या एवं कला में पिछड़े हुए हैं।

श्री स्वामी जी ने रघुवंश, किरातर्जुनीय जैसे काव्यों को हिन्दी में गोस्वामीतुलसीदास जी की रामायण को अपठनीय ठहराया है, इसपर आश्चर्य होता है कि आर्ष ग्रन्थों के अतिरिक्त सबका ही पठन-पाठन वर्जित कर देना बड़ी भारी संकीर्णता है, किन्तु यहां श्री स्वामी जी को यह भय है कि बालकों के हृदयों पर पौराणिक प्रभाव पड़कर इनमें कहीं अन्ध विश्वास न भर जाये। इन काव्यों में और पंडितों के बनाये अन्य ग्रन्थों में भी पौराणिक विचार भरे हुए हैं अतः स्वामी जी छोटे बालकों में, कोमल मतियों में इनका पठन नहीं चाहते।

वैसे तो वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत भी अन्धविश्वासों की कथाओं से भरे पड़े हैं और इनकी भी छांट होनी चाहिए, इन्हीं के आधार पर काव्य रचना हुई है।

बुद्धि में विवेक शक्ति जाग्रत हो जाये, और तर्क से काम लेना आ जाये, तो कोई भी ग्रंथ पढ़ा जा सकता है। वैसे यह काव्य बहुत उच्च कोटि के हैं। संस्कृत भाषा की अमूल्य निधि हैं। इनको बड़ा होने पर अवश्य पढ़ा जाये इन जैसा साहित्य अभी तक तैयार नहीं हो सका है। कादम्बरी जैसी संस्कृत लिखने की कोशिश श्री पं० अम्बिकादत्त व्यास वाराणसी ने की और शिवराज विजय गद्य काव्य लिखा और बहुत अच्छा लिखा परन्तु बाण कवि तक नहीं पहुंच सके। वह समय विक्रम से लेकर सम्राट् श्री हर्ष तक का संस्कृत का स्वर्ण युग रहा था।

गोस्वामी जी की रामायण भी हिन्दी भाषा का गौरव है, हां इन सब को प्रमाण रूप में न रखकर साहित्य में लेना ही ठीक होगा। रही श्री स्वामी जी की पाठ-विधि, वह संस्कृत के पंडित, धर्मोपदेशक अध्यापक बनने के लिए तो ठीक है परन्तु अब जो शिक्षा में नये-नये विषय नये-नये कला कौशल आ रहे हैं उनके लिए व्याकरण एवं दर्शनों के पढ़ने से कुछ लाभ नहीं होगा। सामान्य रूप से संस्कृत तो सबको अवश्य ही जाननी चाहिए, क्योंकि यह विश्व भर की भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी है, सब भाषाओं की माता है, दर्शन शास्त्रों की मोटी-मोटी मान्यतायें भी विद्यार्थियों को बतला दी जायें जैसे पुनर्जन्म, कर्म फल, भोग, त्रैत वाद आदि किंतु विज्ञान एवं कला के विद्यार्थियों को अधिक व्याकरण एवं दर्शन पढ़ने का समय कहां मिलेगा।

तब क्या स्वामी जी की पाठ-विधि व्यर्थ है? नहीं वह ठीक ही है। संस्कृत पण्डित बनने के लिए उसी पाठ विधि को काम में लाना चाहिए और आर्य

समाजियों को चाहिए कि नये काव्य नाटक तैयार करायें। पण्डितों की कमी नहीं है किन्तु कोई उनसे काम भी तो ले। स्वर्गीय पं० अखिलानन्द जी ने, पं० दिलीपदत्त शर्मा, गुरुकुल वृन्दावन के स्नातक पं० मेधाव्रत जी, पं० द्विजेन्द्र नाथ जी शास्त्री ने आर्य साहित्य तैयार भी किया किन्तु उनकी कदर नहीं की गई। इस समय भी पं० हरिदत्त शर्मा पी.एच. डी. आशु कवि पं विशुद्धानन्द जी मिश्र बदायूं, जिनकी पत्नी निर्मला मिश्रा विदुषी हैं और बच्चों की मातृ-भाषा संस्कृत है, पं० गंगाधर जी बिहार वाले इस प्रतिभा के विद्वान् हैं कि वांच्छित ग्रन्थ तैयार कराये जा सकते हैं किन्तु इनको इकट्ठा करके काम प्रतिनिधि सभायें ही ले सकती हैं, पर इन सभाओं का इधर कोई ध्यान नहीं है। मौर्यकाल से लेकर सम्राट् हर्ष तक का संस्कृत साहित्य अन्धविश्वासों से भरा पड़ा है। अतः स्वामी जी ने इसे पढ़ने को मना किया है।

तृतीय समुल्लास में जो यज्ञ पात्रों के चित्र छपे हैं उसका उपहास पं अखिलानन्द जी ने उड़ाया है और लिखा है कि ये चित्र वेदों में तो हैं नहीं और सूत्र ग्रन्थों से मिलते नहीं। ठीक है। सूत्र ग्रन्थों में लिखे यज्ञ पात्र भिन्न-भिन्न सूत्रों के भिन्न-भिन्न पात्र हैं उनकी लकड़ियां भी अलग-अलग हैं। कोई ढाक की लकड़ी बताते हैं, कोई शमी की, कोई खादिर की, यज्ञ कुंड के भी आकार भिन्न-भिन्न हैं। श्री स्वामी जी सब शाखावालों, और सूत्रवालों में एकता लाना चाहते थे. अतः यज्ञ पात्रों में एकीकरण का सुधार किया और चित्र दे दिये। इससे हानि क्या हुई? एकता का लाभ ही हुआ।

● ★ ●

चौथा समुल्लास

चौथे समुल्लास में वर्णन है गृहस्थाश्रम का। यह आश्रम सुखदायी और जनहितकारी कैसे बने, यही सब विचार इस समुल्लास में मिलेंगे। स्वामी जी ने बाल-विवाह का घोर विरोध किया है। यह सन्तोष की बात है कि बाल-विवाह अब हिन्दुओं में बिल्कुल बन्द हो गये। ईसाइयों में पहले ही बन्द थे अब मुसलमान भी बाल-विवाह के विरुद्ध आवाज उठा रहे हैं। जो पौराणिक पण्डित बाल-विवाह का पक्ष लेकर शास्त्रार्थ करते थे वे अब मुंह छिपाये पड़े हैं। उनकी ही लड़कियों का विवाह युवावस्था में हो रहा है। इस विषय में आर्य समाज की विजय है। परन्तु ऋषि की इच्छा पूरी नहीं हो रही है। स्वामी जी का प्रयोजन था कि बाल-विवाह न हों और ब्रह्मचर्य की साधना की जाये, अब बाल-विवाह तो बन्द हो गये, परन्तु ब्रह्मचर्य की साधना नहीं हो रही। पश्चिमी सभ्यता के प्रलोभन में पड़े हमारे बालक-बालिकायें चरित्र-भ्रष्ट बन रहे हैं। दैवी सम्पद् को भुलाकर आसुरीसम्पद् की उपासना कर रहे हैं। भोग-विलास, फैशन, शौकीनी जितनी नवयुवतियों और नवयुवकों में है उतनी प्रौढ़ों और बृद्धों में नहीं। खान-पान भी बिगड़ा हुआ है, अंडे, माँस, मदिरा का सेवन विद्यार्थी भी कर रहे हैं। इस सबका कारण है कामुकता को बढ़ावा देने वाले सिनेमा देखना, ऐसे उपन्यास पढ़ना और ऐसे लोगों की संगति करना। स्त्रियों के नृत्य-नाटक आदि से छात्रवर्ग दूर रहे, युवकों से लड़कियां अलग रहें।

अब एक प्रश्न और उठता है कि बाल-विवाह का विरोध और युवावस्था के विवाह का प्रबल समर्थन स्वामी जी ने जो किया है क्या यह अंग्रेजों से प्रभावित होकर ही तो नहीं किया था?

उत्तर है बिल्कुल नहीं। ब्राह्म समाज वाले तो जो सुधार या बिगाड़ करते थे यह अंग्रेजों की नकल पर ही करते थे। किन्तु स्वामी जी पर रत्ती भर भी विदेशी प्रभाव नहीं था। वे अपने सनातन धर्म पर, अपने वेदों और ऋषि ग्रन्थों पर अपार श्रद्धा रखते थे। उन्होंने युवावस्था के विवाह का प्रबल समर्थन अपने धर्म ग्रन्थों और पुरातन परम्पराओं के आधार पर किया है।

वेद मन्त्रों के प्रमाण भी उन्होंने दिये हैं। वेदों में कहीं भी बाल-विवाह का विधान नहीं है और आर्ष ग्रन्थों में ही। "तममेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः" युवतियों और युवाओं का ही सम्बन्ध भी मिलता है। ऋषि-कन्याओं के विवाह भी युवती होने पर ही होते रहे। देखो शकुन्तला का विवाह कब हुआ? कात्यायनी कब विवाहित हुई? राजकन्याओं के स्वयंवर किस आयु में होते थे? अपनी माननीया भगवान् कृष्ण जी की प्रिया रुक्मिणी जी का भी स्वयवर किस अवस्था में हुआ? यह श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अ० ५३ में देखो :—

> तां देवमायामिव वीरमोहिनीं,
> सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम्।
> श्यामां नितम्बार्पित रत्नमेखलाम्॥
> व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशंकितेक्षणाम्॥

श्लोक में शब्द है 'श्यामाम्' श्यामा षोडशवार्षिकी १६ वर्ष आयु की स्त्री श्यामा कहलाती है। दमयन्ती का विवाह जवान आयु में हुआ। काव्य नाटकों में सब विवाह युवावस्था में ही दिखाये गए हैं।

भगवती सीता का विवाह ६ वर्ष की आयु में हुआ और राम थे तब १४ वर्ष के, यह गपोड़ा आज-कल की गढ़न्त है। वाल्मीकि रामायण में तो अत्रि मुनि की पत्नी अनसूया देवी जी से बात-चीत करती हुई सीताजी कह रही हैं:—

> पतिसंयोगसुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता।
> चिन्तामभ्यगमद् दीनो वित्तनाशादिवाधनः॥
> अयोध्या का० ११८।३४

मेरी आयु को पति से मिलने योग्य समझकर मेरे पिता मेरे विवाह की चिन्ता करने लगे।

इस प्रकार पाराशरस्मृति और शीघ्रबोध का कोई भी आचरण नहीं करता। ये विधान नये हैं और मुसलमानों के यहां आ जाने पर बनाये गये हैं। मुसलमान अविवाहित लड़कियों का अपहरण करते थे अतः बाल्यावस्था में विवाह चलाया गया और मुसलमानों के अत्याचारों के कारण ही सती प्रथा को अनिवार्य किया गया तथा क्षत्रियों में पैदा होते ही मार डालने की प्रथा भी चली। जो सन् ५७ के गदर तक रही। अंग्रेजी राज्य में ही ये प्रथायें बन्द हो सकीं।

अब श्री स्वामी जी का वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में तो घोर क्रान्तिकारी मौलिक विचार है। वैसे तो अब जन्मना ऊंच-नीच का कोई महत्व नहीं रहा गुण कर्म की पूरी विजय हो चुकी है। किन्तु कुछ रूढ़िवादी जन शास्त्रों की दुहाई देकर अब भी जन्मना वर्ण व्यवस्था का प्रचार करते रहते हैं। श्री स्वामी जी ने वर्ण व्यवस्था को मान्य किया है और वेद शास्त्र और स्मृतियों के आधार पर वर्ण व्यवस्था का आधार गुण कर्म स्वभाव को ठहराया है। अब इसकी भी परीक्षा करनी है। कर्म से वर्ण होते हैं, या जन्म से? जन्म से वर्ण तो प्रत्यक्ष के ही विरुद्ध हैं। विद्वानों के पुत्र मूर्ख और मूर्खों के विद्वान् देखे जा रहे हैं, जन्मना तो सभी मनुष्य एक से हैं। गुण कर्म ही उनमें भेद करता है। गुण कर्म की योग्यता ही मनुष्यों को छोटा-बड़ा बनाती है। वेद ही स्वयं कहता है कि वर्ण कल्पित हैं, आरोपित हैं, स्वतः सिद्ध नहीं।

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयत्। यजु. ३१।१०

विराट् पुरुष (मानव समाज) की कल्पना किस प्रकार की गई?

तो उत्तर है:—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्य कृतः।

ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ यजु. ३१।११

उक्त मन्त्र में वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जो विभक्त किए गये हैं वे योग्यता से किए गए हैं। मुख की योग्यता वाला अर्थात् वाणी का धनी और वाणी का प्रचारक। बाहु-बाहुओं के कर्म रक्षण करने की योग्यता वाला। ऊरु मध्यभाग, उदर भरण-पोषण का स्थान। समाज के भरणपोषण की शक्ति रखने वाला। पद (पांव) भार ढोने वाला, जहां को ऊपर के अंग प्रेरणा दें वहां ले चलने वाला अर्थात् ऊपर के तीनों वर्णों का सहायक।

मन्त्र ने स्पष्ट कर दिया कि विना योग्यता के विभाजन गलत है। अंगों की उपमा देकर गुण कर्म बहुत स्पष्ट रूप से बता दिये हैं।

रायबरेली में एक विद्वान् पण्डित जी ने शंका में पूछा कि "पद्भ्यां शूद्रो अजायत' यह 'अजायत' क्रिया जन्म वर्ण सिद्ध कर रही है?

हमने उन्हें उत्तर में बताया 'कि शूद्र के लिए 'अजायत' का प्रयोग हुआ है। शूद्र जन्मना ही रहता है। जो गुण, कर्म धारण न कर पावे और जैसा जन्मा वैसा ही रहे वह शूद्र है। इस मन्त्र में ब्राह्मण के साथ 'आसीत्' क्षत्रिय के साथ 'कृतः' वैश्य को 'कृतः' की अनुवृत्ति और ब्राह्मण में भी कृतः की उद्वृत्ति होगी। शूद्र के निर्माण के लिए कुछ काम नहीं करना होगा, प्रत्युक्त जनी प्रादुर्भावे का यही अर्थ है कि जन्मजात शूद्रत्व प्रादुर्भूत हो जायेगा। परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का निर्माण होगा शिक्षा द्वारा।

प्रश्नः—तो शूद्र का निर्माण करके उसे भी ब्राह्मणादि क्यों न बनाया जाए?

उत्तरः—अवश्य। मानव मात्र को सुशिक्षित और सुसंस्कृत किया जाना चाहिए। श्री स्वामी जी ने लिखा भी है कि सब बालकों को गुरुकुल में भेज दिया जाए वहां रहकर भी जो कुछ न बन सके वह शूद्र ठहरेगा।

प्रश्न—तो इस प्रकार तो शूद्र बहुत कम ठहरेंगे।

उत्तर—हां, बिलकुल कम। शूद्र और ब्राह्मण बहुत नहीं हुआ करते। त्यागी, तपस्वी, लोकहितकारक ब्रह्मवेत्ता कम ही होते हैं और जो सिखाये से भी न सीखे, केवल श्रम कर सकें—ऐसे लोग भी कम ही रहें तो लोकहित है। क्योंकि :

यद् राष्ट्रं शूद्रबहुलं, नास्तिकाक्रान्तमद्विजम्।

विनशत्याशु तत् कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥ मनु०

यह ही हुआ भी। जाति-पाँति का वर्णन फैलाने और करोड़ों व्यक्तियों को शूद्र बना डालने से भारत निर्बल बन गया। राजपूतों के हारते ही सब हिन्दू चुप रह जाते थे। विदेशी शासक बन जाते थे, विजेता हो जाते थे। देश में करोड़ों लोग लड़ने योग्य थे किन्तु अदूरदर्शी रुढ़िग्रस्त ब्राह्मणों ने इन्हें शस्त्र-हीन, उत्साहहीन, आत्मविस्मृत कर रखा था।

स्मृतियों को देखो तो बड़ा क्षोभ होता है, उस समय के ब्राह्मण और क्षत्रियों की मनोवृत्ति वही थी जो इस समय दक्षिण अफ्रीका के गोरों की है। बुरा से बुरा गोरा शासन योग्य और उत्तम से उत्तम भी अन्य अयोग्य। यही स्मृतियों में है। अयोग्य ब्राह्मण भी पूज्य और बुद्धिमान् सदाचारी भी शूद्र पड़ा रहे गढ़े में। उसे उन्नति का अधिकार ही नहीं। इसी पाप का फल हिन्दुओं को मिला विदेशी और विधर्मियों के आक्रमणों से।

स्मृतियों में कर्म की भी प्रधानता पाई जाती है किन्तु उसे दबाकर रखा गया था। देखो कर्मों का प्राधान्य—

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम्।

आर्य रूपमिवाऽनार्यं कर्मभिः स्वैर्विभाजयेत् ॥ मनु. १०।५७

अनार्यता निष्ठुरता, क्रूरता निष्क्रियात्मता।

पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ मनु. १०।५८

जो अनजान मनुष्य वर्णरहित हो और निन्दित योनि (शूद्रजाति) में उत्पन्न हो और अनार्य के समान माना हुआ वह यदि आर्यरूप है (आर्यों का

सा आचरण रखता है) उसके कर्मों से उसका विभाग किया जाये, कर्म योग्य वर्ण उसे मिले। (५७)

अनार्यपन, निष्ठुरपन, क्रूरता, (निर्दयता), निकम्मा रहना (आलसी, प्रमादी) ये दुर्गुण प्रकट करते हैं कि यह मनुष्य नीच कुल का है (५८)

और देखिए:—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु, विद्याद् वैश्यात्तथैव च ।। मनु. १०।६५

शूद्र ब्राह्मणत्व को पा लेता है, और ब्राह्मण शूद्रता को। क्षत्रिय और वैश्य से भी इसी प्रकार जानो कर्मों से यह परिवर्तन हो जाता है। और देखिए :—

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत् प्रजायते।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं, गच्छत्यासप्तमाद् युगात् ।।

यदि कोई शूद्र स्त्री में पैदा हुआ हो किन्तु ब्राह्मण से पैदा हो तो वह नीच भी सात पीढ़ियों के बाद ऊंच जाति को पा लेगा।

ये सब श्लोक भी मनुस्मृति दशम अध्याय के हैं। कभी-कभी इस पर आचरण भी हुआ होगा किन्तु आजकल तो धड़ल्ले से आचरण हो रहा है। जन्म का महत्व लगभग मर चुका है। कर्म की, गुण की विजय है। मुसलमानों में से शुद्ध होकर अनेक जन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बन गये और सनातन धर्मियों ने भी उन्हें पूरी तरह अपनाया हुआ है। जाति-पांति और वर्णव्यवस्था पर अब शास्त्रार्थ बन्द हो चुके हैं। गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था पर तो ऋषि दयानन्द की शत-प्रतिशत विजय है।

मातंग की कहानी :—

यह कथा अनुशासन पर्व(महाभारत अध्याय २७-२८) में है। किसी ने ब्राह्मणत्व का महत्व दिखाने को लिखी है। गधी का मनुष्य वाणी में बोलना मातंग का शारीरिक तप सब गप्पमात्र है परन्तु श्री स्वामी जी ने पौराणिकों के लिए उदाहरण रूप से ठीक प्रस्तुत की है कि तुम्हारे ही ग्रन्थ द्वारा वर्ण परिवर्तन पाया जाता है। इस पर एक और भी विचार है यदि गधी नहीं बताती तो मातंग ब्राह्मणों में ही मिला रहता या नहीं? और इस समय क्या पता है कि द्विजों में कितने मातंग मिले हुए है। मातंग की पहचान कराने वाले उसके गुण कर्म एवं स्वभाव ही तो हुए। अतः गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण की मान्यता श्री स्वामी जी का कितना अटल सिद्धान्त है। गुण और स्वभाव से मातंग पहचान लिया गया किंतु आज ब्राह्मणों में मातंग से भी अधिक क्रूर कुटिल दुष्ट व्यक्ति पाये जाते हैं। इनका क्या करोगे?

सन्तान बदलना

श्री स्वामी जी ने यह विचार भी किया है। किसी शूद्र का लड़का ब्राह्मण हो जाए तो वह ब्राह्मण को दे दिया जाए और ब्राह्मणादि का जो लड़का शूद्र ठहरे तो वह शूद्र मान लिया जाए।

इस पर पौराणिक लोग बड़े आक्षेप करते हैं कि उस अन्यान्य पिता-पुत्रों में प्रीति होना, स्नेह रहना, ममता होनी अस्वाभाविक है। श्री स्वामी जी की यह बात जबरदस्ती की थोप-थाप है, मनोविज्ञान के विपरीत है। मन को भी यह बात नहीं सुहाती और शूद्र को तो बड़ा घाटा रहा कि उसका योग्य बना पुत्र उससे छिन गया। आक्षेपकर्ता की बात ठीक लगती है किन्तु स्वामी जी जहाँ पहुंच रहे हैं वह बहुत दूर की बात है, समाजवाद व साम्यवाद यह पसन्द नहीं करता कि पिता की कमाई संतानों को मिले, इससे पूंजीवाद को बढ़ावा मिलता है, यहां भी स्वामी जी का विचार कुछ ऐसा ही है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की अर्जित सम्पत्ति, सम्मान और ख्याति से उसके अयोग्य पुत्र लाभ उठा सकें, उस उत्तम धन का प्रयोग विषय भोगों में करके पाप का प्रचार न कर सकें। अयोग्य पुत्रों को (अपनों को) वह सम्पत्ति न मिलकर अन्यों के योग्य पुत्रों को मिले। सम्पत्ति, सन्तति और समाज का राष्ट्रीयकरण चाह रहे हैं स्वामी जी। यह सब कानून (विधान) के बल पर मानना ही होगा वैसे अपने जन्मदाता पिताओं औरसों पुत्रों से तो सम्बन्ध वर्ण बदल जाने पर भी रहेंगे ही। हमने गरीबों के पुत्र देखे हैं जो धनियों या जमींदारों ने गोद लिये थे, इन्होंने सम्पत्ति पाकर अपने गरीब माता-पिता को भी बुलाकर अपने पास रखा हुआ था।

पौराणिक पंडित कहा करते हैं दूसरे के धन को अपना मत समझो, लोभ लालच मत करो किंतु वह धन यदि वैधानिक (कानूनी) रीति पर मिल जाए तो अवश्य लो, गोद लिए पुत्र सम्मत माने गये हैं तो ये वर्ण परिवर्तित पुत्र भी अपनाने पड़ेंगे और दाय भागी होंगे।

सालम मिसरी का नुसखा

पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ में आर्यसमाजी पण्डितों से बड़े घमंड में पूछा करते थे कि स्वामी जी ने सम्भोग के उपरान्त सालम मिसरी आदि औषधों का सेवन दूध के साथ बताया है, यह दिखाओ वेद में कहां है? आर्यसमाजी पंडित चकरा जाते थे, और आयुर्वेद के ग्रन्थों के प्रमाण देने लगते थे। पौराणिक पण्डित बड़ी बगलें बजाते थे। किन्तु यह सब चालाकी की बातें थीं। स्वामी जी ने इस प्रयोग को वेद के नाम से कहाँ लिखा है? जो वेद में दिखाया जावे यह तो उन्होंने वैद्यों के अनुभूत प्रयोगों का एक प्रयोग बता दिया है ताकि अपने देश के पुरुष स्वस्थ रहें। हां, यह बताओ कि इस नुस्खे में बुराई क्या है?

कौन सी दवा खराब है। सैकड़ों नुस्खे प्रचलित हैं। सितोपलादि चूर्ण, हिंग्वष्टक चूर्ण वेदों में कहां लिखे हैं, किन्तु ये आयुर्वेद के बड़े लाभकारी प्रयोग हैं।

अब चौथे समुल्लास में एक बहुत ही विवादास्पद विषय है नियोग। ईसाई, मुसलमान, पौराणिक जैन आदि सब ही नियोग के विरुद्ध हैं और इसका उपहास उड़ाते हैं। और यह मृत विषय है कहीं भी नियोग-प्रथा चालू नहीं है। आर्यसमाज में भी नहीं है, फिर इस पर वाद-विवाद क्यों होता है? क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश में यह विषय सिद्धान्त रूप से माना गया है। अतः इस पर विवाद होता है।

अब शोध यह करना है कि यह काम स्वामी जी ने अपनी ओर से ही लिख मारा या इसका कोई शास्त्रीय आधार भी है? यदि इस विषय में महाभारत का अध्ययन किया जाये तो नियोग के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। कुन्ती ने नियोग से ही पांचों पुत्र प्राप्त किए। पाण्डु तो रोगी था उसे वैद्यों ने स्त्री सग का मना रखा था। धृतराष्ट्र और पाण्डु की उत्पत्ति नियोग से हुई दीर्घतमा ने उड़ीसा के राजा बलि की रानियों में नियोग द्वारा अनेक पुत्र उत्पन्न किये, पढ़ो महाभारत आदि पर्व अध्याय १०४ से १०६ तक और अध्याय २१ में तो पाण्डु कुन्ती से कहता है :—

इमे वै बन्धुदायादाः षट् पुत्राः धर्मदर्शने ।
षडेवाऽबन्धुदायादाः पुत्रास्ताञ्छृणु मे पृथे ।।
स्वयं जातः प्रणीतश्च परिक्रीतश्च यः सुतः ।
पौनर्भवश्च कानीनः स्वैरिण्यां यश्च जायते ।।
पुत्रः क्रीतः कृत्रिमश्च उपगच्छेत् स्वयं च यः ।
सहोढोज्ञातिरेताश्च हीन ·······धृतश्च यः ।।
पूर्वा पूर्वतमाभावं मत्वा लिप्सेत वै सुतम् ।
उत्तराद्देवरात् पुँसः कांक्षन्ते पुत्रमापदि ।।

(महाभारत आदि पर्व अ० १२१।३२-३५

उक्त श्लोकों में अनेक प्रकार के पुत्रों का वर्णन करते हुए पाण्डु ने (उत्तराद्देवरात्) उत्तम देवर से उत्पन्न पुत्र का भी वर्णन किया, देवर निरुक्त के अनुसार नियोग करने वाले पति को कहा जाता है।

"देवरः कस्मात् द्वितीयो वर उच्यते"।

धृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर नियोग से हुए और कुन्ती के पुत्र भी नियोगज थे। पौराणिक पण्डितों का कहना है कि कुन्ती पुत्र देवज थे; किन्तु महाभारत के पढ़ने से ये सारी कल्पनायें निर्मूल हो जाती हैं। दृष्टि मात्र की ही बात

थी तो रानियां इतना डर क्यों गयीं कि एक ने आंखें बन्द करलीं और दूसरी डर से पीली पड़ गई। और वहाँ यह भी है कि शय्या पर रानियों के आ जाने पर यह सब कुछ हुआ। देवपुत्रत्व की कल्पना साध्यसम हेत्वाभास है। पहले देवों के अस्तित्व को सिद्ध करो तब यह कल्पना बन सकेगी।

सत्यार्थप्रकाश में दिये 'उदीर्ष्व नारी" मंत्र पर पौराणिक माधवाचार्य बड़ा करुण दृश्य खींचकर सत्यार्थप्रकाश को हृदय-हीन बताया करता है। यह पण्डित वाक्छल कर प्रमाणों को असंगत करने में ही अपनी चतुराई समझा करता है। वह कहता है—इधर पति की लाश पड़ी है। स्त्री विलाप कर रही है और उधर स्वामी दयानन्द उस स्त्री को नियोग का उपदेश दे रहे हैं। इसकी यह बकवास सुनकर जनता सत्यार्थप्रकाश पर घृणा करने लग जाती है।

किन्तु इस व्यक्ति से पूछा जाये कि सत्यार्थप्रकाश में कहां लिखा है कि इस विधवा को उस समय यह कहा जाये कि उठ नियोग कर जबकि वह पति के पांव पर पड़कर विलाप कर रही हो। सत्यार्थप्रकाश में कहीं नहीं लिखा श्री स्वामीजी ने तो यह मन्त्र प्रमाण स्वरूप दिया है कि इससे नियोग सिद्ध होता हे। और वास्तव में इस मन्त्र में नियोग का होना स्पष्ट है। मन्त्र में शब्द हैं—'दिधिषोः', इसका अर्थ है पुनः होने वाले पति का। देखो अमर कोश "पुनर्भू दिधिषुः पतिः, दिधिषु का अर्थ है पुनर्भू पति—दूसरा पति। जिन लोगों में आज भी विधवा विवाह चालू हो उनमें दूसरे पति को धरेजे का पति कहा जाता हैं और इस विवाह को 'धरेजा' यह दिधिषु का ही धात्वर्थ है। लाश पडी हैं विधवा विलाप कर रही है उस समय उस विधवा को यह मन्त्र सुनाया जाये ऐसा सत्यार्थ प्रकाश में तो कहीं नहीं लिखा। हां, यह विधान पौराणिकों के मान्य भाष्यकार आचार्य सायण का है और सायण ने भी सूत्र ग्रन्थ के प्रमाण से लिखा है, लो पढ़ो सायण का लेख —

देवरादिकः प्रेतपत्नीमुदीर्ष्व नारी ······ भर्त्तुः सकाशादुत्थापयेत्। सूचितं च। तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽन्तेवासी जराद्दासो वा (सायणभाष्य) ऋक्० १०।१८।८

अपना कूड़ा हमारे घर फेंककर हम पर आक्षेप कर रहा है, है न पूरी धूर्त्तता! वञ्चकता!!

इसी प्रकार उक्त पण्डित श्री स्वामी जी पर आक्षेप करता है कि श्री स्वामी जी ने वेद-पाठ बदल दिया। "देव कामा" का देवृ कामा कर दिया। इस निर्लज्ज झूठे को अथर्व वेद का भाष्य सनातन धर्म प्रेस मुरादाबाद का छपा देखना चाहिये चाहे बम्बई का छपा वहां 'देवृकामा' पाठ ही है। अथर्व वेद में सर्वत्र 'देवृकामा' और ऋगवेद में 'देवकामा' शब्द है। अर्थों में कोई

भेद नहीं। जो भाव श्री स्वामी जी ने 'देवृकामा' से लिया है वही सनातन धर्म के प्रेस वाले हिन्दीभाष्य में विद्यमान है।

। । थर्ववेद में देखो स्पष्ट दूसरे पति का (चाहे वह नियोग द्वारा हो चाहे पुनर्विवाह द्वारा) वर्णन है।

आचार्य सायण गृह्यसूत्र का प्रमाण देकर कहते हैं कि पति की लाश पर पड़ी स्त्री को, देवर, विद्यार्थी, खास सम्बन्धी वा घर का बूढ़ा सेवक यह मन्त्र पढ़कर उठावे।

अब बताओ स्वामी जी बेमौके बात कर रहे हैं वा सायण, वा गृह्यसूत्र। श्री स्वामी जी का प्रयोजन तो केवल इतना ही है कि इस मन्त्र से नियोग सिद्ध है। जब मन्त्र में 'दिधिषु' शब्द विद्यमान है तो कोई भी पण्डित नियोग या पुनर्विवाह को झुठला नहीं सकता।

या पूर्वं पतिं वित्त्वा अथान्यं विन्दतेऽपरम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः। अथर्व. ९।५।२७
समानलोको भवति पुनर्भुवाऽपरः पतिः॥

दोनों मन्त्रों में पुनर्भू (दूसरे) पति का वर्णन है यदि कहो कि यह विधान शूद्रों के लिये है तो गलत बात है क्योंकि पति-पत्नी दोनों के लिये वेद ने पंचौदन यज्ञ का विधान किया है यह विधान द्विजों के लिये ही है। आज भी नियोग तो बन्द है परन्तु विधवा विवाह ब्राह्मण, खत्री, वैश्य, ठाकुर, कायस्थ इन पाँच बिरादियों को छोड़कर सब में चालू है।

अब मनुस्मृति को देखें तो पता चलता है कि नियोग की रीति बहुत पुरानी है। महाराज वेन ने किसी कारण से इसे बन्द कर दिया था किन्तु फिर भी यह प्रथा अब से दो सहस्र वर्ष पहले चालू रही और सिन्ध में जब अलबेरुनी आया है तब तक चालू थी। उसने इसकी चर्चा अपनी पुस्तक 'अल हिन्द' में की है। अस्तु, अब तो नियोग की प्रथा बन्द ही हो गयी क्योंकि जनता में ऐसा नियम ही नहीं है, हां विधवा-विवाह अब चालू हो गया है। पौराणिक भी अब इसे स्वीकार कर रहे हैं। अमरोहे के पौराणिक पण्डित रामानुजी वैष्णव घोर सनातनी पं. लक्ष्मी नारायण उपाध्याय ने तो पुनर्विवाह पद्धति भी छपा दी है। यदि अब दो सौ तीन सौ वर्ष पूर्व ये अदूरदर्शी ब्राह्मण पुनर्विवाह को स्वीकार कर लेते तो बंगाल में बलात् सती किये जाने से लाखों स्त्रियाँ बच जातीं। किन्तु इन रूढिग्रस्त जड़मतियों ने उस समय डटकर विधवा विवाह का विरोध किया। श्री स्वामी जी ने भी द्विजों में विधवा विवाह का विरोध कर नियोग का समर्थन किया है। विधवाओं के पुनः संस्कार पर स्वामी जी ने जो हानियाँ दिखाई हैं वे विचारणीय हैं। अक्षतयोनि स्त्रियों के पुनर्विवाह का तो स्वामी जी ने समर्थन किया है, किन्तु

द्विजों में सन्तान वाली बिधवाओं का पुनर्विवाह स्वामी जी को रुचिकर नहीं है। इससे कुल अस्त-व्यस्त हो जायेंगे, बच्चों को भी कष्ट होगा। गोत्रादि मर्यादायें भंग होंगी। किन्तु ऐसे द्विज अब हैं कहां? जब वर्णाश्रम की मर्यादायें ठीक-ठीक चलने लगें तब स्वामी जी का यह विचार चल सकेगा। उस समय तो पुनर्विवाह के अतिरिक्त जाति-रक्षा का अन्य कोई उपाय नहीं, नियोग तो बन्द ही है।

अब नियोग पर जो ईसाई भाई आक्षेप किया करते हैं उन्हें अपनी बाइबिल को तो पहले देखना चाहिये, इस्राईलियों में नियोग धड़ल्ले से चालू था। पढ़ो, बाइबिल प्रकरण व्यवस्था विवरण अध्याय २५।

"जब कई भाई संग रहते हों और उनमें से एक नियुक्त मर जाये तो उस स्त्री का ब्याह परदेशी से न किया जाये। इसके पति का भाई उसके पास जा कर उसे अपनी स्त्री कर ले और उसके पति के भाई का धर्म पालन करें और जो पहला बेटा वह स्त्री जने, वह उस मरे हुये भाई का ठहरे। इसलिये कि उसके भाई का नाम इस्राईल में से मिट न जाये। यदि उस स्त्री के पति के भाई को उसे ब्याह ना भाये तो वह स्त्री नगर के फाटक पर पुरनियों के पास जा कर कहे कि मेरे पति के भाई ने अपने भाई का नाम इस्राईल में बनाये रखने से ना किया है। और शुरु से पति के भाई का धर्म पालना नहीं चाहता। तब उस नगर के पुरनिये उस पुरुष को बुलाकर उसे समझायें और अपनी बात पर अड़ा रहकर वह कहे मुझे इसको ब्याहना नहीं भाता तो उसके भाई की स्त्री पुरनियों के सामने उसके पास जाकर उसके पाँव से जूती उतारे और उसके मुंह पर थूक दे। और कहे जो-जो पुरुष अपने भाई के वंश को चलाना न चाहे उसे यूं ही किया जायेगा"।

देखा, ईसाई मत में नियोग की कितनी मान्यता है। यहूदियों में नियोग का कितना बड़ा प्रचार था। मुसलमान नियोग पर आक्षेप करते हैं कि अपनी पत्नी को अन्य पुरुष के पास भेजना बड़ी निर्लज्जता है। किन्तु वे अपने मजहब की ओर नहीं देखते। शिया मुसलमानों में मुताह कुछ समय के लिए अन्य स्त्री को रख लेना अन्यकी स्त्री से बदला लेना जायज है। सुन्नी मुसलमानों में तथा अन्य सबमुसलमानों में तलाक देने का विधान है। स्त्री तलाक नहीं दे सकती पुरुष तलाक दे सकता है इस प्रकार जीवन में एक स्त्री अनेक पुरुषों से भोगी जाती है और पुरुष अनेकों स्त्रियों से। यह निर्लज्जता, व्यभिचार को प्रोत्साहन और स्त्री पर अत्याचार है या नहीं? स्त्री तलाक न दे सके पुरुष दे सके। यह स्त्री के हृदय को कुचलना हुआ या नहीं? एक और घृणित विधान है मुसलमानों की शरअ (विधान शास्त्र) का कि यदि कोई पुरुष क्रोध में वा हंसी मजाक में भी अपनी स्त्री से तीन बार तलाक, तलाक, तलाक कहदे तो स्त्री को घर छोड़ना पड़ेगा। पुरुष फिर उसे रखना चाहे तो भी तब तक नहीं रख सकता

जब तक वह स्त्री अन्य पुरुष से निकाह करके भोग न कराले। अन्य पुरुष से भोग कराने के पश्चात् वह नया पुरुष तलाक दे देवे तो वह पूर्व पति के पास जा सकती है। कितना घृणित व्यवहार है यह। अपराध किया पुरुष ने जो तलाक दी और दण्ड भोगा बिचारी पतिव्रता स्त्री ने जो दूसरे पुरुष से भोग करावे।

दिल्ली का एक शहजादा मुलतान का गवर्नर था। उसकी स्त्री बड़ी सुन्दर और सुशील थी। एक दिन हंसी-हंसी में शहजादे ने स्त्री से ३ बार तलाक शब्द कह दिया और फिर पछताने लगा। अब अपनी स्त्री को किसी दूसरे के पास भेजकर भोग करवाना आवश्यक हो गया तो शहजादे को ऐसे पुरुष की खोज हुई जो शहजादे की बेगम से निकाह करके एक बार भोग करके तलाक दे दे और वह पुनः शहजादे के पास आ जाये। तो वहां एक शाहजी फकीर सूफी रहते थे। शाहजादे ने सोचा कि सूफी जी से निकाह कराके एक बार भोग करके मेरी स्त्री तलाक लेकर फिर घर आ जाय। सूफी शाह साहब को बुला कर शहजादे ने सब बात बताई। शाह साहब बड़े प्रसन्न हुए, शाहजादी से निकाह किया, भोग किया किन्तु तलाक देने को इनकार कर दिया। अब शाहजादा और राजकुमारी बेगम दोनों ही असमंजस में फंस गए। फकीर साहब को शहजादे ने धमकाया तो उन्होंने कहा कि मेरा क्या बिगाड़ेगा? तू रहेगा ही नहीं। तभी मुलतान पर मुगलों का आक्रमण हुआ और युद्ध में शहजादा मारा गया। और इस प्रकार शाह साहब उस राज वधू को हजम कर बैठे। यह है इस्लामी शरअ (कानून)!

स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध संसार भर में विचित्र-विचित्र प्रकार के हैं। कुल्लू में, आसाम में स्त्रियां अनेक पति रख लेती हैं। और उनसे खेती बाड़ी का काम लेती हैं और जब चाहें, जिसे चाहें निकाल देती हैं। इधर मैदानों में पुरुष अनेक स्त्रियां रख लेता है। इन भिन्न-भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं में वैदिक व्यवस्था सर्वोत्तम है। इसमें तलाक नहीं। नियोग तो आपातकालीन धर्म है सो भी संयमी नर-नारियों के लिए, शेष के लिए पुनर्विवाह है।

इस समय पुनर्विवाह का विरोध, बाल विवाह का समर्थन, छोटी जाति बड़ी जाति का जन्मना विचार, स्त्रियों की पराधीनता आदि कई रिवाज समाज से दूर हो गए हैं, इन पर शास्त्रार्थ करना व्यर्थ ही है। ऐसे विचार केवल पुस्तकों में रह गए हैं वा देश काल से अनभिज्ञ विचार से दूर रहने वाले, केवल कुछ पुस्तकों पर ही विश्वास रखने वाले पण्डितों के मस्तिष्कों में रह गए हैं। चालू बिलकुल नहीं रहे। अपने को घोरतम सनातन धर्मी कहने वाला भी ब्राह्मण अपनी बेटी का विवाह ८ वर्ष की आयु में नहीं करता और न लड़की को उच्च शिक्षा से रोकता है, न वेद पढ़ने से। जो लोग आर्यसमाजी

नहीं हैं उन्होंने भी जाति बिरादरियों के भेदों को मानना छोड़ दिया है। एक कलक्टर पुरानी जाति के अनुसार चमार और पत्नी उनकी कायस्थ। एक लड़का जन्म जाति से चमार का और उससे विवाह करने वाली देवी चतुर्वेदी ब्राह्मण कन्या। एक ब्राह्मण लड़का है। अच्छे पद पर है। उसकी धर्मपत्नी ईसाइन। और ईसाइन भी बाल्मीकि जाति की। अब सब बिरादरी में चालू है।

जाति-पाँति पूछे ना कोई। हिन्दू कहे सो हिन्दू होई।

यह जाति के लिए जीवन का चिन्ह है। और ऐसे लोग ईसाई व मुसलमानों में चले जाते हैं इसको रोका आर्यसमाज ने। और आर्य समाज को प्रेरणा मिली ऋषि दयानन्द की विचारधारा से। बम्बई में एक विधवा जैन युवती से एक ईसाई का प्रेम सम्बन्ध हो गया जो उसे पढ़ाता था। युवती गर्भवती हो गयी। ईसाई युवक ने कहा कि अब तो गिरजे में ही चलना होगा। लड़की ने कहा नहीं, आर्यसमाज में चलो। वे दोनो आर्यसमाज में आए और पुरुष को शुद्धकर उसके साथ युवती का विवाह करा दिया। युवती का पिता पुलिस को लाया। पुलिस से आर्यसमाज की शिकायत करी। पुलिस इंस्पैक्टर को समाज में आने पर जब सब सही घटना ज्ञात हुई तो उसने लड़की के बाप को बहुत डांटा। एक-दो वर्ष बाद हमने देखा कि बोर्ड लगा है "जैन रैस्टोरैन्ट" हम वहां काफी लेने को गए तो देखते हैं कि वही जोड़ा वहाँ विद्यमान था। उन्होंने बड़ी खातिर करी। ये सब जैन बने रहे।

यह काम करता रहता है आर्यसमाज हिन्दू राष्ट्र के जीवन के लिए, वृद्धि के लिए। माननीय श्री बाबा साहब अम्बेडकर ने एक पुस्तक लिखी है—(शूद्र कौन थे) इसमें उन्होंने सप्रमाण सिद्ध किया है कि ये सब पहले क्षत्रिय थे। ब्राह्मणों ने विरोध करके इन्हें बलात् शूद्र—अछूत बना डाला। यह बात मनु से भी ज्ञात होती है।

पौण्ड्रकाश्चाण्ड्द्राविडा किराता यवना शकाः।
दरदाः पल्लवाश्चीना काम्बोजा खसाः॥
शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
बृषलत्वं गताः सर्वे ब्राह्मणा दर्शनेन च॥

ये क्षत्रिय जातियां संस्कारहीन होने से शूद्र बन गईं। क्योंकि ब्राह्मणों ने इनका पथ-प्रदर्शन नहीं किया। अतः ये सब संस्कारों से वञ्चित हो गए। काम्बोज (कम्बोह) अधिक तो मुसलमान बन गए। कुछ अभी हिन्दू हैं। आर्य समाज की कृपा से अब वे यज्ञोपवीतधारी हैं। काम्बोज और पल्लवों ने भारत से बाहर जाकर आर्य संस्कृति का प्रचार किया। वियतनाम के कम्बोडिया के

योनियों के बड़े-बड़े मन्दिर उन राजाओं की मूक कीर्ति आज भी गा रहे हैं। ब्राह्मणों की संकीर्णता से सैकड़ों हिन्दू जातियां नीचे गिर गयीं। ब्राह्मणों ने जातियों को नीच बनाने का काम तो किया पर ऊपर किसी को नहीं उठाया।

जब हम श्री यदुनाथ सरकार का लिखा शिवाजी का चरित्र पढ़ते हैं तो इन पोप ब्राह्मणों की बुद्धि पर क्रोध आता है। छत्रपति शिवाजी जैसे वीर को यह यज्ञोपवीत देने को तैयार नहीं हुए। जिस छत्रपति ने डूबती हुई हिन्दूराष्ट्र की प्रतिष्ठा बचायी वह तो क्षत्रिय न था, और जिन्होंने मुगलों के चरणों में मत्था टेका, अपनी बेटियाँ उन्हें दीं वे क्षत्रिय थे। धिक्कार है इस बुद्धि को! फेंक दो ऐसी पुस्तकों को। स्वामी दयानन्द की वर्णव्यवस्था न्याय्य है, सुलझी हुई है, सर्वलोक सम्मत है।

बाबा साहब अम्बेडकर ने कवष ऐलूष को शूद्र बताया है जो फिर पुरुषार्थ से ब्राह्मण बन गया और ब्राह्मण का कर्ता ऋषि बना तो उन्होंने कवष ऐलूष को ऋग्वेद के मन्त्रों का कर्त्ता भी बताया है क्योंकि अनेक सूक्तों का ऋषि कवष ऐलूष है। किन्तु वेदों के मन्त्रों पर लिखे ऋषि व्यक्ति नहीं किन्तु उस भाव को कविता के अधिवक्ता है। वह कवष ऐलूष जुआरी था और ऋग्वेद के सूक्त ३४ मंडल १० में जुए की निन्दा है और इसने भी जुआ खेलना छोड़ दिया था अतः इसका नाम ऋषियों ने वेद के ऋषि की अनुकृति पर कवष ऐलूष रख दिया था। इसके विषय में कई लेख पं० दीनानाथ सरस्वती ने भारतीदय में संस्कृत में लिखकर यह सिद्ध किया कि कवष ऐलूष की माता का नाम इतरा था। वह इतरा शूद्र जाति की नहीं थी। अतः कवष ऐलूष जन्मना ब्राह्मण था।

अच्छा पण्डित जी यह तो बताओ कि फिर ऋषियों ने उसे 'अब्राह्मण' क्यों कहा? इसीलिए कि उसके आचरण ठीक न थे और वह पढ़ा लिखा न था।

तो बिना गुण कर्म के जन्मका ब्राह्मण अब्राह्मण बन जाता है। उसका ब्राह्मणत्व छिन जाता है तो पढ़ लिख जाने पर गुण कर्म के सात्विक होने पर शूद्र का शूद्रत्व तो लुप्त हो जाना चाहिए। वह भी ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, बन सकता है। यही तो गुण कर्म की ही जीत। आपके सब लिखने पर पड़ गई धूल।

आगे सत्यार्थ प्रकाश चौथे समुल्लास की ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं:—

जो कोई गृहस्थाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है।

"परन्तु तभी गृहस्थ में सुख होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर

प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों"।

अथर्व द्वि अनुवाक कांड १८ का मंत्र ३४ इसमें अग्निदग्ध, परोप्त, निरवात, उद्भित् पितर बताए गए हैं अर्थात् आग में जलाए, पानी में डाले गए, गाढ़े गए, फेंक दिए गए। किन्तु ये नाम भी विदग्ध शब्द के समान विद्वानों के ही हैं। और भूमिगत वृक्षों का भी इससे आशय लिया जा सकता है। शरीर से निकला जीव न आगत है न निरवात।

अपूपा विहितान् कामान् पंक्तिदेवा अधारयन्।
ते ते स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चपुत।६८।

पुओं से ढके घड़े जो हे जीव तेरे लिए देवताओं ने धारण किए हैं वे स्वधायुक्त, मधुयुक्त, घृतयुक्त हों। ६८।

यहां जीव (मनुष्य) मात्र के लिए सच्चे वास्तविक नेत्र शिक्षा हैं। हैं शरीर, मन, बुद्धि, अन्तःकरण चतुष्टय और इनका कल्याण करने वाले ज्ञान, कर्म उपासना और मोक्ष। यदि जीव धर्म मार्ग पर चले तो ये सफलतायें मिल सकती हैं।

यास्तेधाना अनुकिराभि तिलमिश्रा स्वधावतीः तास्ते सन्तु विम्बी प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानुमन्यताम्।६९।

यहां भी मृत श्राद्ध का नाम नहीं। जीवित वृद्धों के लिए तिलमिश्रित अन्न देने की बात है। वृद्धों के लिए तिल बहुत लाभदायक होते हैं, तिल खाने से मूत्र साफ हो जाता है। मूत्र के पदार्थों में मिला यूरिक यदि शरीर में रुक जाता है तो टाँगों में दर्द होने लगता है। तिल-भोजन से मलाशय, मूत्राशय दोनों शुद्ध हो जाते हैं, शरीर में वायु भी नहीं बढ़ता।

यम राजा (नियामक ईश्वर) से प्रार्थना है कि वह हमें सफलता दे।

आगे-२ मंत्र और हैं जहां मांस खाने की शंका होती है:—

अपूपवान मांसवाञ्चरुरिह सीदतु, अनुवाक ४ मन्त्र २०

पुओं से युक्त मांस वाला चरु यहाँ ठहरे। यहाँ पितरों को मांस देने वा किसी मनुष्य को मांस खाने-खिलाने की बात नहीं हैं।

यहाँ वृद्धों व निर्बलों के लिए ऐसी औषधि, चरु, पाक देने का विधान है

कि जिससे उन बड़ों का माँस बढ़े, शरीर पुष्ट हो। मंत्र १६ से २४ तक पुष्टि कारक पदार्थ किन्तु जो पुओं के समान गुदगुदे हों मुलायम हों, शरीर में रक्त, मज्जा, मेद और माँस को बढ़ाने वाले हों, वे पदार्थ यज्ञ में आये हुए पितरों को दिए जाएं।

आगे मंत्र ४२ में—

यन्ते मन्थं प्रमोदनं यन्मांसं निपणामेते।

जो तेरे लिए मन्थ (पाक रसायन) भात और मांस पूर्ण करता हूं, देता हूं, आदि। यहाँ भी वृद्ध पितरों को ऐसा मन्थ और ओदन बनाकर खिलाए जिससे उनके शरीर में मांस बढ़े, पुष्ट हों और उनका दुबलापन जाता रहे। भाव है कि ओदन और मन्थ ऐसा हो कि जिससे शरीर में मांस की पूर्ति हो।

"मांसवान्" चरु शब्द ही बताता है कि चरु ऐसा हो जिसमें मांस को पुष्ट करने वाले पदार्थ हों, चरु में मांस नहीं डाला जाता इसमें काष्ठादि औषधियाँ और कुछ अन्न पड़ते हैं "मांसं निपृणामि ते" तेरे मांस को पूर्ण करता हूं, मांस देता हूं इस अर्थ से भी यह तात्पर्य है कि वृद्ध पितरों का मांस बढ़ाया जाए औषधियों से और दुग्धादि से।

चौथा यज्ञ है अतिथि यज्ञ जो गृहस्थी और वानप्रस्थी के लिए आवश्यक है, यह अतिथि यज्ञ संसार की सभी जातियों में पाया जाता है, मानव हृदय की सहानुभूति और उदारता का यह प्रतीक है। नगरों में तो अब होटल हैं। ग्रामों में तो अब भी किसी की चौपाल या बैठक पर ही ठहरना होता है। और वह गृहपति आए हुए को भूखा नहीं रहने देता, साधु, संत, संन्यासी तो भ्रमण करते ही रहते हैं। वे अतिथि तो विशेष सत्कार के योग्य हैं। अथर्व कांड ९ अनुवाक ३ सूक्त ३ में बताया है।

'एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियः'

श्रोत्रिय अर्थात् वेदज्ञ ब्राह्मण अतिथि हैं। अतिथि यज्ञ नित्य का यज्ञ नहीं है, ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ और बलि वैश्व देव हैं नित्य के यज्ञ।

वैदिक धर्म का समाजवाद मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः अथर्व ३।६।३०।६

भोजन के और पीने के पदार्थ सबको समान मिलें। कोई भूखा-प्यासा न रहे। किन्तु इससे भी आगे हमारे ऋषियों ने व्यवस्था की, कि हमारी थाली में कीट (चींटी) पक्षी (कौआ) और पशु (गौ कुत्ता) आदि भी सांझी हैं। पाप रोगी, कोढ़ी, पतित आदि भी भूतयज्ञ के द्वारा हमारे भोजन में से कुछ पा लें। चीटियों के कारण घरों में जब एक किंकर्तव्य विमूढ़ बन जाए, तो

वहां शास्त्र का सहारा लेना पड़ता है।

"धर्मं जिज्ञासमानानाँ प्रमाणं परमं श्रुतिः"

मनु जी ने कहा कि धर्म को जानने की जिन्हें इच्छा है, उन्हे तर्क के पश्चात् परम प्रमाण श्रुति है।

वेद वह ज्ञान है जो समाधि में सर्वोच्च दशा में पहुंचे हुए ऋषियों के हृदय में शब्दों द्वारा प्रादुर्भूत हुआ।

अथ तान् ह ताप्तान् स्वयंभूर्ब्रह्म प्राच्छत्।

तदैर्षत तद् ऋषीणां ऋषिमित्वति।

तप करते हुए ऋषियों को परमात्मा स्वयंभू ने प्रेरणा दी।

वृहस्पते प्रथम वाचो अग्ने यत्प्रेरयत नामधेयं दधानाः।"

ऋग्वेद १०।७।१

मनुष्य को नामों का बड़ा लाभ होता है। कोई कीड़ा-मकोड़ा मर जाए तो उसके कीटाणु फैलकर अनेक रोग उत्पन्न कर सकते हैं। हमें उस मरे हुए कीट का पता भी नहीं लगता किन्तु चींटी की नाक बड़ी तेज होती है, उसे गंध पहुंच जाती है और वह उस मृत कीट को खाकर घर का वायु दूषित होने से बचा लेती है। अतः घरों में चीटियों का रहना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। इसीलिए उनको नित्य अपनी थाली में से कुछ खाने को दिया जाता है।

कौए के द्वारा खेतों के वे कीड़े चुन लिए जाते हैं जो पौधों की जड़ों को हानि पहुंचाते हैं तथा घरों को भी।

कीड़ों को कौआ खा जाता है साथ ही बलि वैश्व देव से प्राणी मात्र के प्रति दया जागृत होती है। प्राणी मात्र के प्रति दया रखने वाला धर्म ही विश्व धर्म कहला सकता है। अतः वैदिक धर्म सार्वभौम धर्म है।

बलिवैश्वदेव में "सर्वात्मभूतये नमः" पद सार्वभौम आत्मीयता का उपदेश दे रहा है।

बलिवैश्वदेवयज्ञ से अज्ञात हिंसा की भी निवृत्ति होती है। सब दिशाओं और नीचे ऊपर दिन-रात के सब ही प्राणियों के लिए मेरा प्रेम भाव है। सब तृप्त रहें। कितनी उच्च कोटि की उदार भावना बनाता है बलिवैश्वदेवयज्ञ. ब्रह्म यज्ञ ईश्वर से संबन्ध जोड़ता है। देवयज्ञ ईश्वर की सृष्टि से। पितृयज्ञ कुटुम्ब से। अतिथि यज्ञ मानव समाज से तो बलिवैश्व देव यज्ञ प्राणिमात्र से सम्बन्ध जोड़ता है।

आत्मवत्सर्व भूतेषु तथा यजुर्वेद के "यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ४०।७

जिस ज्ञानी को सब प्राणी आत्मवत् हो जाते हैं तो शोक मोह समाप्त हो जाता है। सार्वभौम आत्मभाव का उपदेश वैदिक धर्म में, आर्य धर्म में भारतीय संस्कृति में ही मिलता है। पौराणिक ब्राह्मण आर्यों के बलिवैश्वदेव यज्ञ पर भी अनेक शंकाएं करते हैं किन्तु ऐसा करके यह लोग सनातन धर्म पर धूल फेंकते हैं। क्योंकि इनके यहाँ भी यही विधि है। मनु का विधान इनको भी मान्य है। श्री स्वामी जी ने वेदोक्त विधियाँ, मनूक्त विधियां, ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के विधान सब स्वीकार किए हैं परन्तु ये उच्छृंखल पोप मंडल नास्तिक बनकर आर्यसमाज के उन विधानों पर भी आक्षेप करता है, हंसी उड़ाता है, जो सनातन धर्म और आर्यसमाज में एक जैसा ही मान्य है। वस्तुतः ये लोग पेट पाल बन गए हैं। वेदपाल नहीं रहे हैं। विस्मृत हुई विधियों को स्वामी जी ने स्मृत कराया है। सोये पड़े हुए सनातन धर्म को जागृत किया है। ऋषि का उपकार न मान कर उल्टी उसे गालियाँ देते हैं। ईश्वर इन आत्मघाती मूर्खों पर कृपा करो!

● ✶ ●

पांचवां समुल्लास

पंचम समुल्लास में श्री स्वामी जी शतपथ ब्राह्मण कांड १५ से निम्न श्रुति प्रस्तुत करके वानप्रस्थ और संन्यास की विधि का वर्णन करते हैं:—

"ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेत् वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।

आगे श्री स्वामी जी ने मनुस्मृति के छठे अध्याय के श्लोक लिखे हैं :—

"एवं गृहस्थाश्रमे स्थित्वा विधिवत् स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥१॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥२॥
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्याम् निक्षिप्य, वनं गच्छेत् सहैव वा ॥३॥
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्ये निःसृत्य, निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥४॥
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाक मूल फलेन वा
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद् विधिपूर्वकम् ॥५॥ मनु ६।१-५

इस प्रकार स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्यपूर्वक गृहस्थाश्रम का कर्ता द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहस्थाश्रम मे ठहर कर निश्चितात्मा और यथावत् इन्द्रियों को जीतकर वन में वसे ।।१।। परन्तु जब गृहस्थ के सिर के केश श्वेत और त्वचा ढीली हो जाए और लड़के का लड़का भी हो गया हो तब वन में जाकर वसे ।।२।। ग्राम के सब आहार और वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़ पुत्रों के पास स्त्री को रख अथवा अपने साथ लेकर वन में निवास करे ।।३।। साँगोपांग अग्निहोत्र को ले के ग्राम से निकल दृढ़ेन्द्रिय होकर अरण्य में जाके वसे ।।४।। नाना प्रकार के सामा आदि अन्न सुन्दर-सुन्दर शाक, मूल, फल, फूल कन्दादि से पूर्वोक्त पंच महा यज्ञों को करे और उसी से अतिथि सेवा और आप भी निर्वाह करे ।।५।।

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात् दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमना दातासर्वभूतानुकम्पकः ।१।

अप्रसन्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ।२। मनु ६।८, २६ ।।

स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने-पढ़ाने में नित्ययुक्त, जितात्मा, सबका मित्र, इन्द्रियों का दमन शील, विद्यादि का दान देने हारा और सब पर दयालु, किसी से कुछ भी पदार्थ न लेवे इस प्रकार सदा वर्तमान रहे ।१।

शरीर के सुख के लिए अति प्रसन्नता न करे किन्तु ब्रह्मचारी (रहे) अर्थात् अपनी स्त्री साथ हो तथापि उससे विषय चेष्टा न करे । भूमि में सोवे, अपने आश्रित व स्वकीय पदार्थों में ममता न करे । वृक्ष के मूल में वसे ।२।

उक्त व्यवस्था स्वामी जी की अपनी नहीं है किन्तु मनु भगवान् के वचन हैं जो प्रत्येक श्रद्धालु पौराणिक हो वा आर्यसमाजी सभी वैदिक धर्मियों के लिए मान्य होनी चाहिए किन्तु इस व्यवस्था पर आचरण आजकल हो सकता है वा नहीं ? और क्या कोई कर भी रहा है ?

कहां हैं ? वे वन, जहां जाकर ये ६, ७ करोड़ वनस्थी बसेंगे ? और कहां मिलें इतनी बड़ी आबादी को इतने कंद-मूल फल ?

४० करोड़ हिन्दुओं में ६, ७ करोड़ जन भगवान् मनु की इस व्यवस्था पर चलने योग्य ठहरेंगे । इतने बड़े समूह के लिए कितने वन जंगल और वे भी कन्द मूल फलों से भरे हुए कहाँ हैं अब ? क्या वन में कुटिया बनाने देगी सरकार ? और उसमें स्वतन्त्र रूप से कन्द मूल फल उगाये जा सकेंगे ?

वास्तव में जो परिस्थितियां मनु युग में थीं जो अब नहीं हैं और न ही जन-जीवन का वैसा क्रम ही अब चालू है । अतः इन वचनों का भाव समझकर काम करना चाहिए और वह कार्यक्रम बनाया जाए जो आजकल की परिस्थितियों से मेल कर सके । प्रथम तो यह विधान स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्यपूर्वक गृहस्थाश्रम का कर्ता ही निभा सकता है जो सैकड़ों में एक दो मिलेंगे, फिर उनमें भी पौत्र, पौत्रियों वाले कितने और जिनके पौत्र हो जाएं, किन्तु जब दो छोटे लड़के पालने पढ़ाने को हों दो बेटियां विवाहने को हों वह अपने अकेले बड़े लड़के पर सब भार डालकर वन को चल दे तो है न पूरी निर्दयता? वर्णाश्रम की ये सारी विधियाँ आर्थिक स्थितियों से जुड़ी हुई हैं और अर्थ प्रबन्ध के लिए ही मनु ने ये सब विधान रचे हैं । अतः आजकल की आर्थिक स्थिति के अनुसार ही वर्णाश्रम के स्वरूप को रखा जाए । अब मृगछाला धारी, लंगोट बांधे, हाथों में बिल्व ढाक आदि के डण्डे लिए विद्यार्थी कहां हैं ? और इतनी मृगछालायें कहां मिलेंगी ? हां, प्रयोजन समझकर कार्य लेना है । विद्यार्थी का रहन-सहन सादा हो, थोड़े व्यय वाला हो, श्रमयुक्त तथा सदाचार से पूर्ण हो । इसी प्रकार वनस्थी घर पर रहे वा बाहिर सरल जीवन बितावें ।

जब पुत्र के सन्तान होने लगे तब स्वयं संतान पैदा करना बंद कर दे । मन को वश में करके ब्रह्मचर्य से रहे, आजीविका के साधन दूसरों के लिए छोड़ दे । लगातार धनार्जन में न लगा रहे । किंतु जिन्होंने धनार्जन किया ही नहीं है, उन्हें तो आयु भर कमाना ही होगा, पराधीन वृत्ति बहुत बड़ी गिरावट हैं । अपने भोजन वस्त्र पर व्यय बहुत कम कर दे । अधिक से अधिक समय स्वाध्याय में लगावे, और जो लोग आर्थिक चिन्ता से मुक्त हैं, भोजन वस्त्र लायक धन उन पर है वे अपना समय समाज सेवा में लगावें । हमारी आश्रम व्यवस्था की प्रशंसा रूस के महान् विचारक टाल्स्टाय ने भी की है । किन्तु यह सब ढोंग रूप में न होकर वास्तविक त्याग भावना से होना चाहिए । और त्यागेगा वह जिस पर कुछ हो और जो स्वयं उदर-पोषण भी नहीं कर सकता, उसका त्याग क्या ?

संन्यास आश्रम के विषय में सत्यार्थप्रकाश में श्री स्वामी जी का लेख इस प्रकार है:—जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उसी दिन घर वा वन से संन्यास ग्रहण कर लेवे । पहले संन्यास का एक रूप कहा और इसमें विकल्प अर्थात् वानप्रस्थ न करे गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ग्रहण करे और तृतीय पक्ष यह है कि जो पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय और विषय भोग की कामना से रहित परोपकार करने की इच्छा से युक्त पुरुष हो ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास लेवे । वेदों में भी "यतयः ब्राह्मणस्य विजानतः (ऋग् ८।६।१८) इत्यादि पदों से संन्यास का विधान है । परन्तु

नाविरतो दुश्चरितात् नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् । कठवल्ली २ मं० २३॥

जो दुराचार से पृथक् नहीं जिसको शांति नहीं, जिसका आत्मा योगी नहीं और जिसका मन शांत नहीं हैं, वह संन्यास लेके भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता । इसलिए

यच्छेद् वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद् यच्छेद् ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेच्छान्त आत्मनि ॥ कठ ३।१३

संन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोककर उसको ज्ञान और आत्मा में लगावें, और उस विधान को शांत स्वरूप आत्मा में स्थिर करें। यह है सत्यार्थ प्रकाश में उपनिषद् के आधार पर ऋषि दयानन्द का उपदेश । अब इसके अनुसार कितने लोग संन्यास के योग्य ठहरेंगे ? स्वामी जी की राय में संन्यासी का योगी होना और योगाभ्यास करते रहना अनिवार्य है। संन्यास का अधिकार भी सबको नहीं है। पढ़ो—

प्रश्न—संन्यास ग्रहण करना ब्राह्मण ही का धर्म है क्षत्रियादि का भी ?

उत्तर—ब्राह्मण ही को अधिकार है।

अब विचारो कि संन्यास धारण करना कितना ऊंचा है, योगी, विद्वान् उपकारी और जो अध्यात्म में बहुत ऊपर उठ चुका है वही संन्यास आश्रम में प्रवेश करे शेष सब लोग साधना करते रहें। संन्यास की ओर को बढ़ें । यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि स्त्रियों के संन्यास धारण का कहीं भी संकेत नहीं मिलता, और स्वामी जी की सम्मति में उदासी, और वैरागी संन्यासी नहीं हैं, क्योंकि ये सब मानव मात्र का हित न विचार कर केवल अपने संप्रदाय के प्रचार में लगे हुए हैं, और साथ ही वेद-वचनों से ऊपर अपने सम्प्रदाय के आदेशों को मानते हैं । साधु (फकीर) तो मुसलमानों में भी हैं किन्तु ये सब गृहस्थ ही अधिक होते हैं । कुछ को छोड़कर अधिक लोग कट्टर मुसलमान होते हैं।

इनके द्वारा ही हिन्दू धर्म और भारत की स्वाधीनता को बड़ी हानि पहुंची है। पढ़ो अजमेर के ख्वाजा का इतिहास। पूज्य स्वामी शंकराचार्य ने जो गिरि, पुरी, वन, पर्वत आदि दश नाम वाले संन्यासी बनाये थे वे अब भी लाखों की संख्या में हैं परन्तु जैसे जन्म के ब्राह्मण जाति के हित की दृष्टि से व्यर्थ हैं ऐसे ही ये साधु पेटपाल भर ही हैं । इनमें बहुत कम हैं जो जाति का उपकार भी सोचते वा करते हैं। ऋषि दयानन्द नाम मात्र के ब्राह्मण और संन्यासी नहीं चाहते ।

संन्यासी और भिक्षु

संन्यास का स्वरूप पहले क्या रहा होगा ? इसका अनुमान केवल स्मृतियों

के वचनों से लगाया जा सकता है किन्तु बुद्ध भगवान ने विरक्ति की शिक्षा देकर जो भिक्षु मण्डल तैयार किया वह इतिहास में प्रत्यक्ष है, किन्तु बुद्ध महाराज ने और जैन तीर्थंकरों ने अंधाधुंध साधु साधुनी, भिक्षु भिक्षुणी साधु अज्जिकायें बनानी आरम्भ कीं, तो देश लाखों निठल्लों से भोजन भट्टों से भर गया । इस मिथ्या वैराग्य के उपदेश से, अहिंसा के प्रचार से जाति में सैनिक-भावना, जीवन की इच्छा, उत्साह,देश उन्नति की भावना चौपट हो गयी, वैदिक धर्म संन्यासियों को भी कर्म करने का उपदेश देता है किन्तु निष्काम कर्म वा लोकैषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणा से पृथक् हुआ वीतराग संन्यासी संसार का बड़ा हित कर सकता है । उसका पद सम्राट् से भी ऊंचा परिव्राट् है। भगवान् शंकर, महर्षि दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द ने वैदिक धर्म को कितना जीवन दिया । आर्यसमाज के संन्यासी शंकरानन्द ने ब्रिटिश उपनिवेशों में बसे हिन्दुओं में प्रचार न किया होता तो वे सब हिन्दू ईसाई बन जाते । आज मारीशसद्वीप में जो हिंदू-हिंदी का वैभव दिखाई पड़ता है उसके स्थान पर ईसाइयत चमकती होती । संन्यासी से बड़े लाभ हैं किंतु वह संन्यासी विद्वान् हो, तपस्वी हो, निजी स्वार्थों से ऊपर उठा हो ।

सच्ची धर्म प्रचार की लगन वाले बौद्ध भिक्षुओं ने लंका, बर्मा और चीन में बौद्ध धर्म का प्रकाश फैला दिया, जिससे भारत का यश बढ़ा और बौद्ध भिक्षुओं ने ही सिंध में हिंदू राज्य का विस्तार करके इस्लामी (अरब) शासन स्थापित करा दिया ।

अतः लोकहितैषी, आत्मज्ञ, जितेन्द्रिय योगी ही संन्यासी बने । रंगे कपड़े वाले संन्यासी जिनका मन संसार के भोगों में ही लिपा है, रंगा पीला दुपट्टा गले में डाले हुए वानप्रस्थी जिन्होंने अपने जीवन को नहीं बदला है इन आश्रम को ग्रहण न करें, नहीं तो आश्रम बदनाम हो जायेंगे । किंतु ऐसे लोग जो कि वीतरागिता की ओर बढ़ते हैं सब देशों और सब कालों में थोड़े ही होते हैं अतः अपने आश्रम में ही रहते हुए साधना करो । अपने ऊपर कम से कम व्यय करना, यथाशक्ति जनता की तन मन और अपने व्यय से बचाये हुए धन से सेवा करना, स्वाध्याय करना एकान्त बैठकर ईश्वर चिन्तन करना ये साधनायें बहुत कठिन नहीं हैं इनको करते हुए यदि योग्य बन जाएं तो अवश्य संन्यास का वेश भी धारण करलें किंतु संन्यासी बनने वाले को यह भी देख लेना चाहिए कि उसका स्वास्थ्य घूमने योग्य हो । स्वास्थ्य, विद्या, त्याग, जाति सेवा, राष्ट्र-सेवा, आकीट पतंग सब जीवों के कल्याण की भावना उसके साथ हो ।

स्वामी जी महाराज की यह विशेषता है कि वे वेदों और आर्ष शास्त्रों की परम्पराओं का तिरस्कार नहीं करते किन्तु उन आर्ष प्रथाओं को सुधरे हुए उपयोगी रूप में देखना चाहते हैं ।

हमारे सनातनधर्मी पंडितों को गंभीरता से विचारना चाहिए कि जहाँ ब्रह्म-समाजी लोग वर्तमान व्यवस्था का तिरस्कार करते थे वहाँ स्वामी जी वर्णाश्रम व्यवस्था की पुष्टि कर रहे हैं। सनातन धर्मियों को यह भी विचारना चाहिए कि वैरागी, उदासी आदि साधुओं के दल वैदिक हैं वा अवैदिक? आर्ष ग्रन्थों से ये साधु मन्डल विहित हैं या अविहित।

स्वामी जी ने संन्यास के समर्थन में जो वेदमंत्र संस्कार विधि में दिये हैं उनमें त्याग, वैराग्य, तप, दीक्षा का उपदेश तो स्पष्ट मिलता है किन्तु स्मार्त संन्यास का रूप स्पष्ट नहीं दीखता। हां जो श्लोक मनुस्मृति के लिखे हैं आज कल के जैसे संन्यास का रूप ही मिलता है। यथा:—

क्लृप्तकेशनखश्मश्रु: पात्री दंडी कुसुम्भवान्।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्॥

नख, सिर के बाल और दाढ़ी, मूंछ इन सबको कटवाकर मुड़ाकर एक पात्र (कमण्डलु) और दंड धारणकर कुसुम्भवान् (गेरुआ) रंगे कपड़े पहने हुए किसी भी प्राणी को कष्ट न देता हुआ नित्य विचरे।

वर्तमान संन्यासियों का वेश मनुस्मृति के अनुकूल है। किन्तु वैरागी, उदासी आदि की बातें मनु ने कहीं नहीं कही। अब संन्यास के विषय में कुछ लोगों का कहना है कि वेद तो कहता है क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्व स्तकौ और ऋग्वेद में है स्वे गृहे(१०।१५।४२)भाव सबका एक ही है। उत्तम गृह वाले अपने घर में नाती-पोतों के साथ क्रीडा करते हुए सम्पूर्ण आयु को भोगो। संपूर्ण आयु से प्रयोजन है कि जितनी आयु गृहस्थ के लिए है। और गृहस्थ में पड़े रहना अनिवार्य विधि तो है नहीं सामान्य विधि है जैसे कहा जाए कि आप इस बाग के फल खाते हुए यहां १० वर्ष तक रहिए किन्तु वह यदि रहने वाला व्यक्ति एक वर्ष में ही बाग को त्याग दे तो कोई बुराई तो नहीं हुई। घर के सब काम संभालकर अपने उत्तरदायित्व को पूरा करके कोई व्यक्ति अपनी आयु का शेष भाग योगाभ्यास, स्वाध्याय तथा देश जाति की नि:स्वार्थ सेवा में लगाता है तो इससे उत्तम और क्या बात हो सकती है? हां, उदर-पोषण के लिए धन कमाने के लिए जैसा कि आजकल हो रहा है संन्यास लेना ठीक नहीं संन्यास के दो ही प्रयोजन होने चाहिएं अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए वा जनता में धर्म प्रचार के लिए संन्यास का बाना धारण करना उपयोगी है अत: संन्यास अनिवार्य नहीं। श्री स्वामी जी लिखते हैं—

यदि पूर्ण अखंडित ब्रह्मचर्य, सच्चा वैराग्य और पूर्ण ज्ञान विज्ञान को प्राप्त होकर विषयासक्ति की इच्छा आत्मा से उठ जावे तथा पक्षपात रहित होकर सबके उपकार करने की इच्छा होवे (संस्कारविधि), संसार के उपकारार्थ

संन्यास लेना।

संन्यासी की आवश्यकता पर स्वामी जी लिखते हैं—

प्रश्न- संन्यास-ग्रहण की आवश्यकता क्या है?

उत्तर- जैसे शरीर में सिर की आवश्यकता है ऐसे ही आश्रमों में संन्यास आश्रम की आवश्यकता है क्योंकि इसके विना विद्या धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमों को विद्या ग्रहण, गृहकृत्य और तपश्चर्या आदि के सम्बन्ध से अवकाश कम मिलता है। पक्षपात छोड़कर वर्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर है। (सत्यार्थ प्रकाश)

यहां देखिए कि संन्यासी का पद कितने महत्व का है! संन्यासी कितना योग्य होना चाहिए। आगे संस्कार विधि में तो संन्यासी का पद और भी उच्च बताया गया है

यदि सभा में (राजसभा) में मतभेद हो तो वह पक्षानुसार मानना और समपक्ष में उत्तम की बात स्वीकार करनी और दोनों पक्ष वाले बराबर हों तो वहां संन्यासियों की सम्मति लेनी चाहिए। जिधर पक्षपातरहित सर्वहितैषी संन्यासियों की सम्मति होवे वही उत्तम समझना चाहिए (संस्कार विधि गृहस्थ आश्रम)

इन पंक्तियों से अनुमान करना चाहिए कि संन्यासी किसको बनना चाहिए। बहुत कम लोग ही संन्यास के योग्य हो सकते हैं। संन्यासी होने के लिए विद्या तप आदि की साधना बहुत बड़ी होनी चाहिए। विशाल हृदयता हो, सर्वात्म भाव हो, सूझ-बूझ हो उच्च कोटि की विद्या भी हो तो। क्या साधारण पढ़े-लिखे लोग संन्यासी न बनें?

उत्तर- अवश्य बनें, जो स्वस्थ हों, सच्चरित्र हों, जिनके मन में धर्म प्रचार की लगन हो, वे कम पढ़े लिखे भी बहुत उपकार कर सकते हैं।

हमने देखा है कि श्री स्वामी स्वेच्छानन्द जी कम पढ़े लिखे थे। संस्कृत के श्लोक एवं वेद मन्त्रों का शुद्ध पाठ सीखने मेरे पास आया करते थे, रेल या किसी प्रकार की सवारी पर नहीं बैठते थे और भोजन भी भिक्षा से करते थे। एकान्त कहीं जंगल में बने मन्दिर में ठहर जाते थे। जाड़ों में किसी धर्मभक्त से एक कंबल मंगा लेते थे. गर्मियों में वह किसी जीव को दान कर देते थे। कोई सामान साथ नहीं रखते थे। भूमि शयन के अभ्यासी थे। पैदल घूम-घूम कर सारे उत्तरी भारत में इन्होंने प्रचार किया। स्वामी विवेकानन्द जी भी केवल थोड़ी हिन्दी पढ़े थे, किन्तु प्रचार की लग्न कमाल की थी। भोजपुर जिला बिजनौर में रहकर आस-पास के ग्रामों में भजनों द्वारा प्रचार की धूम मचा दी। श्री स्वामी प्रभु आश्रित जी ने सहस्रों व्यक्तियों से माँस, मद्यादि

छुड़ा दिया और नित्य प्रति अग्निहोत्र का व्रती बना दिया। लगन एवं सूझ-बूझ की बात है—कानपुर में श्री शिव स्वामी जी जो साधारण ही पढ़े लिखे हैं, यज्ञों के द्वारा कई जिलों में धर्म प्रचार की धूम मचाये रहते है और इसी से अपनी जीविका भी भली प्रकार चला लेते हैं। पौराणिक साधुओं में भी श्री स्वामी सुखदेवानन्द जी और उनके ही गुरुभाई श्री स्वामी नारदानन्द जी ने जो साधारण हिन्दी ही पढ़े लिखे थे, और हैं। लाखों रुपये के मन्दिर, आश्रम, कालेज और स्कूल बनाकर हिन्दू जाति को दे दिये जिनमें सत्संग-कथायें, विद्याध्ययन हो रहा है। अनेकों धर्म प्रचारक और प्रचारिकायें इनकी ओर से धर्म प्रचार कर रही हैं। श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द जी ने जो संस्कृत के विद्वान् नहीं थे, केवल हिन्दी उर्दू पढ़े थे, धर्म प्रचार से बिहार प्रान्त में धूम मचा दी। लगन होनी चाहिये और चरित्र की सम्पत्ति। चरित्र न होने से हमने ४/५ संन्यासियों का जो अच्छे तगड़े विद्वान् थे, पतन होते देखा। संन्यासी के लिये ही पूज्य शंकराचार्य जी ने लिखा है **"द्वारं किमेकं नरकस्य नारी"** नारियों ने इनको वास्तव में नारकीय जीवन का जन्तु बना डाला। एक तो जो दर्शनों के तगड़े विद्वान् हैं अब पछताया करते हैं। अत: ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में कई स्थानों पर जितेन्द्रियता पर ज़ोर दिया है। जगद्गुरु संन्यासी इद्रियों एवं मन का विजेता तो होना ही चाहिए। श्री स्वामी जी ने देश और जाति के लिए संन्यासी की बड़ी आवश्यकता बताई है। संन्यासी को राष्ट्र का सिर बताया है। अब एक प्रश्न पुन: उठता है कि यह संन्यासाश्रम वैदिक विधि है वा स्मार्त विधि। क्योंकि वेदों में जैसे ब्रह्मचारी, गृही इनका स्पष्ट वर्णन मिलता है। वैसा संन्यासी का नहीं।

प्रश्न ठीक है, वेदों में स्पष्ट रूप से वनस्थी वा संन्यासी का वर्णन नहीं है किन्तु संकेत ऐसे अवश्य हैं जिनसे ये त्याग वाले आश्रम सिद्ध होते हैं यथा—

"यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत" ऋ० १०।७२।६।

यहाँ यति शब्द संन्यासी का वाचक ही हो सकता है। अथर्व० का १९ सू० ४१ मन्त्र १ में

"भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।"

ऋषियों ने तप और दीक्षा को ग्रहण किया यह तप और दीक्षा को प्राप्त करना ही संन्यास है। मनुस्मृति में इन्हीं प्रमाणों के आधार पर वानप्रस्थ और संन्यास की विस्तृत वर्णन पूर्वक विधि लिख दी है।

संन्यास बौद्धों का अनुकरण नहीं है। कुछ लोग ऐसा विचार रखते हैं कि संन्यास आश्रम का संगठन श्री आचार्य शंकर ने बुद्ध भगवान् के संघ की नकल पर स्थापित किया। इससे पहले शिखा सूत्र त्याग संन्यासी कोई नहीं बनता था, किन्तु ऐसे विचार वालों को और पीछे तक भी देखना चाहिये। बुद्ध भगवान् ने

भी भगवान् महाबीर तीर्थंकर के साधु मंडल की नकल की थी। और भगवान् महाबीर ने भगवान् पार्श्व नाथ के साधु-समूह से यह सीखा था। और यह सर्वस्व त्याग वस्त्रों तक का त्याग भगवान् नेमिनाथ तीर्थंकर के समय तक तो स्पष्ट मिल जाता है। श्री नेमिनाथ जी जैनों के २२ वें तीर्थंकर हैं और यह श्री कृष्ण भगवान् के भाइयों में लगते थे। महाभारत के युद्ध का, रात दिन राज्यों के लिए लड़ते आदमियों को देखकर यज्ञों में पशुहिंसा भी चल पड़ी थी, उसको देखकर इनके मन में बड़ी भारी ग्लानि हुई।

उसकी प्रतिक्रिया के रूप में इन्होंने अहिंसा का, सर्वस्व त्याग का उपदेश देना आरम्भ किया। और बहुत से क्षत्रिय ब्राह्मण इनके शिष्य बन गये। उस समय जैन मत का रूप और संघटन आज जैसा न था, किन्तु कुछ-कुछ विचार चल रहे थे। अनुमान होता है कि इस का प्रभाव उस समय के महान् नीतिज्ञ विद्वान् श्री विदुर जी पर भी पड़ा होगा। क्योंकि जब महाराज युधिष्ठिर तपोवन में महाराज धृतराष्ट्र से मिलने गये और देखा कि वहाँ विदुर जी नहीं हैं जो कि धृतराष्ट्र आदि के साथ ही हस्तिनापुर से तपोवन में आये थे तो उन्हें खोजने को निकले, पर बहुत ढूंढ भाल करने पर विदुर जी को पा सके किस दशा में थे विदुर ?

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य जटी वीटा मुखःकृशः, दिग्वासा मलदिग्धांगो वनरेणु समुक्षितः पर्व आश्रम अध्याय २६।१८

अर्थात् जटाधारी, जिनका मुख सूखकर पत्थर सा हो गया है, दुर्बल, बिल्कुल नंगे, शरीर पर मैल से भरे, वन की धूल से आच्छादित विदुर जी राजा को दूर से दिखाई पड़े।

इस श्लोक में बिल्कुल नंगे (दिग्वासा) और शरीर पर मैल चढ़ा है (मलदिग्धांग) ये शब्द तो जैन मुनियों के लक्षणों से मिलते हैं। दिगम्बर जैन निर्वसन भी रहते हैं। वे स्नान भी नहीं करते किन्तु जैन मुनि जटी (जटाधारी) नहीं होते। वे केश लुंचन कर डालते हैं। सम्भव है उस समय केश लुंचन न चला हो। संन्यास न बौद्धों की नकल है न जैनों की, यह त्याग मार्ग सनातन है। उपनिषदों में, सूत्र ग्रन्थों में इसका खूब वर्णन है और महाभारत के अनुशासन पर्व में भी ब्राह्मण के लिये ऐसे त्याग का उपदेश है।

स्थाणुभूतो निराहारो मोक्षदृष्टेन कर्मणा।
परिव्रजति यो युक्त स्तस्य धर्मः सनातनः॥
न चैकत्र समासक्तो न चैक ग्राम गोचरः।
युक्तो ह्यटति निर्मुक्तो न चैकपुलिनेशयः॥
एष मोक्षविदां धर्मः वेदोक्तः सत्पथः सताम्।
यो मार्गमनुयाति मे पदं तस्य च विद्यते॥

चतुर्विद्या भिक्षुवस्त्र कुटीचक्र बहूदकौ, हंसा: परमहंसाश्च यो य: पश्चात् स उत्तम: ॥

अनुशासन पर्व अध्याय १४१ श्लोक ८६ से ८९ तक । ध्यान दीजिए।

अर्थात स्थाणु (जड़वत्) आहाररहित, मोक्ष के लिए दिखाये मार्ग से जो मुक्त हुआ परिव्रजन करता है, घूमता है उसका यह सनातन धर्म है । ८६

एक स्थान पर ही न रहे न एक ग्राम में ही रहे न एक नदी के किनारे रहे अर्थात् घूमता फिरे । ८६

यह मोक्ष प्राप्त करने वालों का धर्म है, वेदोक्त है, सत्पुरुषों का सन्मार्ग है । जो इस मार्ग पर चलता है उसे मोक्ष पद मिलता है । ८८ ।

ये संन्यासी चार प्रकार के हैं कुटीचक कुटिया में रहने वाले । बहुत बड़े जल स्थानों में रहने वाले, तीर्थों में घूमने वाले हंस और परमहंस इनमें क्रमश: उत्तम है । ८९।

यहाँ संन्यास को वेदोक्त बताया । परिव्रजति शब्द संन्यास को सिद्ध कर रहा है । इसे सनातन भी बताया है अत: ये शंकायें निर्मूल हैं कि संन्यास बौद्ध व जैनों से चला और यह कथा भी बौधायन सूत्र की व्यर्थ हो गयी है कि संन्यास प्रह्लाद के पुत्र ने चलाया । हां, संन्यास आश्रम का संघटन और उनके नाम वर्ग ये सब आचार्य शंकर ने किये हैं । भोगों से मुड़कर एकान्त वास करना, भोगों की प्रतिक्रिया मनुष्य का स्वाभाविक गुण है । महाराज भर्तृहरि उसका उदाहरण है । संन्यास के लिए अच्छा स्वास्थ्य, धर्म सेवा की लगन, और दृढ़ सदाचार आवश्यक है उच्च । विद्या भी हो तो और अच्छा है ।

श्री रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव तथा अन्य भी वैष्णव गृह-त्याग के पक्ष में तो हैं परन्तु शिखा-सूत्र के त्याग के वे विरोधी हैं और ऐसे शास्त्रार्थ भी हो चुके हैं । शिखा सूत्र त्याग का कोई पुष्ट प्रमाण भी नहीं मिलता, सूत्रों की विधि वा परम्परा मात्र ही है । किन्तु तर्क द्वारा यह सब सुसंगत है । यज्ञो-पवीत और शिखा प्रेरक चित्र हृदय में ही शिखा है, ज्ञान और प्रकाश के स्थान पर जो प्रेरणा देती है कि ज्ञान प्राप्त करो अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ो और यहां बालों का गुच्छा होने से धूप, शीत, वर्षा से इस कोमल स्थान की रक्षा भी होती है । यज्ञोपवीत – यज्ञ + उपवीत यज्ञ के समीप जाने का डोरा हैं और स्मरण कराता है ज्ञान, कर्म, उपासना का, तथा देव ऋण, ऋषि ऋण तथा पितृ ऋण से उऋण होने का । किन्तु जब सब कर्तव्य कर्मों से छुट्टी पा लेते हैं तो इससे अधिक महत्वपूर्ण कर्म में लगना है तो इन चिन्हों का रखना व्यर्थ है । सैनिक जब अपनी सेवा से निवृत्त हो गया तो वर्दी की जरूरत नहीं । जब मनुस्मृति ने बता दिया कि "आत्मन्यग्नीन् समारोप्य" अर्थात् आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि इन तीनों अग्नियों को अपने

आत्मा में धारण करके संन्यास ग्रहण करे । अब उसे बाहरी यज्ञों की आवश्यकता नहीं । केवल आत्मा में ही यज्ञ करेगा । अत: यज्ञोपवीत पहनना अब उसके लिये व्यर्थ है, कर्मकांड से वह छुट्टी पा गया हैं । किन्तु आजकल संन्यासी स्वय तो यज्ञों से छुट्टी पा गये हैं किन्तु यजमानों के यहां यज्ञ संस्कार कराते फिरते हैं । पूरा पौरोहित्य का काम करते हैं जो केवल गृहस्थ ब्राह्मण का ही काम है । पुरोहित को यज्ञ में अंगूठी कुंडल देना भी शास्त्र प्रमाण से स्वामी जी ने लिखा है तो कुंडल अंगूठा को बेच डालने के अतिरिक्त ये संन्यासी इसका क्या उपयोग करेंगे ? केवल धन-लोभवशात् ये संन्यासी इन कामों को करते हैं । कई संन्यासी रुपयों का लेन-देन अनाज की खलियां खरीदना भी करते रहे और सूदखोरी आज भी कर रहे हैं । अंध श्रद्धालु आर्य जन इन वक वृत्तियों को धन भी खूब देते हैं । दशा यह है कि लम्बी दाढ़ी वाले फिर वस्त्र गेरुआ धारण कर बिना पढ़े वेदांग के वेद भाष्य कर ऐसे उदरम्भरि संन्यासी हैं जो केवल मालखाने और पैसा कमाने तथा पूजा कराने के लिए ही हुए कपड़े रंगे हैं । ३५, ३५ रुपये रोज इनका भोजन का व्यय है । दक्षिणा सौ-सौ रुपये रोज पढ़ाई लिखाई में शून्य, ढोंग में पूरे पंडित । आर्य भाइयों को सावधानी से काम लेना चाहिए । कई रंगे कपड़े वाले हमने ऐसे देखे कि जिनके घर में सब कुछ है, किंतु घर का माल न खाकर जनता का माल उड़ाते फिरते हैं । किसी काम के भी नहीं, व्यर्थ दूसरों से सेवा कराना और जनता का माल उड़ाना, घर पर ऐसा भोजन मिलना भी नहीं है । वास्तविक संन्यासी (सम्यक् त्यागी) वह है, जो अपने ऊपर खर्च होने वाले धन से अधिक सेवा जनता की कर दे, संन्यास आश्रम संन्यासी संस्था बड़ी उपयोगी है और शास्त्रीय है इसे स्थिर रखना चाहिये । श्री स्वामी जी ने वर्णाश्रम धर्म जो कि वेद विहित है, मन्वादि-शास्त्र समस्त है, इसमें से ढोंग का खंडन किया है । सच्चे साधुओं का तो सबने सम्मान करना उचित समझा है । वेदादि शास्त्र अतिथि यज्ञ का बड़ा महत्त्व बताते हैं, अथर्ववेद ने बताया है कि अतिथि—

"स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथय:

अथर्व ९।६।६

और यह भी बताया कि अतिथि कैसा हो:—

"एष वा अतिथिर्यच्छोत्रिय:"

अथर्व ९।६।७

अतिथि वही है जो श्रोत्रिय (वेदों का ज्ञाता) विद्वान् हो । सब रोटी तोड़ा भिखारी अतिथि नहीं हो सकते । अतिथि शब्द का विग्रह यह हैं न तिथिर्य-स्यागमनस्य सोऽतिथि:" जिसके आने की कोई तिथि न हो ।

अचानक आया हुआ वेदज्ञ विद्वान् (संन्यासी)। किन्तु अतिथि शब्द व्याकरण में अत सातत्यगमने धातु से उणादि में "इथिम्" प्रत्यय करके अतिथि शब्द बनाया है अर्थ हुआ जो सदा चलता रहे। परिव्राजक और अतिथि एक ही अर्थ में हुए। अतः अथर्ववेद नवम कांड में जो अतिथि की महिमा का वर्णन है वह संन्यासियों की महिमा का वर्णन है, जो अभी पीछे अथर्व के मंत्र का टुकड़ा लिया है "स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः" अतिथि लोग स्वर्ग लोक को प्राप्त कराते हैं सही है। श्रोत्रिय (वेदज्ञ) अतिथि (संन्यासी) अपने सदुपदेशों से नरक को स्वर्ग बना देते हैं। संस्कार विधि में दिये मनु के २३ वें श्लोक में प्रवाह में होकर द्विज का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कर दिया गया है, इस पर श्री मीमांसक जी का नोट है, कि क्षत्रिय वैश्य का संन्यास गौण है, मुख्य नहीं, मैं स्पष्ट किये देता हूं कि गौण से तात्पर्य है कि यदि क्षत्रिय, वैश्य वानप्रस्थ तप द्वारा बदल कर ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लें, तो वे भी संन्यासी हो सकते हैं।

एक यह प्रश्न भी उठाया गया है कि संन्यासी अग्नि को, धातु को छुएगा नहीं? स्वामी जी ने बताया है कि यह सब मन गढ़न्त हैं तात्पर्य तो बुरे कर्मों का संसार के लोभ मोह, काम, क्रोध आदि का त्याग है धन संग्रह न करें। यज्ञादि संस्कार न करावे यह सब गृहस्थ बाह्याचारों के लिये छोड़ दें। आगे यह भी प्रश्न है कि उपदेशादि का काम भी गृहस्थ ब्राह्मण ही कर लेगा। फिर संन्यासी की आवश्यकता क्या है? स्वामी जी ने उत्तर दिया है कि गृहस्थ को इतना अवकाश नहीं मिल सकता और हम कहते हैं कि गृहस्थ को अपने कुटुम्ब-सम्भरण पोषण की चिन्ता तथा अपने साथियों का कुछ ध्यान भी रहेगा, सन्यासी इससे मुक्त हैं। किन्तु और जो संन्यासी यह विचार फैलाते हैं कि संन्यासी को कुछ भी नहीं करना है, वे बहुत भ्रान्त है। गीता कहती है—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

६।१

कर्म फल का त्याग करके जो कर्तव्य कर्म को करता है वह संन्यासी है, वह योगी है, वह यज्ञकारी है, वह कर्मकांडी है। और जो संन्यासी यह विचार फैलाते हैं कि संन्यासी को कुछ नहीं करना है वे बहुत भ्रान्त हैं। वे प्रथम ही ऋग्वेद के मं० ३ सूक्त ३२ मन्त्र ६ को प्रस्तुत करते हैं :—

"त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि विभूषथः सदांसि"

ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरुष मिलकर (विदथे) सुख-प्राप्ति और विज्ञान-वृद्धि कारक राज्य-प्रजा के सम्बन्ध रूप

व्यवहार में (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा, राजार्य सभा, नियत करें। (पुरुणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजा सम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथः) सब ओर से विद्या स्वातन्त्र्य धर्म सुविद्या और धनादि से अलंकृत करें। (सत्यार्थ० समु० ६)

यह है वैदिक राज्य का आदर्श—मनुष्यादि प्राणियों को प्राणिमात्र को सुख पहुंचाना। विद्या धर्म, स्वतन्त्रता से प्रजा को शोभित करना। विचारने की बात है कि कितने पुराने समय में वेद तीन सभाओं का उल्लेख करता है, बाइबिल, कुरान आदि किसी भी मत की पुस्तक में राज्य का यह सुन्दर विधान नहीं मिलता, केवल मजहबी नेता ही राज्य चलाता था पोप या खलीफा। कोई विधान नहीं था, उसकी अन्धाधुन्ध आज्ञा ही विधान थी, किन्तु आर्य धर्म में श्रुति, स्मृति, नीतिग्रन्थ भरे पड़े हैं। महाभारत का राजधर्म पर्व पढ़ो तो उसमें प्रिंस क्रोपाट किन रूसीविद्वात् का प्रजातन्त्र प्रबन्ध भी मिलेगा। प्रिंस क्रोपाटकिन के विचार ही गांधीवाद में है। श्री डाँगे साहब कम्यूनिस्ट नेता की पुस्तक। पढ़ो तो वे सिद्ध करते हैं कि आर्य लोगों का राज्य प्रबन्ध समाजवादी प्रबन्ध था, और वेदों में कई संकेत ऐसे मिलते हैं जिसमें समाजवाद की झलक पाई जाती है

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु कर्मस्बुपयुज्यते।
सर्व संकल्प संन्यासी योगारुढस्तदोच्यते। ६।४

जब इन्द्रियों के विषयों में मन का उपयोग नहीं करता, सब कामनाओं को त्याग देता है वह संन्यासी योगारूढ है। संन्यासी काम करे, पर अपने लिये नहीं, जनहित के लिये।

समानो प्रपा सह वो अन्न भागः,
समाने योक्त्रे सह यो युनज्मि। (अथर्व संज्ञान सूक्त)

ऋग्वेद में भी:—

"समानो मंत्रः समितिः समानी"

समिति समानी राजसभा समान हो यह बता रहा है कि सब समाज का सुख दुःख समान हो। पालन-पोषण व्यवस्था समान हो किन्तु आजकल के सा समाजवाद साम्यवाद कभी रहा था इसका स्पष्ट पता नहीं चलता, वेदों में प्राणियों, धन लोभी, पूंजीपति लोगों की निन्दा की गयी है और राजा इन पर नियंत्रण करे यह भी मिलता है।

आचार्य बृहस्पति ने तो लिखा है:—

जो धनी समाज के हितकर कार्यों में धन न लगावें—

तान् सर्वान् दण्डयेद्राजा, नगराच्च निष्काषयेत् ।

राजा उन्हें दंड दे, नगर से निकाल दे। कंजूस पूंजीवादियों और लोगों का संघर्ष निर्धन तथा राजा द्वारा धनिकों पर नियंत्रण पहले भी होता रहता था, और ऐसे भी धनी थे, कि जैसे कौशाम्बी का सेठ अनाथ पिण्डक जो दस सहस्र विद्यार्थियों को नित्य भोजन देता था, इसीलिये उसका नाम अनाथ पिण्डक पड़ गया था। अस्तु दान, राज प्रबंध से—किसी भी प्रकार से हो जनता में रोटी, कपड़ा और निवास का अभाव न रहना चाहिये। भारत में राजतंत्र भी रहे और कठोर राजाओं के प्रति विरोध में राज्यक्रान्तियां भी हुई। वेन के विरुद्ध राज्यक्रान्ति हुई। सहस्रबाहु के विरुद्ध राज्यक्रांति हुई जिसके नेता परशुराम थे, यह परशुराम का विद्रोह क्षत्रियों के विरुद्ध था ऐसा विचार सूतों ने फैलाया है। वास्तव में वह तानाशाही के विरुद्ध संघर्ष था। प्रजा प्रिय राजा दशरथ और जनता से कोई विरोध नहीं किया गया, प्रजा के प्रतिनिधि प्रायः ब्राह्मण होते थे त्याग के कारण। भारत में गणतन्त्र भी कई रहे थे, जैसे वैशाली में मल्लों का गणतन्त्र। कपिलवस्तु में शाक्यों का गणतन्त्र; और तीर्थंकर महावीर स्वामी जिन क्षत्रियों में जन्मे थे इनका भी गणतन्त्र राज्य ही था, पंजाब में मालवगण यौधेयगण, आग्नेयगण। ये गणतंत्र राज्य थे श्री कृष्ण भगवान् जिस यादव गण के प्रधान थे, और उद्धव जी मंत्री वह भी यादवों का गणतन्त्र था, किन्तु इसमें राजा भी रहता था, जो अग्रसेन थे। कंस ने गण को तोड़ दिया था और तानाशाह बन गया था, इसीलिये प्रजा उससे रुष्ट थी। महाभारत काल में रुक्मिणी का भाई रुक्मी, शिशुपाल, दुर्योधन ये सब तानाशाही के पक्ष में थे। जरासंघ इन सबका मुखिया था, इसीलिये श्री कृष्ण महाराज ने उन सबको समाप्त कर प्रजा प्रिय युधिष्ठिर का साम्राज्य स्थापित किया था। गणतंत्र में केवल उस गण के लोग ही चुनाव करते थे शेष लोग नहीं, चुनाव रंगीन शलाकाओं से होता था, महान् राजनीतिज्ञ चाणक्य ने गणतंत्र समाप्त करके महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य बनाया, क्योंकि गणतंत्र निर्बल रहते थे। जैसे कि आजकल अरब राज्य है। किन्तु श्री स्वामी जी प्रजातंत्र के पक्ष में थे, परन्तु राजा का होना भी स्वीकार करते हैं और संस्कार विधि में लिखते हैं "राजाधीन सभा और सभाधीन राजा" तथा बहुमत को भी स्वामी जी ने स्वीकार किया है। आर्यसमाज की स्थापना भी उन्होंने प्रजातंत्र की रीति पर की है किन्तु मतदाता योग्य हो यह भी नियम रखा है, अंधाधुंध मतदाता प्रजातंत्र को भ्रष्ट बना देते हैं जैसा कि अरस्तू ने प्रजातंत्र को मूर्खों का राज्य बताया है। प्रजा के शिष्ट, सभ्य, शिक्षित और आचारवान् मतदाता हों राजा कैसा हो यह पढ़िये:- श्री स्वामी जी ने मनुस्मृति के श्लोक दिये हैं:—

"राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं जब वे चारों वेदों की

कर्मोपासना ज्ञान विद्याओं के जानने वालों से तीनों विद्या सनातन दंडनीति, न्याय विद्या, आत्म विद्या अर्थात् गुणकर्म स्वरूप को यथावत् जानने रूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्ताओं का आरम्भ सीखकर सभासद् वा सभापति हो सके।

सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रखके सदा धर्म में बर्ते और अधर्म से हटें हटाये रहें। इसलिये रात-दिन नियत समय में (प्रातः सायम्) योगाभ्यास को करते रहें, क्योंकि जो जितेन्द्रिय अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इसको) जीते विना, बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता।

मनु जी ने ये नियम और योग्यता राजा की कही है किंतु श्री स्वामी जी शासन में प्रजा के प्रतिनिधियों को रखना चाहते हैं अतः सभासदों की भी वही योग्यता रखी जो कि राजा की। शायद स्वामी जी का तात्पर्य सामान्य सभासदों से न होकर शासन परिषद् के सभासदों से हो, योगाभ्यास कोई कठिन काम नहीं है सब कर सकते हैं, दो समय बैठकर इन्द्रिय, मन और प्राणों को रोकने का अभ्यास और इष्टदेव का चिन्तन। मनु जी ने ठीक ही कहा हैः-

"जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः"।

जिसका आप वश में नहीं वह औरों को क्या वश में करेगा? श्री स्वामी जी राजा प्रजा, राज सभासद सबको धर्म (सदाचार) में पक्का हुआ देखना चाहते हैं।

विषयी, विलासी राज्य शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। स्वामी जी जन राज्य के पक्ष में इसलिये है, कि वेद का यही निर्देश है। देखो यजु० ९।४०

"महते जानराज्याय" अर्थात् बड़े जनराज्य के लिये। राजा इस जन राज्य का प्रधान मात्र रहे यही श्री स्वामी जी की भावना है। महाभारत में भी राजसभा का वर्णन है :—

"चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान्
प्रगलभान् स्नातकान् शुचीन्,
क्षत्रियांश्च तथा चाष्टौ
बलिनः शस्त्रपाणिनः ।।
वैश्यान् वित्तेन संपन्नानेकविंशति संख्यया,
त्रींश्च शूद्रान्विनीतांश्च, शुचीन् कर्मणि पूर्वके ।

अर्थात् वेदज्ञ ब्राह्मण चार जो भाषण में निपुण हों, गुरुकुल से स्नातक बने हों, आचरण में बाहर-भीतर पवित्र हों। क्षत्रिय आठ जो बलवान् हों शस्त्रास्त्र चालन में दक्ष हों, धन सम्पन्न वैश्य इक्कीस और तीन शूद्र जो विनीत हों आचरणवान् हों और स्वकर्म में चतुर हों। इन ३५ के अतिरिक्तः—

अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा,
पञ्चाशद् वर्ष वयसे प्रगल्भमनसूयकम्,
श्रुति स्मृति समायुक्तं विनीतं समदर्शिनम्,
कार्ये विरतमानानां शक्तमर्थेष्वलोलुपम् ॥

ब्राह्मणादि ३५ के अतिरिक्त एक सूत भी राजसभा में रहे, जो सेवा श्रवण ग्रहण, धारण, ऊहन, उपोहन विज्ञान और तत्व ज्ञान (दर्शन) इन आठ गुणों से युक्त प्रगल्भ (वाग्मी) निन्दा न करने वाला, श्रुति स्मृति का ज्ञाता, नर्म और समदर्शी (पक्षपात रहित) कार्य में जो विवाद के विषय हैं या जो जन विवाद कर रहे हैं, उनके अर्थ ठीक करने में समर्थ और जो लोभरहित हों, और साथ ही बहुत बुरे दोष अर्थात् शिकार, जुआ, स्त्री, सुरापान, वाणी की कठोरता, धन में गोलमाल करना इनसे रहित हो ऐसे पचास वर्ष आयु वाले पौराणिक सूत को रखें। पौराणिक से तात्पर्य शायद पुराने इतिहास को जानने वाले से है किन्तु राजा मंत्रणा करे आठ मंत्रियों की परिषद् में:—

अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मंत्रं राजोपधारयेत्,
ततः सं प्रेषयेद् राष्ट्रे राष्ट्रीयाय च दर्शयेत्।

अर्थात् राजा ४ ब्राह्मण, ३ शूद्र और सूत इन आठ की परिषद् में विचार करे और फिर उस विचारे हुए विषय को राष्ट्र में प्रचारित करे और राष्ट्र के नेता को बतावे। (राजधर्म पूर्व महाभारत अध्याय ८५)

महाभारत में आजकल की सी लोकसभा और निर्वाचन का कहीं वर्णन नहीं है। संभवतः इन सभासदों उनके गुणों को जानकर राजा मनोनीत कर लेता होगा।

मनुस्मृति में भी राजपरिषद् में ऐसे ही विद्वानों का विधान है:—

त्रैविद्यो हैतुकस्तर्को नैरुक्तो धर्मपाठकः,
त्रयश्चाश्रमिणःपूर्वे परिषत्स्याद् दशावरा ॥

वेदत्रयी का ज्ञाता, कार्य कारणों को जानने वाला, तर्कशास्त्र का पंडित, निरुक्त अर्थात् शब्दों का सुसंगत अर्थ लगा देने वाला, और धर्मशास्त्रों का ज्ञाता से राजपरिषद् होनी चाहिए, इनमें कहीं भी अर्थशास्त्र के विद्वान् की बात नहीं कहीं गई, सम्भवतः अर्थशास्त्र उस समय धर्मशास्त्र के वा नीति शास्त्र के ही अन्तर्गत रहता होगा, स्वतन्त्र रूप से अर्थशास्त्र की रचना तो मुनिवर चाणक्य के समय से हुई है।

राज्यकरों के विषय में भी भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं :—

मधुदोहं दुहेद्राष्ट्रं भ्रमरा इव पादपम्
वत्सापेक्षी दुहेच्चैव स्तनांश्च न विकुहयेत्।

अध्याय ८४।४

अर्थात् राजा राष्ट्र से कर इस प्रकार प्राप्त करे जैसे मधुमक्खियां फूलों से शहद लेती हैं और जैसे बछड़ा गाय के दूध को पीता है, दाँतो से काटता नहीं, शहद की मक्खियाँ मधु ले लेती हैं और फूल खिले रहते हैं। और प्रजा का जीवन-साधन बताते हुए कहते हैं:—

कृषिगोरक्षवाणिज्यं लोकानामिह जीवनम्
ऊर्ध्वं तेषु त्रयी विद्या, सा धूतान् भावयत्युत।

राजधर्म पर्व अध्याय ८९

खेती, पशुपालन, और व्यापार यह प्रजाओं का जीवन साधन है। अतः कृषि की, पशुओं की, व्यापार की खूब उन्नति करो। यहां कृषि को प्रथम, पशुपालन को दूसरा तथा व्यापार को तीसरा स्थान दिया गया है। कृषि के विना तो सब कुछ ही निर्जीव है। किन्तु यह भी कह दिया कि इन सबसे ऊपर त्रयी विद्या (वेद) है क्योंकि वे प्राणियों में भावना बनाते हैं। भावना से हीन जनों के हाथ में कृषि, पशु और व्यापार आ जाने से दुर्बल जनों का शोषण बढ़ेगा। भुखमरी से उपद्रव होंगे अतः जनता में भावना रहना भी आवश्यक है भावना होने से एक दूसरे की सहायता करेगा, थोड़े में भी गुजर हो जायेगी। भावना वाले जन सब का हित विचारेंगे।

आकरे, लवणे, शुल्के तरे नागबले तथा,
न्यसेदमात्यान्नृपतिः स्वाप्तान् वा पुरुषान् हितान्।

(२९ अध्याय ६९)

सोने आदि की खानों पर, नमक पर कर लेने पर तथा हाथियों पर कर लेने के लिए राजा को बहुत सच्चे, ईमानदार, हितकारी, श्रेष्ठ व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिए। राजधर्मपर्व महाभारत में ऐसी आर्थिक नीतियों के भी बहुत वचन हैं। पितामह भीष्म जी महाराज ने युधिष्ठिर को यह भी बताया कि प्रारम्भ में—

"नैव राज्यं न राजाऽस्ति नैव दंडो न दांडिकः,
धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम्"।

उस प्रारम्भिक समय में न राज्य था, न राजा, न दण्ड था, न दण्ड देने वाला। सब प्रजा धर्म से ही परस्पर रक्षा करते थे। वास्तव में यदि व्यक्ति नेक हैं, सच्चे हैं, ईमानदार हैं तो कानून और व्यवस्था की आवश्यकता नहीं

और जो सब ही दुष्ट हैं, दुराचारी हैं और बेईमान हैं तो कानून व्यवस्था, सरकार सब बेकार हैं। राज्य का प्रकार चाहे जैसा हो, अर्थनीति प्रजा के हित की हो और शासक धर्मात्मा हो, तो देश की रक्षा और उन्नति होती है। श्री स्वामी जी ने मनुस्मृति का यह श्लोक लिखकर बताया है कि शराब आदि नशों का सेवन, जुआ आदि बुरे खेल, स्त्रियों में रत रहना, शिकार में समय खोना ये कामज व्यसन हैं, इनसे राजा और शासकजन बचे रहें। दुर्व्यसनों में फंसा मनुष्य प्रजा-पालन नहीं कर सकता। महाभारत में भी यही उपदेश है :—

कामे प्रसक्तः पुरुषः किमकार्यं विसर्जयेत्,
मद्यं मांसं परस्वानि तथा दारा धनानि च ॥

कामासक्त मनुष्य क्या बुराई नहीं कर सकता? दूसरों के धन और अधिकार तथा स्त्रियों को रखना ये सब बड़े दोष हैं।

शुक्रनीति में भी यह कहा गया है :—

द्यूतं स्त्री मद्यमेत् त्रितयं बह्वनर्थकृत्,
अयुक्तं युक्ति-युक्तं हि धनपुत्र मतिप्रदम्।
(अध्याय ३।२)

जुआ, स्त्रियाँ और मद्य ये तीनों बहुत अनर्थकारी हैं और यदि युक्तिपूर्वक (वैधानिक रीति से) इनका सेवन किया जाये तो धन, पुत्र और बुद्धि देने वाले हैं अर्थात् विवाह पूर्वक, व्यापार रूप में, औषध रूप में रोगों के समय सेवन करना ठीक है।

सत्यार्थ प्रकाश में प्रश्न है :—

प्रश्न—संस्कृत विद्या में (भाषा में) पूरी-पूरी राजनीति है वा अधूरी?

उत्तर—पूरी है, क्योंकि जो-जो भूगोल में राजनीति चले और चलेगी, वह सब संस्कृत विद्या से ली है। जो राजनीति को विशेष देखना चाहें वह चारों वेदों, मनुस्मृति, शुक्रनीति, महाभारत आदि (अनुशासन पर्व का राजधर्मपर्व) देखकर निश्चय करें और "प्रत्यहं लोकदृष्टैः शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः" (मनु) नित्य के लोक व्यवहारों को देखकर और शास्त्रों में दिखाये गये कारणों को देखकर निश्चय करें।

अर्थशास्त्र का लक्षण चाणक्य मुनि ने किया है :—

"मनुष्याणां वृत्तिरर्थः"—मनुष्यों की जीविका अर्थ है। मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः—यह मनुष्यों युक्त भूमि ही अर्थ है। अर्थ भूमि से उत्पन्न सब वस्तुएं। तस्याः पृथिव्याः लाभ पालनोपायः शास्त्रं मर्थशास्त्रमिति

उस पृथिवी की प्राप्ति, रक्षा के उपाय अर्थशास्त्र हैं। अगले सूत्र में इसके अनेक भेद बताये हैं। और निर्णय किया है कि—

अर्थमूलौ धर्मकामाविति।

धर्म और काम की जड़ अर्थ है। विना धन के कामपूर्ति और धर्म यज्ञादि नहीं हो सकते। अर्थ किसके हाथ में रहे आजकल यही प्रश्न महत्त्वपूर्ण चल रहा है। साम्यवाद, पूंजीवाद, समाजवाद, अर्थाधिकार को लेकर चलते हैं। सब अर्थ-जीवन के साधन सरकार के हाथ में रहें और सरकार हो श्रमिकों की। यह समाजवाद है, और एक ही वर्ग श्रमिक वर्ग के हाथ में ही शासन रहे, यह हैं साम्यवाद की विचारधारा।

पूंजी निजी भी रहे और पूंजीपतियों पर सरकार का नियन्त्रण रहे; और सरकार को बनाये प्रजा। यह है प्रजातन्त्र, जैसा अमरीका और भारत में है। वेद ने भी कहा :—

"शतहस्तः समाहर सहस्रहस्तःसंकिर"

सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से व्यय करो अर्थात् एक व्यक्ति अपनी कमाई नौ और व्यक्तियों को भी दे, बालक, वृद्ध, रोगी, संन्यासी, स्त्रियां इन सब को पाले, पोषे। धनी दान न दे तो उस प्राणी को राजा दण्ड दे। पूंजी रहे किन्तु हृदय में परहित भावना भी रहे। परलोक के कल्याण की आशा और यश की चाह धनियों को दानी बनायेगी। इसीलिये धर्म की आवश्यकता है। केवल एक ही वर्ग रहे यह अस्वाभाविक है। सब की कार्य-शक्ति, बौद्धिक शक्ति एक सी नहीं तो सबको बराबर धन कैसे मिल पायेगा? वर्ण-व्यवस्था के अनुसार तीन वर्ण तो काम चलाऊ ही धन रक्खेंगे और वर्ण-व्यवस्था मानी गयी है गुण, कर्म से। देखो शुक्रनीति अध्याय १, श्लोक ३८ से ४३ तक।

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र, क्षत्रियो वैश्य एव न,
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो, भेदिता गुणकर्मभिः। ॥३८॥

अर्थात्—

जाति मात्र से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ नहीं, यह भेद गुण कर्म से होता है।

ब्रह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वे ते किन्तु ब्राह्मणाः,
न वर्णतो, न जनकात्, ब्रह्मतेजः प्रपद्यते ॥

सब ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं, तो क्या सब ब्राह्मण हैं नहीं, वर्ण तो पिता से, किन्तु ब्रह्मतेज नहीं मिलता, किन्तु—

ज्ञानकर्मोपासनाभिदवताराधने रत:।
शान्तो दान्तो दयालुश्च, ब्राह्मणस्तु गुणैः कृतः ।।

जो ज्ञान, कर्म, उपासना से ईश्वर की भक्ति में रत है, शान्त, दान्त, दयालु है यह गुण, कर्म से ब्राह्मण है।

लोक संरक्षणे दक्ष:, शूरो दान्त: पराक्रमी।
दुष्ट निग्रहशीलो य: स वै क्षत्रिय उच्यते ।।४१।।

जो लोक रक्षा में कृपालु हो, शूर हो, जिसने इन्द्रियां वश में की हैं, जो दुष्टों को दण्ड देने का स्वाभाविक गुण रखता है, वह क्षत्रिय कहलाता है ।।४१।।

क्रय-विक्रय कुशला ये नित्यं परोपजीविन:,
पशुरक्षा कृषिकरास्ते वैश्या: कीर्तिता भुवि ।। ४२ ।।

जो वस्तु खरीदने और बेचने में चतुर हैं और परोपजीवी, रुपये के लेनदेन से जिनकी जीविका चले। पशुपालन और खेती करने वाले पृथिवी पर वैश्य कहे जाते हैं।

द्विज सेवार्चनारता शूद्राः शांता जितेन्द्रिया:,
सोरकाष्ठ तृणवहास्ते नीचा: शूद्रसंज्ञका: ।। ४३ ।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों की सेवा में लगे, हल, लकड़ियां ढोने वाले और घास लाने वाले नीची श्रेणी के लोग शूद्र कहाते हैं। शूद्रों के लिये भी जितेन्द्रिय शब्द आया है, वे भी अवश्य सदाचारी हों। शुक्रनीति और मनुस्मृति में युद्ध, युद्ध सामग्री, राजदूत, राजमन्त्री आदि अनेक विषयों पर विस्तृत विचार किये गये हैं। श्री स्वामी जी ने पूरा समुल्लास ही मनुस्मृति के आधार पर लिखा है, किन्तु इन नीति ग्रन्थों और स्मृतियों के मौलिक सिद्धान्त तो सदा अचल है, जैसा प्रजा पालन व रक्षण, सदाचार, देश प्रेम आदि; किन्तु युद्धों के प्रकार, प्रबन्धों की प्रक्रिया, विद्या और कलाओं की शैलियाँ अब बदल गई हैं और बहुत उन्नति कर गई हैं, अब युद्ध में हाथी-ऊंट नहीं, टैंक और विमान चाहियें। विज्ञान का युग है।

बदली हुई दशा को साथ लेकर चलना होगा। मनुस्मृति के बहुत से श्लोक लेकर स्वामी जी का लिखने का प्रयोजन केवल इतना ही है कि पूर्व ऐतिहासिक दशा का ज्ञान हो जाये। मनु जी के समय के दण्ड जैसा कि सत्यार्थ प्रकाश में है :

येन येन यथांगेन स्तेनो नृषु विचेष्टते,
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिव: ।।

अर्थ—चोर जिस प्रकार जिस अंग से मनुष्यों के विरुद्ध चेष्टा करता है उस-उस अंग को मनुष्यों की शिक्षा के लिये राजा हरण अर्थात् छेदन कर दे। यह दण्ड आजकल बहुत ही कठोर और असभ्यता का माना जायेगा क्योंकि वह व्यक्ति सुधर भी जाये तो जीविका के लिये कुछ न कमा सकेगा, भोजन और शौच में भी पराधीन हो जायेगा, दण्ड सुधारने के लिये हैं न कि निकम्मे लोगों की वृद्धि के लिये। हाथ कट जाने से भीख मांगकर जनता पर अपने पेट-पालन का भार डाले या फिर चोरियां ही करे। उसे कोई शिल्प सिखाकर कमाऊ बनाने से जनता का लाभ होगा किन्तु उस काल में अपराध कम होते थे। हाथ काटने के दण्ड का अवसर ही कम होता था। कठोर दण्ड भय तो पैदा कर देता है किन्तु वृत्ति बदलना ही दण्ड का लक्ष्य होना चाहिये। उस समय दण्ड अति कठोर थे तो आजकल दण्ड अति नरम हो गये हैं, अत: अपराध बढ़ रहे हैं। श्री स्वामी जी ने मनुस्मृति के ७,८,९, अध्यायों में जो कुछ वर्णन था सब लिख दिया। वह अटल नहीं है उसे देश-काल के अनुसार बनाया जा सकता है। मनु ने यह बात कितनी अच्छी लिखी है :—

पिताचार्य: सुहृन्माता भार्यापुत्र: पुरोहित:।
नादण्डयो नामराज्ञोऽस्ति, य: स्वधर्मे न तिष्ठति ।।
कार्पापणं भवेद्दण्डयो यत्रान्य: प्राकृतो।
जन: तत्र राजा भवेद्दण्डयो सहस्रमिति धारणा ।।
अष्ट पाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च ।।
ब्राह्मणस्य च चतुष्षष्ठिस्तद्दोषगुण विद्धि स:।
द्विगुणा व चतुष्षष्ठि:, पूर्वं चापि शतं भवेत् ।।

अर्थ—चाहे पिता, आचार्य, मित्र, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो जो स्वधर्म में स्थिर नहीं रहता वह राजा का अदण्डय नहीं होता अर्थात् जब राजा न्याय आसन पर बैठे तब किसी का पक्षपात न करे। किन्तु यथोचित दण्ड देवे।

जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दण्ड होवे। अर्थात् राजा को सहस्रगुणा दण्ड होना चाहिये। मन्त्री अर्थात् राजा के दीवान को आठ सौ गुना, उससे न्यून को सात सौ गुना और उससे भी न्यून को सौ गुना, इसी प्रकार उत्तम-उत्तम अर्थात् जो एक छोटे से छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है उसको आठ गुणा दण्ड से कम न होना चाहिये (छै: गुना शब्द चाहिये) क्योंकि यदि प्रजा पुरुषों से राजपुरुषों को दण्ड अधिक न होवे तो राजपुरुष प्रजापुरुषों का नाश कर देवें जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से ही वश में आ जाते हैं, इसलिए राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्य-पर्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजा-पुरुषों से

अधिक दण्ड होना चाहिए ।३। (मन्त्री शब्द से लेकर श्लोक ३ के अर्थान्त तक श्री स्वामी जी का अपना भाव है, जो श्लोक के आधार पर ही लिखा गया है) ।४।

और वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्र को चोरी से आठ गुना, वैश्य को सोलह गुना, क्षत्रिय को बत्तीस गुना, ब्राह्मण को चौंसठ गुना वा सौ गुना अथवा एक सौ अट्ठाई गुना दण्ड होना चाहिए अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्टा अधिक हो, उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड देना चाहिए ।५।

कितना उत्तम है यह दण्ड का विधान ! ज्ञानवान् भी अपराध करे तो उसे अधिक दण्ड मिलना ही चाहिए ।

उस समय दण्ड कठोर थे तो अपराध भी कम होते थे। लोक लज्जा के कारण भी अपराधीवृत्ति रुकी रहती थी। जहाँ राजा और राजपुरुषों को दण्ड देने की बात लिखी है वहाँ प्रश्न उठता है कि इन्हें दण्ड कौन दे ?

उस समय भी आजकल की जजी के समान न्यायाधिकरण होते थे, छोटे भी, बड़े भी जैसे हाई कोर्ट, सुप्रीम कोर्ट आदि ।

न्यायाधिकरण में अध्यक्ष ब्राह्मण वा क्षत्रिय रहता था, जो पूर्ण शास्त्रज्ञ और सदाचारी होता था ।

एक वैश्य होता था, अर्थशास्त्र और व्यवहार का ज्ञाता । एक कायस्थ होता था लेखक और लेखों का परीक्षक तथा विधानज्ञ । यह कायस्थ शब्द तो मौर्यकाल से पाया जाता है जिसका अर्थ है विभागाध्यक्ष ।

प्रत्येक विभाग का लेखा-जोखा एक व्यक्ति रखता था। काय-विभाग स्थ-स्थित रहने वाला। यह पद का नाम है, इस पर कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय ही रहता होगा, जो शनै:-शनै: एक वर्ग के रूप में हो गए। मनुस्मृति के ७,८,६, अध्यायों के ही श्लोक श्री स्वामी जी ने बहुधा दिए हैं। शुक्र नीति के श्लोक जो हमने दिए हैं उनमें पूर्ण व्यवस्था स्पष्ट रूप से गुण, कर्म से मानी गई है, जन्मना नहीं। इस पर पौराणिक बन्धुओं को ध्यान देना चाहिए।

मनुस्मृति के सप्तम अध्याय का श्लोक—

"रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः,
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ।

जो-जो लड़ाई में जिस-जिस भृत्य वा अध्यक्ष ने जीता है—रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन-धान्य, गाय आदि पशु और स्त्रियाँ तथा अन्य प्रकार के सब

द्रव्य और घी तेल आदि के कुप्पे वा (चाँदी-सोना) वही उनका ग्रहण करे ॥ ११ ॥

परन्तु—"राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः",
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यम् पृथग् जितम् ।

सेनास्थ जन भी उन जीते हुए पदार्थों में से सोलहवाँ भाग राजा को देवें और राजा भी सेनास्थ योद्धाओं को उस धन में से, जो सबने मिलकर जीता हो सोलहवां भाग देवे ।१२ (स० प्र०)

यह व्यवस्था जो मनु महाराज की है बहुत पुरानी है। इस व्यवस्था से सैनिक प्रबन्ध छोड़कर नगर को लूटने में लग जाते थे। सब धन राष्ट्र का रहे और शासन उसका उचित विभाग पारितोषिक रूप में दे तो उचित रहे। इसी प्रकार स्त्रियों पर अधिकार करना भी उचित नहीं, हाँ निराश्रय स्त्रियां रह गई हों, तो उनका प्रबन्ध करना चाहिए, स्त्रियों को दासी अथवा रखैल बनाकर रखना आर्य-संस्कृति नहीं ।

यह मुसलमानों की प्रथा है। इस्लाम में लूटे हुए माल में से नबी को पाँचवां भाग मिलता था और स्त्रियों के लिए यह कुरान की आज्ञा है कि यदि उनके घर वाले मुसलमान बन जायें तो उन्हें लौटा दी जायें अन्यथा उन्हें अपनी पत्नियाँ बना लिया जाये। यह प्रथा और कुरान की आज्ञा स्त्रियों पर घोर अत्याचार है। इस अत्याचार के कारण सहस्त्रों हिन्दू स्त्रियों ने अग्नि में जल-कर, विष खाकर, जल में डूबकर प्राण त्याग दिए और अमर हो गयीं। श्री स्वामी जी इससे प्रथम आठवें श्लोक पर लिखते हैं :—

विशेष इस पर ध्यान रक्खे कि स्त्री, बालक, वृद्ध और आतुर तथा शोक-युक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न चलायें उनके लड़के, बच्चों को अपनी सन्तानवत् पालें। और स्त्रियों को भी पालें, उनको अपनी बहिन और कन्या के समान समझें। कभी विषयासक्ति की दृष्टि से भी न देखें। जब राज्य अच्छी प्रकार जम जाये और जिसमें पुनः युद्ध करने की शंका न हो उनको सत्कारपूर्वक छोड़कर अपने-अपने घर वा देश को भेज देवें (स० प्र० श्लोक ८ पर)

आर्यों के युद्ध-नियम कैसे सुन्दर और मानवता पूर्ण हैं। इन नियमों का उदाहरण भारत के इतिहास में विद्यमान है।

१. अकबर की कुछ स्त्रियाँ पहाड़ी घाटी में महाराणा प्रताप के सैनिकों से घिर गयीं, तब उनके भोजन आदि का प्रबन्ध किया गया और प्रतिष्ठा के साथ उन्हें मुगल सेना में भेज दिया गया।

२. जब इन्दौर के महाराज होल्कर ने युद्ध के दण्ड का धन प्राप्त करने के लिए दिल्ली के बादशाह की बेगमों को गिरफ्तार किया या यों समझिए

बादशाह ने बेगमें गिरवी रक्खीं, तो इन्दौर में रानीगड़ा बाजार में ये सब रक्खी गयीं, धीरे-धीरे बादशाह ने रुपया अदा कर दिया तब सब बेगमें छोड़ दी गयीं।

३. जब भारत के महाराज जवाहरसिंह जी ने दिल्ली की बेगमों को पकड़ कर भरतपुर भेजा, तो महाराज के मामा राजा बलराम जी की सुपुर्दगी में ये सब थीं। मार्ग में बेगमों ने प्रातःकाल का नाश्ता-पानी माँगा तो राजा साहब ने अपने सैनिकों से कहा कि पीठ फेरकर बेगमों के चारों ओर खड़े हो जाओ और बेगमों से कहो कि रथों से उतर कर खेतों में लहराती हुई मटर की फलियाँ खाओ। बेगमें प्रसन्नता से मटर खाने लगीं। साथ में दरबारी कवि श्री मधुसूदन जी हिन्दी के महाकवि भी थे, उन्होंने लिखा :—

"दिल्ली की जो बेगमें नागर पान चबायें,
पेंदे पड़ी बलराम के तो मटर खेत में खायें"।

इन बेगमों में ही समरू बेगम भी थी जो फिर ईसाई बनकर सरधना (मेरठ) की रानी बनी। जाटों ने किसी एक भी बेगम को अंगुली तक नहीं छुई। रुपया लेकर सब दिल्ली लौटा दी गईं। समरू बेगम नाचने वाली थी उसे महाराज ने अपने सैनिक आफीसर (फ्रेंच) को दे दिया, इस औरत की राजी पर।

आर्य जाति का यह चरित्र गिरे हुए समय में भी रहा। सन् ७१ की लड़ाई बंगला देश में पाकिस्तान से हुई। विजय के बाद ५ मास तक भारत की सेना बंगला देश में रही, किसी एक भी मुसलमान स्त्री की कोई भी शिकायत हमारे सैनिकों के विरुद्ध नहीं आई। जब कि पाकिस्तानी सैनिकों ने अपने मजहब की दो लाख स्त्रियों को बलात्कार द्वारा गर्भवती कर डाला। मनुस्मृति के अनुसार उन अनाथ स्त्रियों पर अधिकार करके भी उनका पालन-रक्षण किया जाएगा, और शान्ति होने पर वे जहाँ जाना चाहें, वहां भेज दिया जाएगा। महाराज शिवाजी के दरबार में कल्याणगढ़ के किलेदार अल्लाहबख्श की पुत्री पकड़कर लायी गई तो महाराजाधिराज ने उसकी इच्छानुसार उसे उसके घरवालों के पास बीजापुर भेज दिया। (यह घटना खाफीखां ने लिखी है) इतिहास में आर्यों का चरित्र इस विषय में निर्मल रहा है। पूरे सभुल्लास में युद्ध के प्रकार आदि लिखे हैं। श्री स्वामी जी राजा का होना स्वीकार करते हैं किन्तु राजा स्वेच्छाचारी न होकर सभाधीन रहे।

अथर्ववेद भी राजा का विधान करता है किन्तु प्रजाप्रिय राजा का—

आत्वाहार्षमन्त भूं ध्रुं वा स्तिष्ठा विचालयेत्,
विशास्त्वा सर्वा बाञ्छन्तु मात्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्।
अथर्व० ६।८७।

वही राजा ध्रुव (अटल) रह सकता है जिसे सब प्रजायें चाहें, वेद में आया है कि :—

"विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु"—तुझे सब प्रजायें चाहें, तेरा राज्य भ्रष्ट न हो प्रजा चाहें तो राज्य अटल रहेगा।

श्री स्वामी जी शतपथ की श्रुति (का० १३, प्र० ३, ब्रा० ६, क० ७,८) राष्ट्रमेव विश्या हन्ति तस्माद्राष्ट्री विशंघातुकः आदि उद्धृत करते हैं।

जो प्रजा से स्वतन्त्र, स्वाधीन राजावर्ग रहे तो राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करे, जिसलिए अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होकर प्रजा का नाशक होता है। अर्थात् यह राजा प्रजा को खाये जाता है। इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। (स० प्र०)

श्री स्वामी जी एकाकी राजतन्त्र, डिक्टेटरशिप, (तानाशाही) को पसन्द नहीं करते। राजा रहे पर शासन प्रजातन्त्र रहे यदि प्रजा ही राजा को चुने तो और अच्छा जैसा कि आजकल भारत का शासन है। प्रजातन्त्र होने से सब ही प्रजा में स्वाभिमान की भावना बढ़ती है उत्तरदायित्व और सबके हित का ध्यान रहता है, प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति का अधिकार मिलता है। अपनी योग्यता (विद्या, देशसेवादि) बढ़ाने को प्रत्येक व्यक्ति उत्साहित होता है अतः जैसा स्वामी जी का अभिप्राय है वैसा ही प्रजातन्त्र आज भारत में है किन्तु श्री स्वामी जी प्रजाओं और शासनकर्त्ताओं को धार्मिक जितेन्द्रिय भी रखना चाहते हैं यही त्रुटि है कि देश का आचरण ऊंचा नहीं उठ रहा। धर्म से स्वामी जी का अभिप्राय नैतिकता (Morality) सदाचार (Character) छल कपट रहित होकर परस्पर व्यवहार किया जाये जैसा कि अथर्ववेद काण्ड ३।सूक्त ३०।मन्त्र ३ कहता है "सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा वाचं वदत भद्रया" अर्थात् सीधे निष्कपट, सदाचारी होकर एक दूसरे से कल्याण-मयी वाणी बोलो, अब एक शिक्षा जो स्वामी जी ने अन्त में दी है, वह बहुत लाभदायक है, लाभदायक ही क्या राष्ट्र की स्वाधीनता और रक्षा इसके बिना हो ही नहीं सकती "व्यभिचार और बहुविवाह को बन्द करें" जिस शरीर और आत्मा में सदैव पूर्ण बल रहे क्योंकि जो केवल आत्मा का बल, विद्या, ज्ञान बढ़ाये जायें और शरीर का बल न बढ़ावें तो एक ही बलवान् पुरुष सैकड़ों ज्ञानी और विद्वानों को जीत सकता है और जो केवल शरीर का ही बल बढ़ावे

आत्मा का नहीं तो भी राज्यपालन की उत्तम व्यवस्था कभी नहीं हो सकती, बिना व्यवस्था के सब आपस में ही टूट, फूट, विरोध, लड़ाई-झगड़ा करके सब नष्ट-भ्रष्ट हो जायें इसीलिये सदैव शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिए, जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार, व्यभिचार और विषयासक्ति है। विशेषतः क्षत्रियों को दृढांग और बलयुक्त होना चाहिए। 'सत्यार्थप्रकाश, अन्तिम पृष्ठ पर उक्त पंक्तियाँ श्री स्वामी जी के हृदय की तड़प की द्योतक हैं वे अपने देश को कैसा देखना चाहते थे। शरीर और ज्ञान से युक्त। स्वामी जी ने ठीक ही लिखा है, शारीरिक बल, सैनिक बल के बिना विद्या से युक्त देश भी परास्त हो जाता है। राजा भोज विद्वान् थे, विद्वानों के आश्रयदाता भी, किन्तु इन्होंने महमूद गजनवी के आक्रमणों को नहीं रोका। वह बराबर भारत के मन्दिरों को लूटता रहा और राजा साहब अपनी कविताओं में लगे रहे। भारत का अपने समय का इतिहास लिखने वाला अलबरूनी (अरबयात्री) जो महमूद के समय में भारत आया वह भोज की प्रशंसा करता है विद्या और व्यवहार की। मराठों ने सिक्खों ने अपने बल बढ़ाये तो दृढ़ राज्य स्थापित कर लिये, राजपूतों ने आपसी झगड़ों और विवादों में शक्ति नष्ट की। स्वामी जी भारत के राजाओं को सुधारना चाहते थे। स्वामी जी के विरोधी विचारें कि स्वामी जी देश के लिये दिव्य वरदान रूप थे, उनकी शिक्षा देश के लिये कितनी उत्तम है।

✲ ✲ ✲

एकादश समुल्लास

भारतोत्पन्न मतों की आलोचना

"यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके समान भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है इसलिए इस देश का नाम सुवर्ण भूमि है। क्योंकि यह सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करता है इसलिए सृष्टि की आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे"

"स्वायंभुव राजा से लेकर पाँडव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा"।

"सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य कुल में ही हुए थे"।

अपनी मातृभूमि और अपनी आर्य जाति के लिए श्री स्वामी जी के हृदय में कितनी श्रद्धा और विश्वास से भरी भावनायें थी, इस पर विचार करिए।

स्वामी जी की ये पक्तियाँ स्वाभिमान को, स्वदेशभक्ति को, स्वतन्त्रता के भावों को कैसे उभार रही हैं यह सोचा आपने ? स्वामी जी के विरोधी पौराणिक पंडित आज भी नहीं सोच पाते। स्वामी जी की इन पंक्तियों से हृदय स्वाभिमान से. स्वदेश भक्ति के भावों से जातीय गौरव से प्रफुल्लित हो उठता है। और एक दम यह वेद पंक्ति मुख से निकलती है :—

"नमो मात्रे पृथिव्यै (यजु:)
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाँ सस्यश्यामलां मातरम्
वन्दे मातरम् ॥

स्वामी जी ने भारतवर्ष की प्रशंसा में ऊपर जो कुछ लिखा है वह कोरी

अतिशयोक्ति नहीं है, यथार्थ है। विष्णु पुराण कहता है :—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

श्रीमद् भागवत में भी देखिए: —

अहो! अमीषां किमकारि शोभनम्,
प्रसन्न एषां किमुत स्वयं हरिः।
यै र्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे,
मुकुन्द सेवोपमिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥
कल्पायुषां स्थानजयः पुनर्भवात्,
अल्पायुषां भारत भूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः,
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥ २३॥

श्रीमद् भागवत स्कन्ध ५, अध्याय १९ —

और देखिए एक देशभक्त संस्कृत कवि कहता है:—

हिम कुधर किरीटे, जह्नवी हार शुभ्रे।
परिकर शुचि विन्ध्यालङ्कृते रत्नगर्भे।
सलिल निधि सुसेव्ये धौत पादाब्ज दिव्ये,
वसुमति सुर वन्द्ये! मातृभूमे नमस्ते ॥

श्री बङ्किमचन्द्र चटर्जी का लिखा 'वन्देमातरम्, तो भारत का राष्ट्रगीत ही बन गया है:---

सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्,
सस्य श्यामलां मातरं वन्दे मातरम् ॥

किन्तु दुर्बुद्धि मुसलमान आज भी इस गीत का विरोध करते हैं। इन्हे प्रसन्न करने के लिए ही नेहरू जी ने महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर का लिखा गीत— जन-गण-मन अधिनायक, जय हे भारत भाग्यविधाता। जो कि कविवर ने जार्ज पंचम के भारत आगमन पर लिखा था और जिसमें पाश्चात्य दुर्गन्ध है। इन मजहवी जनूनीयों को यह पता नहीं कि इनका सबसे बड़ा नेता, पक्का मुसलमान, और महा विद्वान् कवि अल्लामा इकबाल भारत की महिमा में क्या

लिख रहा है:—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा,
हम बुलबुले हैं इसको यह गुलिस्तां हमारा ॥

दूसरी कविता जो "राम" शीर्षक है—

लवरेज है शराबे हकीकत से जामे हिन्द।
सब फलसफी है खित्तए मगरिब के रामे हिन्द।
यह हिन्दिओं के फिक्रे फलक रस का है असर
रफ अत में आसमां से भी ऊंचा है बामे हिन्द ।
ह राम के बजूद पे हिन्दोस्तां को नाज,
अहले नजर समझते हैं इसको इमामे हिन्द।

वास्तव में गंगा जैसी नदी और रामचरित्र जैसा आदर्श प्रेरक पुस्तक भूमि भर पर किसी देश में नहीं है। भारत की प्रशंसा में एक और कविता में इकबाल साहब लिखते हैं:—

बन्दे कलीम जिसके पर्वत जहां के सीना,
नूहे नवी का उतरा आकर जहाँ सफीना।

अर्थात् जिस देश के निवासी कलीम ईश्वर से बात करने वाले हजरत मूसा के समान हैं। जहां के पहाड़ सीना अर्थात् "तूर" पर्वत—जहां हजरत मूसा को ईश्वर के दर्शन प्रकाश रूप में हुए थे - के समान हैं। जल प्रलय के समान हजरत नूर की नौका जहां आकर रुकी थी अर्थात् जहां मानवीय सृष्टि प्रलय के वाद हुई थी वह भारत है। दूसरे एक महान् विद्वान् मुसलमान मौलाना सुलेमान नदवी साहब ने अपनी पुस्तक "अरव और हिन्द के पुराने ताल्लुकात" में लिखा है:—

मुसलमानो! इस जमीन को "भारत को अपनी मफ्तुहा "विजित" जमीन मत कहा करो यह तुम्हारे दादा आदम की पैदायश की जगह "जन्म भूमि" है। हजरत आदम बहिश्त 'स्वर्ग से' निकाले गये तब अल्हा ने उन्हें चार फल दिये—अमरूद, केला, नीबू, खजूर। हिन्द में यह चारों फल पाये जाते है और मुल्कों में पूरे चारों नहीं।

फ्रांस की ओर से चन्द्र नगर बंगाल में नियुक्त जज ने अपनी पुस्तक "बाइबिल इन इण्डिया" में भारत की अत्यन्त प्रशंसा की है और वे लिखते हैं कि सब विद्याएं और ज्ञान तथा दर्शन 'फिलासफी' भारत से ही संसार में पहुंची है।

ऐसी महिमामयी पुण्य भूमि की प्रशंसा ऋषि दयानन्द क्यों न करते !

अब सैंकडों ऐतिहासिक प्रमाण मिल रहे हैं कि कभी अरब में, दक्षिणी अमेरिका में भारतीयों का राज्य था। इंडोनेशिया, जावा, मलाया, सुमात्रा, और कम्बोडिया में भारतीय क्षेत्रों में सभ्यता फैलायी, शिक्षा दी, शासन चलाया। कम्बोडिया में तो भारत वंश में नरेशों के बनाये विशाल मंदिर भी खड़े हैं 'वोरनीयो' वरुण द्वीप आज भी खड़ा भारत वर्ष के नरेशों की कीर्ति का बखान कर रहा है उस पर लिखा है :—

श्री विष्णु वर्म राजेन्द्रो यशषा बहु सुवर्णकम् तस्ययज्ञस्य स्तूपो-यम् महेन्द्रसमःप्रकाशते

कुछ लोगों का मत है कि अपने पूर्व वैभव की कथाएं कहना व्यर्थ है वर्तमान की बातें करो। पर यह लोग नहीं समझते कि पूर्व वैभव की कथाएं सारे काम करने को उत्साहित करती हैं। जिनका पुराना समय असभ्यता में बीता हो वे पुरानी बातें नहीं कह सकते। पुरातन की स्मृति आगे के उद्योग करने को तडप उत्पन्न करती है। इसलिए स्वामी जी ने पुरातन वैभव के गौरव की स्मृति करायी है। स्वामी जी का दृढ़ विचार है कि अवनति का कारण अन्धविश्वास है अतः उनका वे प्रबल खण्डन करते हैं। विज्ञान के, कला कौशल के, यन्त्र साधन के नये प्रकाश में आर्य जाति को लाना चाहते हैं। अतः उन्होंने इस भ्रान्ति का खण्डन किया कि पहले अस्त्र देवताओं के मन्दिरों से चलते थे स्वामी जी का यह विचार आज सभी स्वीकार कर रहे हैं। वह जादू-टोने, मन्त्र तन्त्र के अन्ध विश्वास आज शिक्षित जगत् में कोई नहीं मान सकता, भारत और उसकी संस्कृति तथा धर्म की प्रशंसा करने वाले जिन फ्रान्सीसि श्री जयकालीयट महोदय का नाम श्री स्वामी जी ने "सत्यार्थ प्रकाश" में लिखा है वह महाशय संस्कृत के भी विद्वान् थे इनकी लिखी 'बाइबिल इन इण्डिया' का अनुवाद "भारत में बाइबिल" नाम से सन्तराम जी ने किया है उसमें लिखा है :—

प्राचीन ब्राह्मणों के विषय में कैथोलिक पादरी "इवाइन" की सम्मति सुनिए। इस पर पक्षपात का सन्देह नहीं कर सकते।

१. "न्याय, मनुष्यता की, उत्तम श्रद्धा, अनुकम्पा, निरपेक्षिता इत्यादि सारे सद्गुणों से वे सुपरिचित थे। वे अपने आचरण और कथन द्वारा उनके "गुणों की" शिक्षा देते थे इसलिए हिन्दू कम से कम चिन्ता की रीति से नीति के प्रायः उन्हीं सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं जिनको स्वयं हम करते हैं।

२. "भारत वर्ष संसार का जन्म स्थान है, यहीं से हम सबकी साझे की माता ने दूर तक पश्चिम में भेजकर हमारे उत्पत्ति स्थान के अक्षय प्रमाण के

रूप में अपनी भाषा, अपनी रीति, अपने सदाचार और साहित्य और अपने धर्म का उत्तराधिकार हमको दिया है"।

अब जैकालियट साहब आर्य जाति की अवनति का कारण भी बताते हैं :—

"मैंने उन ब्राह्मणों और पुरोहितों को देखा जो वाणी और पवित्र क्रियाओं द्वारा राजा लोगों की स्वेच्छाचारिता को याजकीय सहायता दे रहे थे और अपने मूल तत्व को भूलकर "पुरोहितशाही" के नीचे भारत का गला घोट रहे थे"।

यह सम्मति स्वामी जी के इस विचार से पूरी मिलती है :—

"पुनः यह पोप लोग पौराणिक ब्राह्मण अपने चरणों की पुजा कराने लगे और कहने लगे कि इसी में तुम्हारा कल्याण है। जब यह लोग इनके वश में हो गये तब प्रमाद और विषयासक्ति में निमग्न होकर गडरिये के समान झूठे गुरू और चेले फंसे। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरतादि शुभ गुण सब नष्ट होते चले गये"।

भारत की अवनति का कारण दोनों की सम्मति में पुरोहित वर्ग का स्वार्थी हो जाना था।

जैकालीयट साहब लिखते हैं :—

"एक बात मुझे सदा आश्चर्य में डालती है कि हमारे विचार को, हमारे नीतिकारों और हमारे व्यवस्थापकों ने किन ग्रन्थों के अध्ययन से अपने को बनाया। परन्तु मिश्र के मेनी, मूसा, मिनोस, सुकरात, अफलातुन और अरस्तु के अग्रगामी कौन थे"?

कम से कम ऐशा का अग्रगामी और पथ प्रदर्शक कौन था।

जैकालियट महोदय ने तर्क और आचरणपूर्वक सिद्ध किया है कि इन सब के ज्ञान का मूलाधार था वैदिक साहित्य।

हमने भी एक वार एक मुस्लिम विचारक विद्वान् से पूछा कि हजरत आदम से लेकर हजरत मूसा तक ईश्वर की कौन सी किताब कानून के रूप में थी? तो वह बहुत सोचकर बोले कि हजरत आदम दस सहीफे अल्लाह से लाये थे जोकि सुरमानी जुबान में थे और अब लापता हो गये। वे कानून उस वक्त थे। मैंने उन्हें बताया कि वे दस सहीफे हैं ऋग्वेद के दश मण्डल जो सुरमानी (सुरवाणी) देववाणी में हैं, और हमारे पास सुरक्षित हैं। वह मुस्लिम विद्वान् प्रसन्न होकर बोले ठीक है। वेद की इलहामी किताबें हैं, हमें उनकी कदर करवी चाहिये।

स्वामी जी का आधार वेद लगभग सर्वमान्य है, अब आगे स्वामी जी पहले वाम मार्ग का वर्णन करते हैं :—

शराब, मांस, मछली, मुद्रा (एक प्रकार की रोटी) और मैथुन (स्त्री सम्भोग) को ही इस मत ने प्रधानता दी, और देश को विषयों का घर बनाकर रख दिया।

कुछ विद्वान् कहते हैं कि स्वामी जी वाममार्ग को समझे ही नहीं। मद्य, मांस, मैथुन ये सब अलंकार मात्र हैं, परोक्ष तात्पर्य कुछ और था। ऐसे भ्रान्त संतोषियों से हम कह सकते हैं कि ये कल्पनायें तो तुम कर रहे हो, वाममार्गी आज भी हैं वे इनका आशय क्या लेते हैं ? वे वही करते हैं, और समझते हैं जो श्री स्वामी जी ने लिखा है, आसाम, उत्तरी पहाड़ और राजस्थान में आज भी वाममार्गी हैं और वही भ्रष्टाचार कर रहे हैं। एक बार जयपुर में हम से एक विद्यार्थी ने जो बी० ए० में पढ़ता था पूछा कि यदि बुजुर्ग दुराचारी हों तो उसे मार डालने में क्या दोष है ? मैंने कहा उसे सुधारो तो अधिक अच्छा है। उसने कहा कि मेरे गांव में भैरवीचक्र चलता है, उसमें मेरी बहिन से मेरे ताऊ ने भोग किया, मैं उसे मार डालना चाहता हूं। तब मैंने उसे समझाया कि जिस अज्ञान में पड़कर उसने यह पाप किया है उस अज्ञान (वाममार्ग) का नाश करो, अपने गांव में सत्यार्थ प्रकाश पढ़-पढ़कर सुनाओ, समाज का प्रचार कराओ, वह मान गया और सत्यार्थ प्रकाश मोल ले आया। आज भी आर्यसमाज के प्रबलतम प्रचार की आवश्यकता है।

वाममार्ग के प्रचार से देश की बहुत हानि हुई। वाममार्ग शैवों में भी घुस गया और बौद्धों में भी। प्रसिद्ध विद्वान् नागार्जुन वाममार्गी बौद्ध था। केवल वैष्णव मत वाले इससे बचे रहे; किन्तु श्रीकृष्ण महाराज की रंगरेलियों की कथाओं ने इनमें भी व्यभिचार-लीलाएं फैला दीं। श्री बैंकटेश नारायण तिवारी जोकि उत्तर प्रदेश की सरकार में श्री चिन्तामणि जी के सचिव थे, उनके लेख सरस्वती मासिक पत्रिका में छपे थे। उन्होंने लिखा था कि हिन्दी के कवियों ने श्रीकृष्ण भगवान् के विषय में 'मनिहारी लीला' आदि कवितायें लिखकर अपने दिलों की अय्याशी की भड़ासी निकाली है। 'वन्दे मातरम्' गीत के निर्माता बंकिम चन्द्र चटर्जी ने लिखा है कि महाभारत के कृष्ण को तो मान सकता हूं पर गीत गोविन्द के कृष्ण को नहीं। कृष्ण भगवान् के विषय में श्री स्वामी जी लिखते हैं :—

देश की धर्म नाम पर बुराइयों में फंसने के कारण ये मतवाले हैं। अत: स्वामी जी ने इन मत वालों को सत्यार्थ प्रकाश में फटकारें बताई हैं। स्वामी जी की कठोरता इनके सुधार के लिये ही है। इन मतों के गुरुओं ने भारत को इतना विघटित कर दिया था और राजनैतिक बुद्धि का विकास हर लिया था कि महमूद के आक्रमण होते रहे और मन्दिर लुटते रहे, किन्तु बौद्धिक,

वैष्णव, शैव सब मिलकर उसका सामना न कर सके। यदि सब मिलकर उससे लड़ते तो उसे धूल में मिला सकते थे। ये सब अपने-अपने देवताओं को मनाते रहे और कलापूर्ण मन्दिर, धन सम्पत्ति और नारियों का सम्मान नष्ट होता रहा। इस दु:खद इतिहास को देखकर स्वामी जी ने मतवादों से हटकर, एक वैदिक-धर्म में सब आर्यजाति आये और संगठित होकर काम करे, यह ग्यारहवें समुल्लास में सब मतों का विवेचन किया है।

स्वामी जी पर जो लोग यह दोष लगाते हैं कि स्वामी जी ने सब मतों का खण्डन करके द्वेष का प्रचार किया है, ये वे लोग हैं जिन्होंने भारतीय साहित्य का कभी भी दर्शन नहीं किया है। मान्यवर श्री शंकराचार्य जी ने अपने समय के जैन, बौद्ध, पाशुपत आर्यमतों का खण्डन किया है। जैन विद्वान् हेमचन्द्र सूरि ने सब वैदिक दर्शनों के खण्डन में एक बड़ा ग्रन्थ 'आप्त-परीक्षा' लिखा है। बौद्ध विद्वान् सुबन्धु ने अपने ग्रन्थों में वैदिक, जैन इन सब दर्शनों का खण्डन किया है। बुद्धिवाद तर्क से परीक्षण यह आर्य जाति की परम्परा रही है। बुद्धि की गतियों को आर्यों ने कभी नहीं रोका। बुद्धि के विकास को स्वतन्त्रता सदा दी। इससे बौद्धिक उन्नति हुई। निरुक्त ने मनुष्य की निरुक्ति ही की है :—

"मन्त्वा कर्माणि सीव्यतीति मनुष्य:"

जो काम को मनन करके करे वह है मनुष्य। अब यह देखो कि श्री स्वामी जी ने खण्डन किनका किया है। जो लोग ऋषियों की मान्यताओं का, वेदों का खण्डन कर रहे थे, उनका खण्डन करना, वैदिक धर्मी स्वामी जी का आवश्यक कर्तव्य था वा नहीं ?

जो लोग अपने मतों को ऊपर रखकर वैदिक विधानों को दबा रहे थे, जिन्होंने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये गुरुडम के दम्भ को उभारकर 'उपनिषद्' और 'वेदों' को पढ़ने-पढ़ाने से जनता को दूर कर दिया था, उनके विचारों का खण्डन दृढ़ वेद-विश्वासी, ऋषिभक्त स्वामी दयानन्द क्यों न करता ? पौराणिक जो वेदों को ऊपर से मानकर भी, अन्दर ही अन्दर, वेदों से जनता को दूर कर रहे थे, उनके ढोंग की पोल स्वामी जी क्यों न खोलते ? महात्मा गान्धी का सदा ही प्रयत्न रहा कि किसी भी मूल्य पर मुसलमान उनसे एकबार प्रसन्न हो जायें। इसीलिये अराष्ट्रिय और घोर साम्प्रदायिक खिलाफत आन्दोलन चलाकर हिन्दुओं का लाखों रुपया नष्ट किया और सहस्रों हिन्दुओं को जेल भेजकर उनका समय बरबाद किया। उस बेहूदे आक्रमण का फल निकला—'मोपला-विद्रोह'। इसमें 'मलावार' में सहस्रों हिन्दू मारे गये। लाखों का माल हिन्दुओं का लुटा। और सहस्रों स्त्रियों का सतीत्त्व नष्ट हुआ। किन्तु महात्मा जी जीवन भर मुसलमानों की मनौती करते रहे। मुसलमानों

को प्रसन्न करने के लिये उन्होंने श्री स्वामीजी को असहिष्णु, क्रोधी तथा और भी अनेक अनुचित शब्द लिखे। सत्यार्थ प्रकाश की, आर्यसमाज की भरपेट बुराई की। परन्तु आर्यसमाज ने सहनशीलता का उत्तम प्रमाण दिया। महात्मा जी के आरोपों का युक्ति प्रमाण सहित उत्तर स्पष्ट भाषा में दिया। और महात्मा जी की प्रतिष्ठा आर्य लोग यथापूर्ण करते रहे। उस समय हिन्दी के महाकवि 'शंकर' ने एक कविता लिखी थी :—

"शंकर शृंगाल डरपोक कहें केसरी को,
केंचुआ प्रसिद्ध करें, फँचुआ फणीश को।
मोती का घटावै मान, बदरी कनौड़ी कौड़ी,
गोपद का गर्त गिनै, छोहिया नदीश को।
भौंरे को न मानें, गुबरीला मकरन्द ग्राही,
तेज हीन जुगनू बतावें रजनीश को,
ऐसा यदि हो सकै तो गांधी जी बताते रहे,
क्रोधी, असहिष्णु, दयानन्द से मुनीश को"।

स्वामी जी ने, साधु और ब्राह्मणों की प्रशंसा भी की है और उनमें जो वंचक थे, उनको फटकारा भी है।

"देखो जो कोई भी उत्तम ब्राह्मण वा साधु न होता तो वेदादि सत्य शास्त्रों के पुस्तक स्वर सहित का पठन-पाठन, जैन, मुसलमान, ईसाई आदि के जाल से बचाकर आर्यों को वेदादि शास्त्रों में प्रीतियुक्त वर्णाश्रमों में रखना, ऐसा कौन कर सकता, सिवाय ब्राह्मण साधुओं के (विषादप्यमृतम् ग्राह्यम्) (मनु० २·२३९) विष से भी अमृत ग्रहण करने के समान पोपलीला से बहकाने से भी आर्यों का, जैन आदिमतों से बचे रहना, जानो विष में अमृत के समान गुण समझना चाहिये"। स्वामी जी की यह पंक्तियां बता रही हैं कि स्वामी जी ने कितना सूक्ष्म विवेचन किया है। पौराणिक मतों का खण्डन करते हुये उनकी उपयोगिता को भी स्वीकार किया है।

अब आगे वाम-मार्गी, शैव, वैष्णव आदि मतों की आलोचना करते हुए श्री स्वामी जी ने यज्ञों में पशु हिंसा को अशास्त्रीय, अवैदिक और निन्द्य काम बताया है। अश्वमेध और गोमेध में पशु-वध के वर्णन को, "वाम-मार्गियों ने प्रक्षेप किया है" (स० प्र०) ऐसा ठहराया है।

"राष्ट्रं वा अश्वमेधः" शतपथ ३।१।६।३

"अन्नं हि गौः" शतपथ ४।३।१।२५

अग्निर्वा अश्वः, आज्यम् मेधः आदि शतपथ के वाक्यों से भाव निकाला है कि "न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे विद्यादि देनेहारा यजमान और अग्नि

में घी आदि का होम करना अश्वमेध है।

अन्न, इन्द्रियां, किरणें, पृथ्वी, आदि को पवित्र रखना गोमेध है। (स० प्र०)

अब अश्वमेध और गोमेध का थोड़ा विवेचन देखिये :—

वाममार्गियों ने जनता को भोग-विलासों में फांसा, तो बौद्ध जैनमतों ने विरक्ति के भाव जाति में भरे। वैष्णवों ने मद्य, मांसादि से तो बचाया, किन्तु कृष्ण लीलाओं में लगाकर गुरुडम फैलाकर, और भक्ति मार्ग का प्रचार करके, कर्मवाद से शिथिल बनाकर जाति को निर्बल बना दिया। और भिन्न-भिन्न मतों में बंट जाने से संगठनशक्ति नष्ट हो गई। सैकड़ों सम्प्रदाय, सैकड़ों जातियां और इस प्रकार राष्ट्र के टुकड़े हो गये। श्री स्वामी शंकराचार्य ने काम फिर सम्भाला। भारत के चारों कोनों में मठ स्थापित किये और अपने भाष्य में सब मतों का खण्डन भी किया। सबको वेद ही प्रमाण है, यह भी शिक्षा दी, किन्तु इनके अनुयायी भी गुरुडम के शिकार हो गये। अद्वैतवाद का प्रचार एक मृत नारा था। आलसी निकम्मा जैसे जाति को बौद्ध ने बनाया वैसा ही अद्वैत वादियों ने भी। अपने-अपने सम्प्रदाय की बढ़ाई करने में सब लगे थे, किन्तु राष्ट्रीय एकता की ओर किसी का भी ध्यान न था। मूर्तिपूजा ने, मन्दिरों ने, तीर्थों ने जाति का सब धन, समय और विद्या, पुरुषार्थ दम्भों में लगा रखा था। उस समय के इतिहास को पढ़कर रोना आता है। मौलाना सुलेमान नदवी साहब ने एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है, "भारत और अरब के पुराने सम्बन्ध"। इसमें वह लिखते हैं कि जब अरब ने भारत पर आक्रमण किया तो बौद्ध मत वालों ने चुप-चुप अरबों की सहायता की। और सिन्ध के इतिहास में मुसलमानों ने लिखा है कि —पहली मुठभेड़ में तो मुहम्मद-बिन-कासीम के पाँव उखड़ गये थे किन्तु बौद्ध मत के साधुओं ने मुहम्मद बिन कासिम को बताया कि यदि वह देवल के मन्दिर का झण्डा तोड़ दे तो दाहिर की सेना भाग जायेगी, क्योंकि इनका विश्वास है कि जिस दिन यह झन्डा गिर जायेगा उसी दिन हिन्दू राष्ट्र नष्ट हो जायेगा। बस इब्ने मुहम्मद कासिम ने मन्जनीक से तीन पत्थर मारे तो झन्डा टूट गया। हिन्दू सेना भाग निकली। (पढ़ो —हीराचन्द्र गौरीशंकर का लिखा राजस्थान का इतिहास) एक अन्ध विश्वास के कारण हिन्दू हारे। अब जब मुहम्मद बिन कासिम सिन्ध का शासक बन गया तो उसने ब्राह्मणों और बौद्धों को बुलाया और उनके धर्म के विषय में प्रश्न किये। ब्राह्मणों ने कहा —हमारी धर्म-पुस्तक, ईश्वरीय ज्ञान (इलहाम) वेद है, और हम एक ब्रह्म को ही संसार का रचयिता, पालक और प्रलयकर्त्ता मानते हैं। मुहम्मद कासिम ने कहा तो तुम मसावी (समान) हो इस्लाम के, बस जजिया दो और रहो। जब बौद्धों से पूछा तो उन्होंने कहा हम बुद्ध भगवान् के सिवा कोई ईश्वर ब्रह्म आदि को

नहीं मानते और न इलहाम (ईश्वरीय ज्ञान) को मानतेहैं। इस पर मुहम्मद कासिम ने कहा :—तुम काफिर हो, मुसलमान बनो या मुल्क छोड़ो, या कत्ल होओ। बस डर से सब बौद्ध मुसलमान बन गये। कुछ पक्के विश्वासी मारे भी गये। अब वे लोग (बुद्ध पुजारी) जिन्होंने मु० इ० कासिम की गुप्त सहायता की थी, अपना इनाम (पुरस्कार) माँगनेपहुंचे। मु० इ० कासिम ने सिपाहियों से कहा कि इनको बाहर ले जाकर कत्ल कर दो। वे बोले—लेकिन हमने तो आपकी सहायता की थी और यह कैसा इनाम? तो कासिम ने कहा कि जो लोग अपने मुल्क वालों से गद्दारी कर सकते हैं वे हमारे बफादार कभी नहीं हो सकते। जाओ कत्ल होओ। बस वे मार दिये गये। साम्प्रदायिकता में पड़कर देशद्रोह करने वालों की यह दशा होनी ही चाहिए।

सिन्ध के जाटों ने अरबों को निकालने का जब इरादा किया तो उन्हें काका नाम से प्रसिद्ध एक ज्योतिषी ने ग्रहों से डराकर रोक दिया। ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने यहां जाट वीरों की बुरी दशा बना रखी थी। जातिभेद की भ्रान्ति ने ब्राह्मणों और राजपूतों के अतिरिक्त सबको हीन बना रखा था। लाखों जाट, अहीर, गूजर, कुर्मी आदि क्षत्रिय जातियों को इन पोंगापन्थी गुरुओं ने आत्महीन बना कर रखा था। सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि—छत्रपति शिवाजी जैसे वीर को ब्राह्मण जनेऊ देना नहीं चाहते थे। मराठा जैसी वीर जाति को शूद्र बताया जाता था। जब अरबों ने मुलतान के 'सूर्य-मन्दिर' पर आक्रमण किया और मूर्ति तोड़ी तो इसलिये नहीं कि उसके चढ़ावे से लाखों रुपये की आय होती थी परन्तु गोमाँस के लोथड़े मूर्ति के गले में लटकाकर उन्हें भ्रष्ट कर डाला (पढ़ो अलबरुनी का लिखा अलहिन्द)। फिर महमूद ने इस मन्दिर को तोड़कर मस्जिद बना दी थी। मुलतान पर आक्रमण के समय हिन्दू सेनाओ ने चारों ओर से अरबों को घेर लिया तो अरब सेनापति ने कहा कि यदि हमें मारोगे तो हम तुम्हारी मूर्ति के नाक-कान तोड़ देंगे। इस पर हिन्द सेनाओं ने अरबों पर तीर नहीं चलाये और अरब कुशलपूर्वक सिन्ध को लौट गये। पुनः भारी सेना लेकर आये और मन्दिर पर अधिकार जमा लिया। यह दुर्दशा क्यों हुई? अन्ध-विश्वासों के कारण। महमूद के आक्रमण मथुरा पर होते रहे और आसपास के हिन्दू राजा चुपचाप बैठे रहे। अलबरुनी ने लिखा है कि धारा नगरी का राजा भोज महमूद का समकालिक था। किन्तु शोक है कि भोजदेव जी रसभरी कविताओं में लीन रहे। इब्नबतूता ने लिखा है (समय अलाउद्दीन खिलजी का) कि सैकड़ों जटाजूटधारी नंगे साधु घूमते रहते थे और वे योग के चमत्कार जानते थे।

शक्तियाँ बहुत थीं किन्तु बिखरी हुई पड़ी थी। कोई संग्रह करने वाला

नहीं था। ब्राह्मण मतवाद में मस्त थे। क्षत्रिय विलासिता में लीन थे। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध सभी स्वर्ग के टिकट जनता को बांट रहे थे और देश नरकधाम बनता जा रहा था। उस समय का वृत्तान्त पढ़कर रोष आता है। करोड़ों रुपयों के हीरे, रत्न, स्वर्ण रखने वाला सोमनाथ का मंदिर ध्वस्त हुआ, स्त्रियों का अपमान हुआ। सहस्रों पुरुष मारे गये। नर-नारी, दासी-दास बनाये गये। शोक! इस घटना पर ही दुःख के आंसू बहाते हुये ऋषि दयानन्द ने लिखा है :—"देखो! जितनी मूर्तियाँ है उतने शूरवीरों की यदि पूजा होती तो भी कितनी रक्षा होती"। लाखों रुपया पुजारियों, सेवकों, देवदासियों (नाचने वालियों) पर व्यय होता था। इतने रुपये से अच्छी सेना रक्खी जा सकती थी। किन्तु पुजारी अपने अज्ञान में मस्त थे। अनेक देवताओं के होने का, मूर्तियों को भगवान् समझने का, जलस्थानों को तीर्थ मानने का खण्डन, पौराणिक उपनिषद् भी कर रही है। पढ़ो :—

"तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान् काष्ठादिनिर्मितान्,
योगिनो न प्रपूजन्ति, स्वात्म प्रत्यय कारणात्"।

जलों से भरे स्थानों को तीर्थ मानकर और काष्ठ पत्थर आदि से बनी मूर्ति को देवता मानकर योगी उनकी पूजा नहीं करते। अपने आत्मज्ञान के प्रत्यय (विश्वास) होने के कारण।

(जाबाल दर्शन उपनिषद् खण्ड ४ श्लोक ५२)

"तीर्थे, दाने, जपे, यज्ञे, काष्ठे, पाषाणके सदा
शिवं पश्यति मूढात्मा, शिवो देहे प्रतिष्ठते।५७।

अर्थ—तीर्थ, दान, जप, यज्ञ और काष्ठ, पत्थर की मूर्तियों में मूर्ख लोग शिव को समझते हैं, शिव तो देह में ही प्रतिष्ठित है अर्थात् व्यापक है।

"शिवमात्मनि पश्यन्ति, प्रतिमासु न योगिनः,
अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिताः"।५९।

योगी लोग शिव को आत्मा में देखते हैं मूर्तियों में नहीं। मूर्खों की भावनाओं के लिये मूर्तियां कल्पित की गई हैं। ईश्वर को आत्मा में देखा जा सकता है। मूर्ति पूजा मूर्खता है। यही तो स्वामी दयानन्द कह गये हैं। पौराणिक प्रपञ्च के समर्थकों देखो आँखें खोलकर—शैव, उपनिषद्, हैरम्बोपनिषद् श्लोक ८।

"इन्द्रः स चन्द्र परमः परात्मा,
स एवसर्वो भुवनस्य साक्षी"।

श्लोक में हरि, विष्णु, इन्द्र, ब्रह्मा सब शंकर को ही बताया है। एक ही

तत्त्व के सब नाम हैं। मत वालों ! अब तो समझो ! ऋषि दयानन्द वही कह रहा है जो पूर्वज्ञानी जन कहते रहे हैं। स्वामी जी की बात ही वस्तुत: सनातन धर्म है।

ये सब मत वाले मूर्तिपूजक हैं और मूर्तियों में पृथक्-पृथक् चेतन देवताओं को मानते हैं और चेतनवत् इन जड़ वस्तुओं की सेवा करते हैं। और आर्य-समाज इस अन्धविश्वास का खण्डन करता है। और इसे अवैदिक कार्य बताता है। अत: ये सब मिलकर आर्यसमाज का विरोध करते हैं। बाकी इनके पास सनातन धर्म नाम की कोई शिक्षा नहीं है। सनातन धर्म तो केवल वैदिक-धर्म है। जिसकी शिक्षा स्वामी जी ने दी है। वे मतवाले आपस से एक सा विचार और विश्वास नहीं रखते। शैव मानते है कि श्री राम ने रामेश्वरम् मे शिव-लिंग की स्थापना करके उसका पूजन किया, किन्तु वैष्णव इसे झूठ मानते हैं। श्री रंग जी के मन्दिर में रामानुजियों का इस विषय पर शास्त्रार्थ भी हो चुका है। श्री लक्ष्मी नारायण जी अमरोहा में कट्टर सनातन धर्मी रामानुजी पंडित ने अपनी पुस्तक में यह लिखा है। और अन्य भी कई वैष्णवों ने गोस्वामी तुलसी-दास जी की लिखी इस विषय की चौपाइयों को क्षेपक बताया है। किन्तु हमारा विचार है कि यह शिवलिंग स्थापना वाली घटना श्री गोस्वामी जी ने ही लिखी है, शैवों को प्रसन्न करने के लिये। वे शिव और विष्णु को एक करना चाहते थे किन्तु मानते थे उन्हें अलग-अलग ही देवता। यह तो आर्य बुद्धि की सूझ स्वामी दयानन्द की ही थी। उन्हीं ने सब नाम एक परमेश्वर के ही सिद्ध करके सप्रमाण दिखा दिये। श्री राम ने कभी भी मूर्तिपूजा की हो ऐसा प्रमाण वाल्मीकि रामायण में कोई पण्डित नहीं दिखा सकता और श्रीकृष्ण योगिराज ने कभी मूर्तिपूजा की हो ऐसा श्रीमद्भागवत में कहीं नहीं मिलता। महाभारत में तीर्थों के नाम आये हैं किन्तु रामेश्वरम् और जगन्नाथ मन्दिर का कहीं पता नहीं। सिद्ध होता है कि महाभारत काल तक ये मन्दिर नहीं थे। श्री स्वामी जी ने अकाट्यत तर्कों से मूर्तिपूजा का खण्डन किया है और उत्तर में श्री स्वामी जी के तर्कों का पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र मुरादाबादी और पं० अखिलानन्द जी ने ऊटपटांग खण्डन तो किया है परन्तु कोई भी पण्डित आज तक मूर्तिपूजा को वेदों में नहीं हो सका। इसे वैदिक कर्मकांड भी सिद्ध न कर सका। मूर्तिपूजा अवैदिक है बना ऋषि दयानन्द ने इस पक्ष के विरुद्ध कोई भी पण्डित आर्ष-प्रमाण नहीं रख सका। माधवाचार्य नाम के पौराणिक पंडित ने एक ट्रैक्ट प्रकाशित किया :—"मूर्तिपूजा वैदिक है" इसमें शास्त्र ज्ञान से शून्य लोगों को भ्रम में डालने के लिये असंगत प्रमाण लिख डाले थे। हमने इसके खण्डन में तब एक पुस्तक लिखकर—"मूर्तिपूजा अवैदिक है" इसकी अप्रामाणिकता और धोखादेही का पर्दाफाश कर दिया और एक सहस्र के पुरस्कार की घोषणा कर दी :—श्री राम ने मूर्तिपूजा की है। इसका प्रमाण

वाल्मीकि रामायण में दिखाओ ! श्रीकृष्ण ने मूर्तिपूजा की है, इसका प्रमाण श्रीमद्भागवत में दिखाओ ! अब तक तो किसी ने साँस ली नहीं है। रुद्राक्ष की तुलसी की मालाओं का अनिवार्य रूप से धारण करना माथे पर भस्म वा ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाना वा भुजाओं पर चक्र के दाग लगवाना ये सब किसी भी आर्ष ग्रन्थ का विधान तो है नहीं। रामानुजी वैष्णवों ने अपने इस ढोंग के पक्ष में वेदमन्त्र तक प्रस्तुत कर डाले हैं किन्तु जब मन्त्रों का अर्थ देखा जाता है तो इन वैष्णवों के अन्ध विश्वासों से मन्त्रार्थ कोसों दूर रहते हैं। जैसे तांबे के शंख चक्र बनाकर उन्हें गरम पानी में खौलाकर रामानुजी लोग भुजाओं को दागते हैं और इस विधि के प्रमाण में यह वेदमन्त्र देते हैं :—

"पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते, प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्त तनूर्न तदामोऽश्नुते य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥

अर्थ सीधा-सादा है—हे वेदों के स्वामी आपका पवित्र तेज पुञ्ज संसार में फैला हुआ है। प्रभु है। हे स्वामी सब ओर से आप शरीरों में व्यापक हो किन्तु (अतप्त तनु:) जिसने (योगाग्नि में, ज्ञानाग्नि में, लोकहित की अग्नि में) शरीर को नहीं तपाया है (आम) कच्चा है अधूरा है, वह उस तेज को नहीं पाता। ब्रह्मानन्द के रस को नहीं चखता। जो उसे जान लेते हैं वे स्थिर रहते हैं। (मुक्ति प्राप्त करते हैं) अतप्ततनू: का अर्थ तो सीधा-सादा है। जिसने शरीर नहीं तपाया अर्थात् अल्पश्रुत है। योगाग्नि में नहीं तपा है वह "नतदश्नुते" उस पवित्र ब्रह्मानन्द को नहीं चख सकता। किन्तु इन रामा-नुजियों ने अर्थ कर डाला—जिसने शंख चक्र के दाग नहीं लगवाये हैं। इन चिन्हों से शरीर को नहीं तपाया है। पवित्रम् का अर्थ कर दिया है चक्र सुदर्शन।

वह कच्चा है, वह ब्रह्म के आनन्द को नहीं भोग सकता। यह सब प्रत्यक्ष के विरुद्ध है, सैकड़ों शंख चक्रांकित वैष्णव, महाभूत आचरण रहित भी फिरते हैं। महामूर्ख भी हैं, इन चिन्हों से क्या लाभ हुआ है। यह भी ईसाइयों के समान अन्ध-विश्वास ही है। ईसाईमत में बप्तिस्मा लेना स्वर्ग का टिकट मिल जाना है। सैकड़ों बप्तिस्मा प्राप्त ईसाई भी दुष्ट मिलते हैं। यीसू से जिसने स्वयं बप्तिस्मा पाया उस यहूदा ने ३० रुपये लेकर अपने गुरु यीसू को ही पकड़वा दिया। बाहरी चिन्ह तो साधारण हैं मुख्य तो मन को बुद्धि को शुद्ध करना है। वैष्णवों ने पवित्र का अर्थ सुदर्शन चक्र कर डाला जो किसी भी भाष्यकार ने नहीं किया है। अपने को वैदिक सिद्ध करने के लिये इन्होंने अर्थों में खूब खींचातानी की है। श्री रामानुजाचार्य जी ने वेदान्त दर्शन के भाष्य में अर्थों में खींचातानी की है। यही दशा शैवों की है। शैव, वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायों के प्रवर्त्तकों को वेदार्थ में खींचातानी इसलिये करनी

पड़ी कि ये लोग अपने मतों को वैदिक सिद्ध करना चाहते थे, जनता में अभी तक वेदों का सम्मान था। अत: उन्होंने अनर्थ कर डाले। उस समय की तो बात जाने दीजिये तब प्रैस नहीं था। इतनी पुस्तकें नहीं थीं। आजकल की बात देखिये। एक बड़े प्रसिद्ध पौराणिक पत्र ने वेदों में जगन्नाथ जी की मूर्ति सिद्ध कर डाली। पढ़िये :—

"अदो यद्दारु प्लवते सिंधोः पारि अपूरुषम्।
तदारभस्य दुर्हणो तेन गच्च परस्तरम् ।ऋ० १०।

यह जो कुदरती काठ समुद्र के किनारे तैर रहा है उसका संस्कार कर और उससे परली पार जा। इस मन्त्र का देवता है 'अलक्ष्मीघ्न' अर्थात् दरिद्रता को दूर करने वाला। सीधासादा अर्थ है कि जो स्वाभाविक काठ (गिरे हुये पेड़ों की लकड़ी) समुद्र के किनारे तैर रहा है इससे समझ लो कि काठ पानी में तर जाता है। अत: हे अभागे उससे कोई यान, नाव आदि बना और उससे समुद्र पार जाओ। भावार्थ है कि नौका, जहाज आदि से समुद्र पार तक जा, व्यापार कर और धन कमा। इससे ही अलक्ष्मी (गरीबी) नष्ट होगी। आचार्य सायण ने भी यह अर्थ स्वीकार किये हैं किन्तु साथ ही जगन्नाथ को और लाकर खड़ा किया है। मन्त्र में है प्लवते, तैर रहा है। जगन्नाथ की मूर्ति तैर कहां रही है। मन्त्र में है अपूरुषम्—(नेचुरल) जगन्नाथ की मूर्ति तो बढ़ई की बनाई हुई है। मन्त्र का अर्थ जगन्नाथपरक बिल्कुल नहीं होता। और जगन्नाथ से गरीबी भी दूर नहीं होती। समुद्री व्यापार में लगें। धन अवश्य बनायें।

दूसरा अर्थ ध्वन्यर्थ :—यह काठ अर्थात् मन जो भवसागर में तैर रहा है इसका संस्कार करो। और उसके द्वारा भवसागर पार हो जाओ। ऐसे सही अर्थों को छोड़कर पौराणिकों ने खींचातानी करके मन्त्र का अनर्थ कर डाला। और वेद को भी नवीन सिद्ध कर बैठे। जब वेद में जगन्नाथ मन्दिर का वर्णन है तो वेद उस मन्दिर के बाद बना और मन्दिर बना है श्रीकृष्ण और बलराम के स्वर्ग जाने के बाद। तो वेद आदि सृष्टि के नहीं रहे!

एक पौराणिक पण्डित ने मूर्तिपूजा सिद्ध करने के लिये अथर्ववेद का एक मन्त्र दिया :—

एहि अश्मानमातिष्ठ अश्मा भवतु ते तनूः।

हे ईश्वर आओ और इस पत्थर में ठहरो और यह पत्थर तुम्हारा शरीर रहे।

इस पर कपटाचार्य को यह नहीं सूझा कि अब वेद मन्त्र का अगला पद क्या कह रहा है :—

कृण्वन्तो विश्वेदेवाः आयुषे शरदः शतम्।

सब देवता तुम्हारी आयु सौ वर्ष की करें। कहो ! भगवान् के लिये यह आशीर्वाद सुसंगत है या नहीं ? भगवान् को देवता सौ वर्ष की आयु वाला बना सकते हैं। नहीं तो भगवान् शीघ्र मर जायेंगे। मूर्तिरूपी शरीर में चिरं जीवी होकर रहें, देवताओं की कृपा से सौ वर्ष जियें। मूर्ति पत्थर की ही नहीं होती, सोना चाँदी और पीतल की भी होती है। फिर पत्थर का ही प्रयोग क्यों किया गया। इन विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि यह मन्त्र मूर्तिपूजा पर नहीं लगता। तो फिर आचार्य सायण का भाष्य देखो, वे लिखते हैं "पुरोहित राजा से कहता है"—

आओ इस पत्थर की चौकी पर स्नान के लिये बैठो। तुम्हारा शरीर पत्थरसमअभेद्यर है। और सब देवता आपकी आयु सौ वर्ष की करें। यह पूरा सूक्त राजतिलक देने के समय का है, सब ही मन्त्रों का अर्थ राजतिलक में सुसंगत बैठ जाता है, और गुरुकुल से स्नातक बनकर निकलने वाले ब्रह्मचारी पर भी ठीक घटित हो जाता है। समावर्त्तन संस्कार के स्नान के समय कहा जाता है।

एक तिलकधारी पण्डित ने अथर्ववेद के एक मन्त्र का घोर अनर्थ किया है "ऋषीणां प्रस्तरोऽषि, आप ऋषियों में ऊंचे स्तर के हैं" गुरु से शिष्य कहता है किन्तु पण्डित जी ने इस मन्त्र पर पत्थर दे मारा 'तू ऋषियों का पत्थर है, अर्थात् मूर्ति। कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनवा जोड़ा। इस प्रकार ऋग्वेद के 'कृष्णं ते ' इस मन्त्र से श्रीकृष्णावतार का वर्णन वेद में ढूंढ निकाला है। इन पण्डितों की बुद्धि पर दया भी आती है और क्रोध भी। दया तो इनकी इस दशा पर आती है कि वेद में ये अपने मतवाद को पाने के लिये सिर पाँव एक कर रहे हैं पर इनकी कामना कल्पना मात्र रह जाती है। क्रोध इसलिये आता है कि ये अपने स्वार्थ के लिये अबोध जनता को अज्ञान में फंसा रहे हैं। जान बूझकर झूठे अर्थ करते हैं। इन सम्प्रदायों से भारत भ्रान्त होकर अपनी रक्षा में असमर्थ बन गया। श्री के० एम० मुन्शी ने अपने लिखे उपन्यास 'सोमनाथ' में लिखा है कि सोमनाथ के साथ ही उनकी पत्नी त्रिपुर सुन्दरी का मन्दिर था जिसमें देवी त्रिपुर सुन्दरी के सामने नव-दुर्गाओं के अवसर पर बालिकाओं की बलि दी जाती थी। और ये बालिकायें देशभर से यहाँ के साधु लोग चुरा कर लाते थे। ये मन्दिर नकुलीश सम्प्रदाय वालों के थे। ये लोग घोर वममार्गी थे सैकड़ों देव-दासियां यहां रहतीं थी। ये वेश्यायें मलिक काफूर जो अलाउद्दीन खिलजी का सेनापति बना, यहीं का कापूरिया नाम का तेली लड़का था। मन्दिर के दीपकों में तेल डालना इसका काम था फिर यह मुसलमान बना और इसने देवगिरि का कई बार विध्वंस किया, हिन्दुओं का घोर विरोधी था।

जाति-पाति की ऊंचता, नीचता, मूर्तिपूजा, देवताओं के अस्तित्व का अन्ध-विश्वास आदि ने हिन्दू राष्ट्र को नष्ट भ्रष्ट कर डाला।

वेदों में, उपनिषदों में, दर्शनों में ईश्वर सर्वव्यापक निराकार एकमेवाद्वितीय ही सिद्ध किया गया है (यजु० ३२वां, ४०वां अध्याय और आर्ष उपनिषद्) पुराणों में भी कहीं-कहीं रहस्योदघाटन कर दिये गये हैं। साकार शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र सबको एकमात्र ठहराया गया है। मूर्तिपूजा और मूर्ति कलाकृति में बड़ा अन्तर है। मूर्तिकला चित्रकला आर्यजाति की पुरानी परम्परा है। यह कला आर्यों की उदात्त भावना की, हृदय को कोमलता को प्रकट करती है। मूर्तियां और चित्र पहले ही भावाभिव्यक्ति के ही लिये बने थे और महापुरुषों की स्मृति के लिये भी। इनकी पूजा और प्राण प्रतिष्ठा का ढोंग वैष्णवों का गढ़ा हुआ है। यदि प्राण प्रतिष्ठा से मूर्ति में प्राण आ जाते हैं तो डाक्टर से जाँच कराई जाये कि क्या मूर्ति में धड़कन फड़कन है? मूर्ति और चित्रों को बनाना और रखना मुसलमानों में निषेध है परन्तु आर्यों में नहीं, मूर्ति और चित्र रहें केवल भावाभि व्यक्ति के लिये किन्तु जैसा पूजा प्रकार इन दम्भी पौराणिकों (वैष्णवों) ने चला रक्खा है, यह बन्द हो जाना चाहिये इन मूर्तियों के कारण ही अनेक तीर्थ करते जिन पर प्रतिवर्ष हिन्दुओं का करोड़ों रुपया व्यय हुआ है, इस तीर्थ के चक्कर में मुसलमान भी फंसे हैं। हज्ज में, ज्यारतों पर जाने में ये भी करोड़ों रुपया बरबाद करते हैं। विशेष स्थान रमणीक और देखने योग्य हो सकते हैं किन्तु पापहारक तो केवल ज्ञान ही हो सकता है। जल, पर्वत, वन नहीं। तीर्थों के निवासी भी पाप-लिप्त पाये जा सकते हैं और तीर्थों के बाहर के जन भी पुण्यात्मा देखे जा सकते हैं। तीर्थ जाने, हज्ज करने से यदि मन नहीं बदलता तो सब यात्रा व्यर्थ हैं, मन तो सत्संग, ज्ञान और अभ्यास से ही बदलता है। यथा :—

अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च सिध्यति।

हे अर्जुन! तुम ठीक कहते हो मन बड़ा चंचल है किन्तु ज्ञान द्वारा विषयों से, वैराग्य और उपासना द्वारा एकाग्रता का अभ्यास इसी से मन के विकार दूर होते हैं।

अभी एक पंडित जी ने, अपनी पुस्तक 'वेद में श्री कृष्ण जी का अवतार'' छांट निकाला है। मन्त्र यह है:—

कृष्णन्त एषः रुशतः ··· ···· ···

श्री पंडित जी लिखते हैं:— ऋग्वेद में भगवान् श्री कृष्ण जी को साक्षात् परमात्मा बताया हैं।

''हे भगवान् आपका स्वरूप दिव्य गुणों से युक्त है, आप ही का रूप सब-

का प्रलय करने वाला है आपकी ही ज्योति शरीरधारी अनेक जीवों में वर्तमान है आपकी ज्योति को हथकड़ी बेड़ी से जकड़ी हुई देवकी ने गर्भरूप में धारण किया और आप शीघ्र प्रकट होकर उनके पास से अलग हो गये।

ऐसा अर्थ करते हुए श्री पंडित जी की श्रद्धा पर हमें दया आती है। यह उन्होंने किसी पौराणिक पण्डित की पुस्तक से लिख मारा है। पूरे मन्त्र में कहीं देवकी का नाम नहीं है कृष्ण शब्द न सम्बोधन में है 'कृष्ण-म्' यह शब्द प्रथमान्त नपुंसक लिंग में 'एम' का विशेषण बनकर आया है यदि 'एम' शब्द का अर्थ किया जाए तो, पण्डित जी का किया हुआ अर्थ तीन काल में ठीक नहीं बैठ सकता, अब इस मन्त्र का अर्थ पौराणिकों के मान्य भाष्यकार श्री सायणाचार्य जी क्या करते हैं यह देखिए:—

हे अग्ने रुषतः रोचमानस्य 'ते' तव सम्बन्धित, अत्र 'एम' शब्देन गमन मार्ग उच्यते 'एम' वर्त्म 'कृष्णम्' कृष्ण वर्ण भवति।

'भाः' तव सम्बन्धिनी दीप्तिः (पुरः) पुरस्ताद्भवति। (चरिष्णु) चरणशीलं (अर्चिः) त्वदीयं तेजः (वपुषाम्) वपुष्मताम् तेजस्विनाम् ईत्यर्थः (एकमित्) मुख्यमेव भवति (यतः) यम् त्वाम् (अप्रवीतः) अनुपगताः यजमानाः (गर्भं) त्वज्जनन हेतुं (दधतेः) धारयन्ति खलु सत्यम् (सद्यश्चित्) सद्य एव (जातः) भवसि। इस मंत्र का देवता **अग्नि है।** मन्त्रों के ऊपर देवता लिखे होते हैं वे ही मन्त्रों का अर्थ बताते हैं। देवता मन्त्र का विषय होता है इस मंत्र का देवता कृष्ण, विष्णु तथा वासुदेव होता तो तुक बैठ भी जाता किन्तु अब तो इस मंत्र का सम्बन्ध कृष्णावतार से नहीं है। हिन्दी इस भाष्य की यह है—

''हे अग्ने! प्रकाशित हुए तेरा गमन मार्ग काले रंग का होता है। तेरी चमक आगे होती है तुम्हारा चलने वाला तेज शरीर धारियों के लिए मुख्य होता है। तुम्हें न पाने वाले यजमान तुम्हारे गर्भ अर्थात् तुम्हारे उत्पन्न होने के कारण रूप अरणि अर्थात् लकड़ी को धारण करते हैं तुम शीघ्र ही उत्पन्न होकर यजमान के दूत बनते हो।

यह अर्थ किसी आर्यसमाजी या किसी आधुनिक शिक्षा वाले का नहीं है, किन्तु सनातनियों के महामान्य श्री सायणाचार्य जी का किया हुआ है। एक-एक शब्द का अलग-अलग अर्थ इस भाष्य में है कहीं देवकी जी का पता नहीं लगता। न हथकड़ी बेड़ियों के लिए कोई शब्द है। श्री पंडित जी का अर्थ माना जावे, तो मानना पड़ेगा कि यह मन्त्र श्री कृष्ण के जन्म के पश्चात् बना। इस दशा में वेदवाणी अनादि कहां रही। यदि कहो, इस चतुर्युगी से पहले

कृष्णावतार का वर्णन है तो यह हेतु स्वयं प्रमाण की अपेक्षा रखता है, अतः इस समाधान में "साध्य सप्त हेत्वाभास बोध हुआ। वस्तुतः इस मन्त्र में कृष्णा-वतार की खोज सदा शृंग को ढूंढना है। ऐसे ही अंट शंट लेख अवतार वाद के प्रमाण में पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र मुरादाबादी ने लिख मारे हैं, यथा:—

'कुचरो गिरिष्ठाः' से वराह अवतार और नर सिंह अवतार गढ डाला कुचर पृथिवी पर विचरने वाले वराह जी। पृथिवी पर तो सब ही जीव विचरते हैं मछली और चिमगादड़ के अतिरिक्त तो फिर वराह जी कहां से आ गये "गिरिष्ठाः" पहाड़ पर रहने वाले नरसिंह जी पहाड़ पर तो लंगूर हाथी आदि भी रहते हैं। आर्यसमाज का और पौराणिकों का उलझा हुआ विवाद यही है कि अवतारवाद, मूर्तिपूजा की गंध मात्र भी वेदों उपनिषदों और दर्शनों में नहीं हैं किन्तु ये पौराणिक दावा करते हैं कि ये बातें वेद में हैं किन्तु दिखा आज तक नहीं पाये। अपढ़ और कम पढ़ों के लिए ऐसे असत्य प्रमाण लिख मारते हैं। जैन बौद्ध मत वेद में नहीं हैं। सिक्ख मत, राधा स्वामी मत वेद में नहीं हैं किन्तु आर्य जाति में चल रहे हैं ये वैष्णव, शैव, शाक्त भी कह दें कि वेद में हमारा पक्ष नहीं है पश्चात् अविष्कार किया है। उपासना को बढ़ाने के लिए अबोध जनता को संघटित करने के लिए आधा विवाद समाप्त हो जाये और वेद भी अनर्थ से बच जाये। किन्तु जानते बूझते हुए भी ये लोग ऐसे अनर्गल अर्थ करते रहते हैं।

इसी प्रकार श्री स्वामी जी ने भौगोलिक तीर्थों की आलोचना करी हैं। और उनके साथ जुड़ी हुई करामाती बातों की पोल खोली है। जगन्नाथ जी में भात रोटी पकना आदि। जगन्नाथ जी में झूठा खिलाने की भ्रष्ट परम्परा तो आज भी चालू है। मन्दिर में घोर अश्लील चित्र बने हुए हैं। पूज्य मालवीय जी ने पंडों से कहा था, कि मन्दिर पुनः बनवाया जाये और यह अश्लीलता दूर कर दी जाए। किन्तु पंडे माने नहीं। ये मूर्तियां और चित्र हिन्दू संस्कृति को कलंकित करते हैं, रीठा साहब जिला पीलीभीत में सिक्खों का तीर्थ है कहावत हैं कि कुल गुरु सात बनें प्रथम गुरु नानक जी ने कहा रीठा जो कड़वा होता है उसे मीठा कर दिया था वस्तुतः यहां श्री गुरु जी को मीठे रीठे का पेड़ मिल गया होगा, तो भक्तों ने इस बात को करामाती चमत्कार का रूप दे दिया।

सत्यार्थप्रकाश में रीठे की जगह मुरेठी कहा है जो अशुद्ध है। सत्यार्थ-प्रकाश में ऐसी सैकड़ों अशुद्धियां हैं किन्तु ध्यान दिलाने पर भी सभी छापने वालों ने ध्यान नहीं दिया। आंखें बन्द करके लाखों सत्यार्थ प्रकाश छापकर खूब रुपया कमा लिया। विद्वानों की यह सुनते नहीं। और जिन विद्वानों के नाम इन सत्यार्थ प्रकाशों में जुड़े हैं उन्हें नाम दे दिये है परिश्रम नहीं किया। मोटी सी अशुद्धि एक और है:—

सोमनाथ में जब पुजारियों ने महमूद से कहा कि रुपया ले लो पर मूर्ति
मत तोड़ो तो महमूद कहता है "मैं बुतपरस्त नहीं हूं" यहां शब्द होना चाहिये,
बुतफरोश नहीं हूं। बुतपरस्ती का तो प्रसंग ही नहीं था पुजारी। रुपया देकर
बचाना चाहते थे तो महमूद ने कहा कि मैं मूर्ति विक्रेता (बुतफरोश) नहीं हूं।
पर सत्यार्थ प्रकाश के संशोधकों को उर्दू का ज्ञान नहीं था और न सूक्ष्मता पर
विचार था।

तीर्थों के जिन चमत्कारों का स्वामी जी ने खण्डन किया है आज उन चमत्कारों को शिक्षित जन नहीं मानते, केवल मूर्खों की ऐसी मान्यता रह गई है। इन मतों की कड़ी आलोचना करते हुए भी श्री स्वामी जी ने इनकी प्रशंसा भी एक पंक्ति में करी है।

विषादप्यमृतं ग्राह्यम् (मनु २।२३९)

विष से भी अमृत ग्रहण करने के समान पोपलीला में भटकने से भी आर्यों का जैनादि मतों से बचे रहना मानो विष से अमृत के समान समझना चाहिये।

आज शिक्षा का बहुत प्रचार हो रहा है। सम्मेलन भी चल रहे हैं। यदि हिन्दुओं के ये मत जो अपने को वैदिक मानते हैं एक हो जायें तो आर्य धर्म का बड़ा लाभ हो और राष्ट्रीय शक्ति बड़ी दृढ़ हो जाये। श्री स्वामी जी का प्रयत्न एकांग के लिये ही था जैसा कि "इन्हीं मतवालों ने (श्लेषार्थ—पागलों ने) अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसाकर परस्पर शत्रु बना दिये हैं, इस बात को काट सब सत्य का प्रचार कर सबको एकमत में करा, रागद्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतिमुक्त कराके सबसे सबको सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है"। (स्वमन्तव्यामन्तव्य)

वैष्णवों के गोस्वामी सम्प्रदाय ने आर्य जाति में रंगरेलिया फैला दीं और वीरता की भावनायें नष्ट कर दीं। आजकल चले हुये हंसामत की भी यही दशा है। हंसा जी का बड़ा पुत्र जो अवतार बना हुआ था अब ईसाई होकर अमरीका में रहने लगा। एक मत सांई बाबा का चला है जो अपने को ईश्वर मानता है। इस वैज्ञानिक युग में भी अन्ध-विश्वासियों की कमी नहीं है। सांई बाबा की करामातें प्रसिद्ध हैं किन्तु जब बंगलौर के वैज्ञानिकों दे उसे चुनौती दी तो चुप बैठा रहा। भारत में कई मत ऐसे हैं जो विदेशियों से सहायता पाते हैं और देशद्रोह में लगे हुए हैं। ब्रह्माकुमारी मत भी अभी चला है। दादा लेखराज एक धनी सिन्धी था जिसे सिन्ध सरकार ने निकाल दिया तो उसने आकर भारत में आबू पर्वत पर अपना अड्डा बना लिया। उसने सहस्रों

लड़कियों का जीवन बरबाद कर डाला क्योंकि उसकी मूल शिक्षा यही हैं कि लड़कियां विवाह न करें ।

आनन्दमार्ग ने भी देश में हत्यायें करीं, अत्याचार फैलाया, अब इनका गुरु जेल से कई वर्ष बाद छूटा है । मतों के नाम पर देशद्रोह होता है । ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती गौरा का गुप्तचर था जिसे मूर्ख चौहान राजा ने नहीं समझा, समझता ही क्या पृथ्वीराज औरतों के जाल में फंसा रहता था । ख्वाजा का चेला बनकर मन्दिर के पुजारी का पुत्र और पृथ्वीराज की रंडी की लड़की, ये दोनों देशद्रोह पूर्ण सूचनायें ख्वाजा को देते रहे । सिन्ध में बौद्धों ने मुसलमानों को सूचनायें दीं ।

आज भी हिन्दुस्तान में तीर्थ स्थानों पर विदेशी, अमरीकन आदि कृष्ण-भक्त बनकर रह रहे हैं । बड़े गर्व की बात है । मथुरा में इन्होंने एक विशाल मन्दिर बनवाया है जिसमें भारतीय भक्तों की वेशभूषा में विदेशी रहते हैं । भारतीय संस्कृति के रंग से ओतप्रोत भावना से यहीं पर एक विशाल गुरुकुल की भी स्थापना इन्होंने की है । हम इस सबका हृदय से अभिनन्दन करते हैं, पर भारत सरकार से अनुरोध भी करते हैं कि वह देखे कि कहीं इन भक्तों और पुजारियों की आड़ में विदेशी कोई गुप्त खेल तो नहीं खेल रहे हैं, कदाचित् इन प्रच्छन्न जासूसों से भारत का बहुत बड़ा अनर्थ भी हो सकता है ।

स्वामी जी ने ठीक ही लिखा है कि मत विद्वेष के कारण एक दूसरे के शत्रु बन गये । मत व्यवहार की वस्तु नहीं केवल मानने की बात है । विद्या पढ़ने, श्रम करने, सत्य व्यवहार करने, न्याय युक्त रहने में सब की ही भलाई है, यह है धर्म का सिद्धान्त व्यास जी कहते हैं—

श्रूयताँ धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्

धर्म का निचोड़ (सार) यही है कि जो वस्तु तुम अपने लिए नहीं चाहते वह दूसरों के लिए मत करो ।

कोई नहीं चाहेगा कि उसका धन छीना जाए या उसकी स्त्री को दूषित किया जाय या उसको शारीरिक कष्ट पहुंचाया जाय अथवा उसके साथ असत्य का व्यवहार किया जाय तो उसे भी चाहिए कि वह दूसरों के साथ ऐसा न करे ।

ऐसा भद्र व्यवहार मानव मात्र करे कि जिससे एक दूसरे का हित हो सके किन्तु ईमामत वाले कहेंगे कि यदि वह यीसू की बातों पर जन्म, मरण और चमत्कारों पर विश्वास नहीं करता तो नरकगामी है । बुरा है । इस्लाम मत

कहता है यदि मनुष्य कितना भी नेक है परन्तु हजरत मोहम्मद की बात नहीं मानता तो बाजबुल कत्ल (वध के योग्य) है । इन मजहबों ने पुण्य कर्तव्यों पर बल न देकर केवल मनुष्यों को उनका मत मानने पर बल दिया है । सुन्नी मुसलमान हजरत अबूबकर, हजरत उमर, हजरत उमान और हजरत अलीइन चार खलीफाओं को मानते हैं । चारों की प्रशंसा करते हैं (मदह सहाबा पढ़ते हैं ।) और शिया उपर्युक्त प्रथम तीन की प्रशंसा करना पाप और निन्दा करना धिक्कार देना (तबर्रा पढ़ना) पुण्य समझते हैं इसी पर बैर है । लाखों मनुष्य दोनों और के मारे गये हैं । ईसाइयों में भी प्रोटेस्टेट और रोमन कैथोलिक का जरा-जरा से भेदों पर बैर हैं । और लाखों मनुष्यों का वध हुआ है और अब भी होता रहता है । हिन्दुओं के सम्प्रदायों में मार काट तो नहीं चलती किन्तु वैमनस्य तो बना ही रहता है । श्री स्वामी जी मतों पर बल न देकर कर्म पर बल देते हैं । सर्वमान्य सर्व हितकारी जैसे न्याय, सत्य, उपकार, दान आदि कार्यों को मुख्य ठहराते हैं । आर्यसमाज का दसवां (१०) नियम भी यही है ।

"सामाजिक सर्व हितकारी नियमों के पालने में परतन्त्र और प्रत्येक हित-कारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।"

यही नियम भारत के विधान का मूल है यहाँ अनेक मत, अनेक जातियां, अनेक प्रान्त हैं । किसकी बात माने; तो विधान ने सर्वहितकर बातों पर बल दिया और व्यक्तिगत, मतगत बातों को छोड़ दिया । ११ वें समुल्लास में तर्क-पूर्ण विवेचन करके अपने हिन्दु मतों की व्यर्थता सिद्ध की है ।

आगे स्वामी जी ने ब्रह्म समाजी जैसे सुधार वादियों की भी रगड़ करी है । ये लोग यूरोपीय सभ्यता से प्रभावित होकर आत्महीन बने, अपने सनातन नियमों को ठुकराने लगे थे । आत्म गौरव से रहित ऐसे व्यक्तियों को भी फटकारना ही था । स्वामी जी लिखते हैं—

और जो विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत और शिक्षा को छोड़ मुसलमान ईसाइयों के समान बैठना व्यर्थ है ।

जब पतलून आदि वस्त्र पहनते हो और नमगों (मैडिलों) की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ भार होता था ?

यज्ञोपवीत के तीन तार यह स्मरण कराने के लिये रहते हैं कि ज्ञान प्राप्त करो, ज्ञान के अनुसार कर्म भी करो और उपासना अवश्य करो । शिखा है ज्ञान-स्थान की रक्षा के लिये । अब ये दुर्बुद्धि नेता भी यज्ञोपवीत के विरोध

पर तुले हैं। कोई भी नेता खतने का विरोध नहीं कर पाता। यद्यपि खतना अवैज्ञानिक है। बुद्धि को हानि पहुंचाता है। पर मुसलमानों का इन्हें डर है। सरल चित्त हिन्दुओं का भय नहीं हैं। आगे श्री स्वामी जी ने "हरिश चन्द्र चन्द्रिका" और मोहन चन्द्रिका रवि नाम के पाक्षिक समाचार पत्रों में छपी हुई भारतीय राजाओं की वंशावली लिखी है। अब कुछ लोग इस वंशावली को सही नहीं मानते। इसमें कई फेर बदल मानते हैं। और यह केवल दिल्ली के बताती है। अन्य प्रदेशों के राजाओं को नहीं किन्तु श्री स्वामी जी ने तो एक राजओं को ज्ञान-वर्धक जानकर इसे लिखा है। इसके पूर्णसत्य होने न होने या अधूरी होनेकी जिम्मेदारी स्वामी जी की नहीं है। आज तो बड़े-बड़े इतिहासों में भी कमियाँ निकल रही है। इतिहास के तथ्यों का निर्णय करना बड़ा कठिन है।

✲ ✲ ✲

मांस खाने न खाने पर स्वामी जी का मत

सत्यार्थ प्रकाश में पढ़िए :—

१. "क्योंकि विना प्राणियों को पीड़ा दिए मांस प्राप्त नहीं होता और बिना कारण जीव को पीड़ा देना धर्म का काम नहीं। (११ समु०)

२. "और जो माँस का खाना लिखा है वह वेदभाष्य राक्षस का बनाया है।" (११ समु०)

३. प्रश्न —चारवाक का पक्ष

उत्तर—"वेदों में मांस खाना कहीं नहीं लिखा है।" (११ समु०)

४. हाँ, इतना कारण तो है कि जो लोग मांसभक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं। इसलिए उनके संग करने से आर्यों को भी यह कुलक्षण न लग जाये यह तो ठीक है परन्तु जब इससे व्यवहार गुण ग्रहण करने में कोई भी दोष व पाप नहीं है। किन्तु इनके मद्यपान आदि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं है। जब इनके स्पर्श व देखने से मूर्ख जन पाप गिनते हैं इसी से उनसे युद्ध कभी नहीं कर सकते, क्योंकि युद्ध में उनको देखना और स्पर्श होना आवश्यक है।"

अब जो लोग आर्यसमाज से जुड़े हैं और माँस भी खाते हैं वे स्वामी जी के आदेश के विरोधी हैं।

माँस मनुष्य के स्वभाव को काम-क्रोध से युक्त बना देता है। ज्ञान आदि को हानि पहुंचाता है। मांस-भक्षण से संसार भर के मांसाहारियों के जीवन का मिलान निरामिष-भोजियों से करके देख लो। यूरोप और अमेरिका के

बड़े-बड़े वैज्ञानिक, फिलासफर, और कवि लोग मांस नहीं खाते थे। मनुष्य सृष्टि-क्रमानुसार माँसाहारी प्राणी नहीं है। (१) मांसाहारी प्राणियों के बच्चे पैदा होने पर आंखे बन्द किये पैदा होते हैं। (२) माँसाहारी जीव जीभ से चपचप करके पानी पीते हैं, घूंट लेकर नहीं। (३) मांसाहारियों को श्रम करने पर पसीना जीभ से टपकता है, सब शरीर पर नहीं आता (४) मांसाहारी प्राणी भोग करने पर भोग के बाद घंटों जुड़े रहते हैं, कुत्ते-कुत्तियों को देखा ही होगा।

मनुष्य इनके विपरीत साग-पात खाने वाले गाय, घोड़े आदि के बच्चों के समान खुली आँखों वाला पैदा होता है। और पानी घूंट बांध कर पीता है, जैसे गाय घोड़े। पसीना पूरे शरीर को आता है, गाय घोड़े के समान। भोगोपरान्त जुड़ा नहीं रहता, घोड़े बैल के समान तत्काल पृथक् हो जाता है। घोड़े बैल बकरी आदि अपने नियम पर चल रहे हैं। घोड़ा बैल चाहे कई दिन का भूखा हो, मांस नहीं खायेगा। भूखा शेर, भेड़िया खेतों में लगे कद्दू, लौकी नहीं खायेंगे। किन्तु मनुष्य ने नियम तोड़कर माँस खाना प्रारम्भ कर दिया। कुत्ते बिल्ली ने भी तोड़ दिया है। 'मांस में वीरता की शक्ति है' यह भी झूठा प्रचार है। ब्रज के जाटों ने, दक्षिण के चितपावन ब्राह्मणों ने बड़े-बड़े वीरता के काम किए हैं। ये लोग मांसाहारी न थे। महारानी झाँसी का उदाहरण विद्यमान हैं। वीरता आती है विचारों से। शरीर शक्तिशाली बनता है सात्विक भोजन और सदाचार से।

विज्ञानादिभाव वा तदप्रतिषेधः

तथापि स्यान्न चैते संकर्षणादयो जीवादिभावे नाभिप्रेयन्ते किं तर्हीश्वरा एवैते सर्वे ज्ञानैर्भूयः शक्तिबल-वीर्यतेजोभिरीश्वरै धर्मान्विता अभ्युपगम्यते वासुदेवा एवैते सर्वे निर्दोषा निरधिष्ठाना निरवद्याश्चेति। तस्मान्नायं यथावर्णित उत्पत्त्यसंभवो दोषः प्राप्नोतीति। अत्रोच्यते एवमपि तदप्रतिषेध उत्पत्य संभवस्याप्रतिषेधः प्राप्नोत्येवायमुत्यन्तसंभवो दोषः प्रकारान्तरेणेत्यभिप्रायः। कथम्। यदि तावद् अयं अभिप्रायः—परस्परभिन्ना एवैते वासुदेवादयश्चत्वार ईश्वरास्तुल्यधर्माणो नैषामेकात्मकत्वमस्तीति त तोऽनेकेचर कल्पना ऽभिप्रयः एकेनैवेधरेणेश्वर कार्यसिद्धेः सिद्धान्तहानिश्च भगवानेवैको वासुदेवः परमार्थ तत्वमितश्यभ्युपगमात्। अभामर्मभि प्राय एका-त्रैव भगवते एते चत्वारो व्यूहास्तुल्यधर्माणि इति।

तथापि तदवस्थ एवैत्पत्यसंभवः नहि वसुदेवात्संकर्षणस्योत्मतिःत्त संभवति संकर्ष णाच्च प्रद्युम्नस्य प्रद्यु मन्नाच्यानिरुद्धस्य अतिशयाभावात् भवितयं हि कार्यं कारणमित्यवकल्पते। न च पक्षरात्र सिद्धान्त। भेवासु दैवादि एव तस्मिन सर्वेषु वा ज्ञोनैश्वर्यादितारतम्यकृतः काश्चदभेदो ऽभ्युपगम्यते। वासुदेवा एव हि सर्वे व्यूह्य निर्विशेषा इष्यन्ते। न चै ते भगवन्धहाश्चतुः संख्यायामे वाऽवतिष्ठेरन्

ब्रह्मादि स्व स्वपर्यन्तस्य समस्तमैव जगतो भगवदर्घहत्वाऽव गमात् ।।

७ पत्यधिकरणम् स० ३७-४१ पत्युरसामअस्यात् ।।३७।।

इदानीं केवलाथिष्ठानीश्वरकारणवादः प्रतिषिध्यते । तत्कथमवगम्यते । 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानु- परोघात्' 'अभिधोप देशाञ्च (बृ० १।४।२३२४) इत्यत्र प्रकृतिभावेनाधिष्ठात्भावेन चोभयस्वभावस्येश्वरस्य स्वयमेवाचार्येण प्रतिष्ठापितत्वतात् । यदि पुनर-विशेषणेश्वर कारणवादमात्रमिह प्रतिषिध्यते पूर्वोत्तर विरोधा घाह ताभिव्याहाराः सूत्रकार इत्येतदुप पद्येत । तस्मात् प्रकृतिर-धिष्ठाता केवलं निमित्तकारणमीश्वर इत्येष पक्षो वेदान्त विहित ब्रह्मैकत्व प्रतिपक्षत्वाद्यतेनात प्रतिषिध्यते । सा चेयं वेदवाह्श्वर कल्पनानेकप्रकार । केचित्तावत्सांख्ययोग व्यपाश्रयाः कल्पयन्ति प्रधानपुरुषेश्वरा इति । माहेश्वरास्तु मन्यन्ते कार्यकारण योग विधिदुःखान्ता पंच पदार्थाः पशुपतिनेश्वरेण पशुपाश विमोक्षणा-योपदिष्टाः पशुपतिरीश्वरो निमित्तकारणमिति वर्णयन्ति । तथा वैशेषिकादयोऽपि केचित्कथंचित्सवप्रक्रियानुसारेण निमित्तकारण-मीश्वर इति वर्णयन्ति । अत उत्तरमुच्यते पत्युरसामअस्यात् 'इति पत्युरीश्वरस्य प्रधानपुरुषयोरधिष्ठातृत्वेन जगत्कारणत्वं नोपपद्यते । कस्मात् असाम अस्यात् । किं पुनरसामंजस्य हीनमध्यमोत्तम भावेन हि प्राणिभेदान्वित ईश्वरस्य रागद्वेषादिदोष – प्रसक्तो स्मदा-दिवदनीश्वरत्वं प्रसज्येत ।

प्राणि कर्मापेक्षितत्वाददोष इति चेत् न । कार्येश्वरयोः प्रवर्त्य प्रवर्तयितृत्वे इतरेतराश्रयदोषप्रसंगात् । नानादित्वादितिचेत् न । वर्तमानकालवदिति तेण्वपि कालेण्वितरेतराश्रयदोषविशेषादन्ध परम्परान्यायादन्ते ।

अपिंच 'प्रवर्तनालक्षणा दोषाः (न्याय सू० १।१।१८) इति न्यायवित्समयः । नहि कश्चिददोषप्रयुक्तः स्वार्थे परार्थे वा प्रवर्तमानो

दृष्यन्ते । स्वार्थप्रयुक्त एव च सर्वो जनः परार्थेऽपि प्रवर्तत इत्येवमप्य-सामञ्जस्यं, स्वार्थवन्त्वादिश्वरस्यानीश्वरत्वप्रसंगात् । पुरुष विशेषत्वा-भ्युपगमाश्वेश्वरस्य पुरुषस्य चौदासीन्याभ्युपगमादसामंजस्यम् ।।

।। ३७ ।।

सूत्र ३० में पाशुपत (शैव) मत और सूत्र ४४ में वैष्णवों की सृष्टि विषयक कल्पना का खण्डन है। भाषा को स्थान बढ़ने के कारण अनावश्यक समझा है ।

राधास्वामी मत

११वें समुल्लास में राधास्वामी मत की आलोचना नहीं है। इस पर राधास्वामी मत के लोग बड़ा अभिमान करते हैं कि स्वामी जी हमारे मत का खंडन न कर सके। किन्तु जब श्री स्वामी जी का ग्रन्थ लिखा जा रहा था तब राधास्वामी मत प्रकट नहीं था। गुपचुप पन्नी गली में श्री मास्टर शिवध्यान सिंह जी सुरत शब्द योग का प्रचार विशेष-विशेष व्यक्तियों में करते थे। इनके गुरु हाथरस के श्री तुलसी स्वामी थे। राधास्वामी मत श्री कबीर साहब के सिद्धान्तों पर ही गढ़ा गया है। इसको मत, सम्प्रदाय का रूप दिया श्रीमान् राय बहादुर शालिग्राम साहब ने और फिर बढ़ाया सर आनन्द स्वरूप जी ने। 'श्रीमान् शालिग्राम साहब' 'हुजूर साहब' कहलाते थे। और 'सर आनन्द-स्वरूप जी' को 'साहब जी' कहा जाता था। इसके बाद राधास्वामी मत छिन्न-भिन्न हो गया। राधास्वामी की शाखा सत्पत् जोकि मुरादाबाद में श्री मुंशी देवीप्रसाद जी ने चला रखा था; वह भी मास्टर शिवध्यान सिंह जी के चेले थे। उनके शिष्य बाबा महीदास जी ने बिहार में इसका प्रचार किया और इस मत को सम्प्रदाय न कहकर योग की एक विधिमात्र बताया। अब भी वह चालू है। इधर पंजाब में निरंकारी मत चलाकर राधास्वामी मत की समाप्ति कर दी। अब राधास्वामी मत बिखर-सा गया है। राधास्वामीयों के सब ही गुरु हिन्दू धर्मग्रन्थों, वेद, उपनिषदों से वंचित थे। संस्कृत का एक फूटा अक्षर भी नहीं जानते थे पर हिन्दू को बुरा बताते रहते थे। श्री साहब जी ने सत्यार्थ-प्रकाश के खण्डन में एक पुस्तक लिखी 'यथार्थ प्रकाश''। इसका मुंहतोड़ उत्तर तो श्री मास्टर लक्ष्मीचन्द्र ने बहुत अच्छा दिया था पुस्तक लिखकर। इस 'यथार्थ प्रकाश' को कोई संस्कृत का विद्वान् पढ़े तो जो मनगढन्त बातें साहब जी ने वेदों के लिये लिखी हैं वह साहब जी की मूर्खता पर और दुःसाहस पर हंसेगा कि साहब जी ने अपने इस ग्रन्थ में यह स्वीकार कर लिया है कि राधास्वामी मत में गुरु की जूंठन खाना उचित माना गया है। "पीकदान लें, पीक करावें, सो पुनि पीक आप पी जावें"। गुरु जी पान खायें तो गुरु के थूकने के लिये चेला पीकदान लेकर गुरु के सामने रखे जब गुरु उसमें थूके तो उस थूकी हुई पीक को चेला पी ले।

श्री साहब जी ने इस घृणित कार्य को उत्तम बताया है। झूठा खाने से, उगलन पीने से गुरु की आध्यात्मिक शक्ति शिष्य में आ जायेगी। इस मूर्खतापूर्ण और आयुर्वेद तथा डॉक्टरी के विरुद्ध सिद्धान्त को लेकर राधास्वामियों में झूंठन खाने का खूब प्रचार हुआ। साहब जी के झूंठे चावल पार्सलों द्वारा चेलों के पास भेजे जाने लगे। हमारे एक रिश्तेदार भी इनके चेले थे। एक दिन हमारे पास भी प्रसाद रूप में चावल लाये तो हमने चावल कौओं को डाल दिये और इन्हें समझाया तो इन्होंने भी हमारी बात उचित मानी।

ऐसे मिथ्याविश्वासों के प्रचार से मनुष्य का आचरण गिर जाता है। राधास्वामी मत के कारण कोई योगी बना हो यह प्रमाण आज तक नहीं मिला। योग की सही विधि तो पातञ्जलदर्शन में ही मिलती है। शेष सब मिथ्या प्रचार है। कबीर जी का 'सुरत-शब्द-योग और 'अनाहतवाद' (अनहद बाजा) यह सब 'नादबिन्दु उपनिषद्' से लिये गये हैं। किन्तु अब सब ढंग राधास्वामियों ने बिगाड़ दिए।

इस मत का नाम संत श्री कबीर जी के इस दोहे पर रखा गया है :—

> "कबिरा धारा अगम की घर-घर रहे समाय।
> ताहि उलटि सुमिरन करो स्वामी संग मिलाये"।

अर्थात् अगम्य ब्रह्म की धारा; जो घर-घर में व्याप्त है उसे उलटकर अर्थात् ऊपर को प्राण खींचकर प्राणायाम विधि से ईश्वर का नाम जपो और यह धारा (प्राण) स्वामी के (ईश्वर के संग) मिलाओ!

धारा का उल्टा राधा होता है अतः राधास्वामी नाम अपने मत का रख लिया है। कबीर मत, राधास्वामी मत, इन सब में गुरु-सेवा ही मुख्य धर्म है। जनसेवा, योगसाधन आदि कुछ नहीं।

इस राधास्वामी मत का न दर्शनों से सम्बन्ध है, न अन्य शास्त्रों से। कबीरमत भी बौद्धों का शून्यवाद ही है।

✲ ✲ ✲

१२ वां समुल्लास

एकादश समुल्लास में श्री स्वामी जी ने भारतोत्पन्न उन मतों की आलोचना की है जो वेद को, अथवा ईश्वर को मानते हैं। किन्तु इस समुल्लास में उन मतों की आलोचना है कि जो वेद, ईश्वर को नहीं मानते हैं किन्तु हैं भारतोत्पन्न आर्यमत ही। ये हैं चार्वाक, बौद्ध, जैन आभाणक ये अनात्मवादी हैं। शरीर के अतिरिक्त अन्य कोई चेतन सत्ता (जीवात्मा) नहीं है। मरने के पश्चात् आत्मा, अन्तःकरण आदि कुछ नहीं रहता। आभाणक भी यही मानते हैं। आजकल के मार्क्सवादी भी यही मानते हैं। मार्क्सवाद, वैज्ञानिक भौतिकवाद है पूरा अनात्मवाद।

बौद्ध जीवात्मा को रूप, संज्ञा, संस्कार, वेदना, विज्ञान इस प्रकार पञ्च स्कन्ध मात्र मानते हैं। आत्मा शरीर के नष्ट हो जाने पर भी रहता है। अतः पुनर्जन्म भी बौद्ध लोग मानते हैं। इनका दर्शन 'प्रतीत्यसमुत्पाद्यवाद' है। 'क्षणिकवाद' भी कहा जाता है। इनके दर्शनों में ४ मत हैं। वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक।

संसार दुःख रूप है, प्रत्येक वस्तु प्रत्येक क्षण परिवर्तित होती रहती है। संसार से छूट कर निर्वाण प्राप्त किया जाय।

चार्वाक के मत में जैसे भी हो वैसे अर्थ और काम के सुख भोगे जायें। परन्तु सत्य, न्याय आदि सामाजिक सदाचार पर यह भी बल देता है। बौद्ध तो पुनर्जन्म और कर्मफल की अवश्यमेव प्राप्ति मानते हैं। जैन दर्शन है "स्याद्वाद" (अनेकान्तवाद)। प्रत्येक वस्तु विविध धर्मों (गुणों) वाली है अतः अनेक दृष्टियों से उसका लक्षण होना भी आवश्यक है।

जीवात्मा में अनेक परिणाम (दशाएं) होते हैं कि जीवात्मा नित्य है, मरने के पश्चात् भी रहता और स्वकर्मानुसार सुख-दुःख के फल भोगेगा।

जैन जीवात्मा का अस्तित्व नित्य मानते हैं। किन्तु उस में परिणाम होते रहते हैं। एक जीवात्मा, एक असंयुक्त द्रव्य।

ईश्वर तथा उसके अस्तित्व के दोनों ही इंकारी है। न ईश्वरीय उपदेश

का कोई ग्रन्थ है। बौद्ध, बुद्ध भगवान् के उपदेशों को मानते हैं जो पाली भाषा में लिखित एक ग्रन्थ में हैं। जैनों के तीर्थंकरों का अथवा उनके चेलों का जिन्हें 'गणधर' कहते हैं लिखा हुआ कोई ग्रन्थ नहीं है। केवल पण्डितों के लिखे ग्रन्थ, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग; इन चार भागों में बंटे हैं।

प्रथमानुयोग : पुराण; जिनमें तीर्थंकरों की कथायें हैं।

करणानुयोग : ज्योतिष, गणित, स्मृति आदि है।

चरणानुयोग: नित्य के कर्म के आचरणों का उपदेश है।

द्रव्यानुयोग: दर्शन शास्त्र जैसा है।

"यह जैनियों के चार वेद हैं" (ब्र० शीतल प्रसाद जी, जैन विद्वान्)

प्रथम स्वामी जी चार्वाक को उत्तर देते हैं—"विना चेतन परमेश्वर के निर्माण किये जड़ पदार्थ स्वयं आपस में नियमपूर्वक मिलकर उत्पन्न नहीं हो सकते।"

यह प्रत्यक्ष ही है कि बिना चेतन मनुष्य के प्रकृति से बने पदार्थों की रचना नहीं होती। प्रकृति की हलचलों से भी पदार्थ बनते रहते हैं। किन्तु उनमें रचना (आर्ट) नियमपूर्वक नहीं होती। मार्क्सवादी प्रकृति में द्वन्द्व (हलचल) सदा रहती है।' यह मानते हैं तो जड़ प्रकृति की हलचल से अनेक आकारों को प्रकृति धारण करती रहेगी किन्तु वे आकृतियाँ सुन्दर हों, उपयोगी हों, समय की पाबन्द हों; यह आवश्यक नहीं है। अतः वेदान्त दर्शन ने कहा —

"रचनानुपपत्तश्च नानुमानम्" (वेदान्त)

यदि यह अनुमान किया जाय कि केवल प्रकृति ही जगत् में है और कोई चेतन सत्ता नही तो रचना (निर्माण), कारीगरी बुद्धियुक्त, सौंदर्यमयी बनावट नहीं हो सकती। कोई भी जड़ पदार्थ स्वयं विविध रूपों में नहीं आ पाता। और जीव; जिसमें विवेक है, चेतनता है; इन जड़ पदार्थों की हलचल का परिणाम कैसे हो सकता है? पूरी जड़ प्रकृति ज्ञान-शून्य है तो हलचलों से ज्ञान, विवेक चैतन्य तो नहीं प्रकट हो सकता। अभाव से भाव नहीं होता। अदम से वजूद नामुमकिन है अर्थात अभाव से भाव असम्भव है। यदि कहो कि चेतनता जड़ में छिपी हुई थी वही प्रकट हो गई तो जड़ और चेतन दो पदार्थ स्वीकृत हो गये। और जैसे शरीरों के संचालनार्थ चेतन अल्पदेशी जीवात्मा है, वैसे ही सार्वभौम सृष्टि रूपी शरीर का आत्मा ब्रह्म है। वही इसे नियमपूर्वक संचालित करता है। मार्क्स और एंजिल्स की वैज्ञानिक कल्पनायें अधूरी हैं और तर्कशून्य भी। मार्क्स और एंजिल्स ने जिस विकासवाद

(Theory of evolution) को आधार बनाया है वह स्वयं अधूरी कल्पना है। विकासवाद सर्वांश में प्रमाण नहीं है। ऐसा अब यूरोप के बड़े-बड़े विद्वान् मान रहे हैं।

आचार्य नागार्जुन ने बौद्धमत में तांत्रिक क्रियायें शामिल कर के इसे वाममार्ग के तुल्य ही बना डाला। बौद्धमत में हिंसा का तो निषेध है परन्तु मांसभक्षण की मनाही नहीं। श्री राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि वैशाली के भलल क्षत्रिय मांस भक्षण नहीं छोड़ना चाहते थे इसलिए वे तथा और भी क्षत्रिय जैन न बन बौद्ध बने।

बौद्ध जीवात्मा को रूप, संज्ञा, संस्कार, वेदना, विज्ञान ये पांच स्कन्ध मात्र मानते हैं। किन्तु रूपादि पांचों गुण हैं। गुण किसी द्रव्य के आश्रय रहता है तो बौद्ध बतायें कि वह द्रव्य क्या है? वास्तव में वह द्रव्य जीव है। उसी के आश्रय ये संज्ञा रूपादि स्कन्ध रहते हैं। जैन जीवात्मा को नित्य मानते हैं और पृथक् तत्व भी स्वीकार करते हैं। किन्तु सर्वव्यापिनी एक सत्ता को न मानकर सहस्रों देवता (प्रत्येक वस्तु का पृथक्-पृथक् देव) मानते हैं। सृष्टि का नियमपूर्वक संचालन होना, सृष्टि में रचना सौन्दर्य का होना तो किसी सर्वज्ञ सत्ता की व्याप्ति को सृष्टि सिद्ध कर रहे हैं। परन्तु जैनों के अनेक देवों का अस्तित्व प्रमाण हीन होने से असिद्ध है।

बौद्धों के चार सम्प्रदायों के दार्शनिक भेद

१. माध्यमिक प्रत्येक पदार्थ पहिले अभाव रूप था फिर भावमय हुआ। फिर अभाव वाला हो जाएगा। सब शून्य ही शून्य है।

२. योगाचार—पदार्थ बाहर शून्य ही है केवल बुद्धि में उसका अस्तित्व रहता है।

३. सौत्रान्तिक—जो बाहर पदार्थ को अनुमान से माना है। ज्ञान में पदार्थ शून्य है।

४. वैभाषिक—बाहर पदार्थ प्रत्यक्ष होता है, भीतर नहीं।

उक्त मान्यतायें केवल बुद्धि का व्यायाम मात्र है। इससे तत्वों की स्थिति की मान्यता में कोई भी अन्तर नहीं पड़ता। बौद्धों का माध्यमिक शारीरिकवाद का एक ग्रन्थ हमारे सामने रखा है। इस इतने बड़े ग्रन्थ में यही बुद्धि का व्यायाम, तर्कों के पेंच भरे हैं। इससे न मनुष्य का भौतिक लाभ है न पारमार्थिक ही। संसार दुःख रूप है—ऐसा प्रचार करके बौद्धों ने भारत की जनता को जीवन से निराश कर डाला और जनता में बल का, उत्साह का अभाव हो गया। तब ही विदेशियों के आक्रमणों ने भारत के वैभव को ध्वस्त कर डाला।

पाटलिपुत्र का बौद्ध नरेश बृहद्रथ अपने विलासों में मग्न था। तभी हूणों का आक्रमण हुआ। हूण अयोध्या तक आ पहुंचे। राजा ने कोई प्रयत्न नहीं किया। राजा के सेनापति पुष्यमित्र ने जब राजा से युद्ध की तैयारी को कहा था तो राजा ने उसे डाँट दिया। इस पर पुष्यमित्र ने बृहद्रथ को मारकर अपने पुत्र अग्निमित्र को राजा बनाया और हूणों से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। जब तक हूणों को खदेड़कर सिन्धु के बाहर न कर दिया तब तक बराबर युद्ध जारी रखा। बौद्ध संघों में बिना परीक्षा किये भिक्षु बनाये जाते रहे। लाखों मनुष्यों को निठल्ला खाने वाला बनाया तब भ्रष्टाचार, व्यभिचार भी प्रारम्भ हो गया। ब्राह्मणों ने जब इस अव्यवस्था को रोका तो बौद्ध महन्त ब्राह्मणों के घोर विरोधी हो गये। जब सिन्ध पर मुहम्मद इब्ने कासिम का आक्रमण हुआ तो प्रथम तो अरब लोग पिट कर भाग निकले किन्तु बौद्ध महन्त उन्हें फिर बुला लाये और युद्ध चलने पर बौद्धों ने देवल (मंदिर का दुर्ग) का फाटक खोल दिया और इब्ने कासिम को यह भी बौद्धों ने बताया था कि किसी भी प्रकार से मंदिर का झंडा गिरा दिया तो हिन्दू निराश होकर भाग जायेंगे। क्योंकि इनका विश्वास है कि जिस दिन मंदिर का झण्डा गिर जायेगा उस दिन हमारा राज्य भी समाप्त हो जायेगा। बस इब्ने कासिम ने मंजनीक (पत्थर फेंकने का एक यंत्र जो उस समय की तोप कहलाता था) से ३ पत्थर मारकर झण्डा तोड़ दिया। हिन्दू सेना निराश हो गई। इधर बौद्धों ने फाटक खोल दिया। देबल का दुर्ग अरबों ने जीत लिया।

जब सिन्ध पर अरबों का शासन स्थापित हो गया तो उन्होंने ब्राह्मणों और बौद्धों को बुलाकर पूछा कि आप ईश्वर को वा किसी धर्म पुस्तक को मानते हैं वा नहीं? ब्राह्मणों ने कहा कि हम ईश्वर और उसके उपदिष्ट वेद को मानते हैं। तो इब्ने कासिम (मसावी) ने कहा कि आप हमारी बराबरी के हो बस जजिया तुम्हें देना होगा। बौद्धों ने कहा कि हम बुद्ध जी को ही सब कुछ मानते हैं। उनके ही वचन हमारे धर्म पुस्तक हैं। तब इब्ने कासिम ने कहा कि तुम काफिर हो। मुसलमान बनो या मुल्क छोड़ो या कत्ल होने को तैयार रहो। बस, कुछ बौद्ध बाहर भाग गये, शेष सब मुसलमान हो गये। जब वे लोग कि जिन्होंने कि भेद दिये थे इब्ने कासिम पर पहुंचे और इनाम मांगा तो कासिम ने अपने सैनिकों से कहा, "इन्हें बाहर ले जाकर इनाम दे दो। इनके सिर काट दो।" यह लोग तब गिड़गिड़ाकर बोले कि यह कैसा इनाम! तब इब्ने कासिम ने कहा कि तुम्हारा क्या विश्वास तुम तो गद्दार हो। जब अपने मुल्क वालों के ही न हुए तो हमारे क्या होओगे। और अंत में सबको कत्ल करा दिया गया।

नरपिशाच बख्त्यार खिजली ने जब नालन्दा विश्वविद्यालय पर आक्रमण किया तो दस सहस्र भिक्षु बैठे-बैठे ही कत्ल हो गये। शस्त्र-संचालन भी

जानते होते तो सौ-दो सौ म्लेच्छों को तो मार देते ।

बौद्ध मत इतना निर्बल था कि चंगेज खां के सेनापति हलाकू (बौद्ध) ने जब खलीफा मुश्त हासिम बिल्लौर पर विजय प्राप्त करी और खलीफा को नमदों के नीचे दबाकर घोड़े की टापों से कुचलवा कर मरवा डाला। और सब मुसलमानों का अधिपति बन गया। किन्तु अरबों ने लालच दिया कि आपको स्थायी खलीफा बना देंगे और अरबी सेना आपके आधीन रहेगी तो सब तुर्क बौद्ध मत त्याग कर मुसलमान बन गये।

इस्लाम से तुलना करना बौद्धमत के वश की बात नहीं थी। दार्शनिक उलझनों से भरा बौद्धमत ; मूर्तियों पर, करामातों पर विश्वास करने वाला बौद्धमत इस्लाम से परास्त हो गया।

हमारे सामने महायान सूत्रालंकार ग्रन्थ रखा है जो महान् दार्शनिक विद्वान् असंग का रचा हुआ है। इसमें भी वही उलझी हुई बातें हैं। इसमें केवल महायान की आवश्यकता बताई है—"धर्म के द्वारा स्कन्ध, आयतन, धातु आहार रहस्य ज्ञापक प्रक्रिया एवम् प्रतीत्यसमुत्पादि समझना चाहिए"।

"बुद्ध का दर्शन अपने मौलिक रूप – प्रतीत्य समुत्पादवाद (क्षणिकवाद) का भारी क्रान्तिकारी था। जगत्, समाज, मनुष्य सभी को उसने क्षण-क्षण परिवर्तनशील घोषित किया, और कभी न लौटने वाले 'ते हि नो दिवसा गता' (वे हमारे दिवस चले गये) की परवाह छोड़कर परिवर्तन के अनुसार अपने व्यवहार, अपने समाज के परिवर्तन के लिए हर वक्त तैयार रहने की शिक्षा देता था। बुद्ध ने अपने बड़े से बड़े दार्शनिक विचार (धर्म) को भी बेड़े के समान सिर्फ उससे फायदा उठाने के लिए कहा था, और उसे समय के बाद भी ढोने की निन्दा की थी। तो भी इस क्रान्तिकारी दर्शन ने अपने भीतर से उन तत्त्वों (धर्म) को हटाया नहीं था जो 'समाज की प्रगति को रोकने' का काम देते हैं। पुनर्जन्म को यद्यपि बुद्ध ने नित्य आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में आवागमन के रूप में मानने से इन्कार किया था, तो भी दूसरे रूप में परलोक और पुनर्जन्म को माना था।

(राहुल सांकृत्यायन कृत दर्शन-दिग्दर्शन)

श्री शंकराचार्य जी ने वेदान्त दर्शन के—

प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्या निरोधाप्राप्तिरविच्छेदात् ।२।२।२२।।

उभयथा च दोषात् ।२।२।२३।।

आकाशे च विशेषात् ।२।२।२४।।

सूत्रों के भाष्य में क्षणिकवाद का खण्डन किया है। यथा :—

"तदार्थं च त्रयं प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्या निरोधादाकाशं चेत्प्राचक्षते। त्रयमपि चैतदवस्त्वभावमात्रं निरूपाख्यमिति मन्यन्ते, विधिपूर्वक: किल विनाशो भावानां प्रतिसंख्यानिरोधो नाम भाष्यते, तद्विपरीतोऽप्रतिसंख्यानिरोध:, आवरणाभावमात्राकाशमिति । तेषामाकाशं परस्तात्प्रत्याख्यास्यति। निरोधद्वयमिदानीं प्रत्याचष्टे। प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्या निरोधयोरप्राप्ति: असम्भव: इत्यर्थ: कस्मात् ? अविच्छेदात्। एतौ हि प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधौ संतानगोचरौ वा स्यातां भावगोचरौ वा न तावत्संतानगोचरौ संभवत: सर्वेष्वपि संतानेषु संतानिनामविच्छिन्नेन हेतुफलभावेन संतानविच्छेदस्यासंभवात् । नापि भावगोचरौ संभवत:। नहि भावानां निरन्वयो निरूपाख्यो विनाश: संभवति, सर्वास्वप्यवस्थासु प्रत्यभिज्ञानबलेनान्वय्यविच्छेददर्शनात्। अस्पष्टप्रत्यभिज्ञानास्वप्यवस्थासु क्वचिद्दृष्टेनान्वय्यविच्छेदेनान्यत्रापि तदनुमानात् । तस्मात्परपरिकल्पितस्य निरोधद्वयस्यानुपपत्ति: ।।२२।।"

"योऽयमविद्यादिनिरोध: प्रतिसंख्यानिरोधान्त:पाती परिकल्पित:, स सम्यग्ज्ञानाद्वा सपरिकर: स्यात्स्वयमेव वा पूर्वस्मिन्विकल्पे निर्हेतुकविनाशाभ्युपगमहानिप्रसंग:। उत्तरस्मिंस्तु मार्गोपदेशानर्थक्यप्रसंग:। एवमुभयथापि दोषप्रसंगादसमञ्जसमिदं दर्शनम् ।।२३।।

"यच्च तेषामेवाभिप्रेतं निरोधद्वयमाकाशं च निरूपाख्यमिति तत्र निरोधद्वयस्य निरूपाख्यत्वं पुरस्तान्निराकृतम् । आकाशस्येदानीं निराक्रियते। आकाशे चायुक्तो निरूपाख्यत्वाभ्युपगय: प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधयोरिव वस्तुत्वप्रतिपत्तेरविशेषात्। आगमप्रामाण्यात्तावत् आत्मन आकाश: संभूत: (तै० २।१।।) इत्यादि श्रुतिभ्य ; आकाशस्य च वस्तुत्वप्रसिद्धि:। विप्रतिपन्नान्प्रति तु शब्दगुणानुमेयत्वं वक्तव्यं, गन्धादीनां गुणानाँ पृथिव्यादिवस्त्वाश्रयत्वदर्शनात्। अपि चावरणा भावमात्रमाकाशमिच्छतामेकस्मिन्सुपर्णे पतत्यावरणस्य विद्यमानत्वात्सुपर्णान्तस्योत्पित्सतोऽनवकाशत्वप्रसंग: । यत्रावरणाभावस्तत्र पतिष्यतीति चेत्। येनावरणाभावो विशेष्यते तर्त्तहि वस्तु-

भूतमेवाकाशं स्यात्, नावरणाभावमात्रम् । अपि चावरणाभावमात्-माकाश मन्यमानस्य सौगतस्य स्वाभ्युपगमविरोधः प्रसज्येत । सौगते हि समये 'पृथिवी भगवः किंसंनिश्रया' इत्यस्मिन्प्रतिवचनप्रवाहे पृथिव्यादीनामन्ते 'वायुः किंसंश्रयः' इत्यस्य प्रश्नस्य प्रतिवचनं भवति 'वायुराकाशसंनिश्रयः इति । तदाकाशस्यावस्तुत्वे न समञ्जसं स्यात् । तस्मादयुक्तमाकाशस्यावस्तुत्वम् अपिच निरोधद्वयमाकाशं च त्रय-मप्येतन्निरूपाख्यमवस्तु नित्यं चेति विप्रतिषिद्धम् । नह्यवस्तुनो नित्य-त्वमनित्यत्वं वा संभवति, वस्त्वाश्रयत्वाद्धर्मधर्मिव्यवहारस्य । धर्म-धर्मिभावे हि घटादिवद्वस्तुत्वमेव स्यान्न निरूपाख्यत्वम् ।।२४।।"

उक्त भाष्य श्री आचार्य शंकराचार्य जी का है । और नीचे हिन्दी भाष्य आचार्य श्री उदयवीर जी का दिया जाता है :—

प्रतिसंख्यानिरोध और अप्रतिसंख्यानिरोध की प्राप्ति—सिद्धि नही (अविच्छेदात्) विच्छेद न होने से । प्रतिसंख्यानिरोध—प्रति अर्थ है :—प्रति-कूल, विरोधी संख्या का अर्थ है । बुद्धि, ज्ञान 'निरोध' का अर्थ है विनाश । विद्यमान भाव को मैं अविद्यमान करता हू । इस प्रकार किसी भाव के प्रतिकूल बुद्धि 'प्रतिसंख्या' कही जाती है । ऐसी बुद्धि से जो भाव (वस्तु) का विनाश है । वह 'प्रतिसख्यानिरोध' है । इसके विपरीत भावों का जो स्वभावतः विनाश होता रहता है, वह दूसरा निरोध है । जगत् परमाणुओं का समुदाय-मात्र है । इस मान्यता में परमाणु एवम् समुदाय को अनिवार्य रूप से प्रतिक्षण परिवर्तनशील मानना पड़ता है । इसमें परमाणु समुदाय को तथा पूर्वसमुदाय को परिवर्तित किया जाता है । यह प्रक्रिया स्वीकार की जाती है । न्यूना-धिकता का कोई नियामक न होने से यह परिवर्तन प्रतिक्षण होना माना जा सकता है । गत सूत्रों में बताया गया कि इस मान्यता के अनुसार पूर्वसमुदाय के सर्वथा नष्ट होने पर उत्तरसमुदाय का उत्पन्न होना सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि कारण के न रहने पर कार्य की उत्पत्ति माना जाना सर्वथा अप्रामाणिक है । प्रस्तुत सूत्र में कहा गया है कि किसी भाव का सर्वथा विनाश सम्भव नहीं । वस्तु का विनाश या अभाव दो प्रकार से कहा जाता है । एक—वस्तु सत्ता को बुद्धिपूर्वक वस्तु असत्ता के रूप में समझना, यह उन बुद्धिमान्, विद्वान्, ज्ञानियों के विषय में है जो जगत् की क्षणिक अस्थायी सत्ता को वास्तविक असत्ता के रूप में समझते हैं । दूसरा प्रकार—वस्तु की वह स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसे असमुदायवाद में इस रूप से माना जा सकता है कि प्रत्येक वस्तु प्रति-क्षण परिवर्तनशील होने से विनाश को प्राप्त हो जाती है । इन दोनों प्रकारों में वस्तु के सन्त्वाक्षण के अनन्तर उस वस्तु का किसी प्रकार का कोई अस्तित्व

नहीं रहता ।

सूत्रकार ने इस विचार को यह हेतु देकर असंगत बताया है कि किसी वस्तु का सर्वथा उच्छेद (विच्छेद-विनाश) नहीं होता, उत्पत्ति के समान विनाश भी एक परिवर्तन है । परिवर्तन क्रिया आश्रय के बिना असम्भव है । जैसे उत्पत्ति में कार्य कारण तत्त्वों से अन्वित (सम्बद्धयुक्त) रहता है । कारण से अन्वित कार्य नहीं हो सकता ऐसे ही कार्य का विनाशरूप परिवर्तन कारण से अन्वित रहता है । कपड़े के फट जाने पर या घड़े के फूट जाने पर उनके कारणतत्त्व तन्तुओं तथा मृण्मय टुकड़ों को पहले के समाज उपलब्ध किया जाता है ।

वस्तु की सामान्य दशा में भी उस वस्तु को पूर्वापर काल में एकरूप से पहचाना जाता है । यद्यपि वस्तु की क्षणिकता में युक्ति दी जा सकती है कि बाल शरीर युवा और वृद्ध अथवा जीर्ण हो जाता है । यह परिवर्तन एक साथ नहीं होता । प्रतिक्षण धीरे-धीरे होता हुआ कालान्तर में अनुभूत होता है । फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि इसमें एक अन्वित धर्मी आवश्यकरूप से विद्यमान है । बाल, युवा, वृद्ध शरीर में धर्मों का अपचय-उपचय अवश्य रहता है । जो इस अनुभूत परिवर्तन का निमित्त है । पर वहां उस अन्वित धर्मी से इन्कार नहीं किया जा सकता । जिसके आधार पर बालक युवा, वृद्ध देवदत्त को कालान्तर व देशान्तर में एकरूप से बराबर पहचाना जाता है । दार्शनिक भाषा में इनका नाम 'प्रत्यभिज्ञा' है । इसके आधार पर लोकव्यवहार सम्पन्न होता है । अन्यथा समस्त वैयक्तिक पारिवारिक सामाजिक आदि सम्बन्धों का विच्छेद होकर लोकव्यवहार असम्भव होगा । यह स्थिति प्रत्येक वस्तु के विषय में स्वीकार्य है । देशान्तर व कालान्तर में उसी वस्तु का होना वा पहिचाना जाना इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि प्रत्येक क्षण में वस्तु का विनाश माना जाना सर्वथा असंगत है । अग्नि आदि से दग्ध वस्तुओं मे जहां अन्वयी धर्मी स्पष्ट प्रतीत नहीं होता, वहां भी अन्य प्रकारों (विज्ञान आदि प्रक्रियाओं) से उसका जान लेना अशक्य नहीं हैं । इसलिए समुदायवाद में विभिन्न प्रकारों से वस्तुओं का तथाकथित अभाव (निरोध) सिद्ध न होने के कारण भी यह अमान्य है ।

उक्त प्रकार से कहे जाने वाले वस्तुओं के निरोध के प्रत्याख्यान में आचार्य सूत्रकार ने अन्य हेतु प्रस्तुत किया है ।

इस सप्तभंगी न्याय पर श्री स्वामी जी का कथन सार रूप में कितना युक्ति-युक्त है:—

यह कथन अर्थात्—

सप्त भंगं भंगंगता तर्क स्याद्वाद स्यादस्ति जीवोय्यं प्रथमो भंग: ॥१॥

स्यान्नास्ति जीवो द्वितोयो भंग: ॥२॥

स्यादवक्तव्यो जीवस्तृतीयो भंग: ॥३॥

स्यादस्ति नास्ति रूपो जीवश्चतुर्थो भंग: ॥४॥

स्यादस्ति अव्यक्तव्यो जीव: पञ्चमो भंग: ॥५॥

स्यान्नास्ति अव्यक्तव्यो जीव: षष्ठो भंग: ॥६॥

स्यादस्ति नास्ति अव्यक्तव्यो जीव: इति सप्तमो भंग: ॥७॥

एक दृष्टिकोण से जीव है एक से नहीं हैं। एक से व्यक्तव्य है दूसरे से अव्यक्तव्य; एक से नित्य एक से अनित्य आदि अन्योऽन्याश्रय से साधर्म्य और वैधर्म्य में चरितार्थ हो सकता है। इस सरल प्रकरण को छोड़कर कठिन जाल-रचना केवल अज्ञानियों के फंसाने के लिए होती है। देखो! जीव का अजीब में और अजीव का जीव में अभाव रहता ही है। जैसे जीव और जड़ के वर्तमान होने से साधर्म्य और चेतन तथा जड़ होने से वैधर्म्य अर्थात् जीव में चेतनता (अस्ति) है और जड़त्व (नास्ति) नहीं है। इसी प्रकार जड़ में जड़त्व है और चेतनत्व नहीं है। इससे गुण, कर्म, स्वभाव के समान धर्म और विरुद्ध धर्म के विचार से सब इनका सप्तभंगी और स्याद्वाद सहजता से समझ में आता है फिर इतना प्रपञ्च बढ़ाना किस काम का है?

स्वामी जी ने ठीक ही लिखा है कि जैन-दर्शन एक प्रपञ्च मात्र है। सत्यार्थ दर्पण में जैन पंडित जी ने लिखा है कि श्री शंकराचार्य जी स्याद्वाद को नहीं समझे। महामहोपाध्याय श्री प० राममिश्र शास्त्री और महामहोपाध्याय श्री पं० गंगानाथ झा की सम्मति सत्यार्थ दर्पण में यह है —

१- "मैं कहां तक कहूं बड़े बड़े नामी आचार्यों ने शंकराचार्य सरीखों ने अपने ग्रन्थों में जो जैन मत का खण्डन किया है वह ऐसा किया है जिसे सुन-देखकर हंसी आती है। स्याद्वाद यह जैन धर्म का एक अभेद्य किला है। इसके अन्दर वादी प्रतिवादियों के मायामय गोले नही प्रवेश कर सकते।"

२- "जब से मैंने शंकराचार्य द्वारा जैन सिद्धान्त का खण्डन पढ़ा है तब से मुझे विश्वास हुआ कि इस सिद्धान्त में बहुत कुछ है जिस को वेदान्त के आचार्य ने नहीं समझा। और जो कुछ मैं अब तक जान सका हूं उससे मेरा यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि यदि शंकराचार्य जैन धर्म को उसके ग्रन्थों से देखने का कष्ट उठाते तो उनको जैन धर्म के विरोध करने में कोई बात नहीं मिलती।"

उक्त विद्वानों ने जैन सभा में जैनों को सन्तुष्ठ करने के लिए यह बातें बधार दीं। परन्तु शंकराचार्य ने क्या गलती की यह कोई न बता सका।

स्याद्दाद एक अनिश्चित वाद है। और वहम करने का एक ढंग है। इस वाद से कोई बात स्थिर निश्चित नहीं रहती, यह वाक् प्रपञ्च नहीं तो क्या है?

जैन न्याय का एक ग्रन्थ 'प्रमाण मीमांसा' हमारे सामने रखा है। इसमें सरल परिभाषाओं को भी किलष्ठ बनाया गया है और व्यर्थ ही परिभाषाओं को बढ़ाया गया है। तत्त्वार्थ सूत्र ही को देखिए—सम्यग् दर्शन कहकर सम्यक् ज्ञान कहने की क्या आवश्यकता थी? दर्शन और ज्ञान तो पर्यायवाची ही हैं। अब स्याद्वाद को जैन पण्डित के लिखे पुस्तक से हम उद्धत करते हैं —

(जैन धर्म प्रकाश श्री ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी कृत से) "स्याद्वाद—स्यात् अर्थात् किसी अपेक्षा से वाद अर्थात् कहना सो स्याद्वाद है। एक पदार्थ में बहुत से विरोधी सरीखे भी स्वभाव होते हैं। उन सबका वर्णन एक समय में ही हो नहीं सकता। एक-एक स्वभाव का हो सकता है। तब जिस स्वभाव को कहना हो उसमें स्याद् अर्थात् कदाचित् या किसी अपेक्षा से (From some point of view) यह ऐसा है; कहना ही स्याद्वाद है।

उदाहरण १—क्या आत्मा नित्य है? हां आत्मा सदा बना रहता है, इससे नित्य है।

उदाहरण २—क्या आत्मा अनित्य है? हां, अपनी अवस्थाओं को बदलता रहता है, इससे अनित्य भी है।

इस जैनी जी से पूछा जाए कि कपड़े बदलने से मनुष्य भी बदल जायेगा क्या? अनित्य अवस्थायें हुई या आत्मा? ऐसे ही कुतर्कों, हेत्वाभासों से भरा पड़ा है जैन दर्शन।

आगे श्री स्वामी जी ने इतिहास और कोश की पंक्तियाँ देकर बताया है कि जैन और बौद्धों को कुछ लोग एक ही मानते हैं। किन्तु स्वामी जी एक नहीं मानते हैं अन्यथा खण्डन अलग-अलग क्यों करते? जैन, बौद्ध दोनों वेद और ईश्वर को नहीं मानते। अपने गुरुओं को ही ईश्वर मानकर उनकी मूर्तियों की पूजा करते हैं। दोनों के गुरु क्षत्रिय राजकुमार है। आत्मा को जैन एक चेतन द्रव्य मानते हैं और बौद्ध संज्ञा, संस्कार, रूप, वेदना, विज्ञान इन पञ्च स्कन्धों का संग्रह मात्र मानते हैं। जैन मांस नहीं खाते और बौद्ध सब कुछ खा लेते हैं। अब जैनों की जो असम्भव गप्पें स्वामी जी ने लिखी हैं उनका उत्तर जैन आजतक नहीं दे सके। इधर-उधर के बहाने बनाते रहते हैं।

गप्पें :—(रत्नसार भाग १, पृष्ठ १४६) वनस्पति के एक शरीर में अनन्त

जीव होते हैं। वे साधारण वनस्पति कहाती हैं। जो कि कन्दमूल प्रमुख अनन्त काय प्रमुख होते हैं। उनको साधारण वनस्पति जीव कहना चाहिए। उनका आयुष्मान् अन्तर्मुहूर्त होता है। परन्तु यहां पूर्वोक्त इनका मुहूर्त समझना चाहिए।

और एक शरीर में जो एकेन्द्रिय अर्थात् स्पर्श इन्द्रिय इनमें है और उसमें एक जीव रहता है उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। उसका देहमान एक सहस्र योजन अर्थात् पुराणियों का योजन ४ कोश परन्तु जैनियों का योजन १००० दस सहस्र कोशों का होता है। ऐसे चार सहस्र कोश का शरीर होता हैं उसका आयुष्मान अधिक से अधिक दस सहस्र वर्ष का होता है।

अब दो इन्द्रिय वाले जीव अर्थात् एक उनका शरीर और एक मुख जो शंख, कौड़ी और जूं आदि होते हैं उनका देहमान अधिक से अधिक अड़तालीस कोश का स्थूल शरीर होता है। और उनका आयुष्मान अधिक से अधिक बारह वर्ष का होता है। यहाँ वह बहुत ही भूल गया क्योंकि इतने बड़े शरीर का आयु अधिक लिखता और अड़तालीस कोश भी स्थूल जूं जैनियों के शरीर में पड़ती होगी और उन्हीं ने देखी भी होगी।

रत्नसार भाग १, पृ० १५०, और देखो इनका अन्धाधुन्ध ! बिच्छू, बगाई, कसारी (कानसलाई) और मक्खी एक योजन के शरीर वाले होते हैं। इनका आयुष्मान अधिक से अधिक छः महीने का है। देखो भाई चार-चार कोस का बिच्छू किसी ने देखा न होगा। जो आठ मील तक का शरीर वाला बिच्छू और मक्खी भी जैनियों के मत में होती है, ऐसे बिच्छू और मक्खी उन्हीं के घर में रहते होंगे और उन्हीं ने देखे होंगे। कभी ऐसे बिच्छू किसी जैनी को काटें तो उसका क्या होता होगा? जलचर मच्छी आदि के शरीर का मान एक सहस्र योजन अर्थात् १००० कोश के योजन के हिसाब से १०००००००‌ एक करोड़ कोश शरीर होता है। और एक करोड़ पूर्व वर्षों का इनका आयु होता है, वैसा स्थूल जलचर सिवाय जैनियों के अन्य किसी ने न देखा होगा। और चतुष्पाद हाथी आदि का देहमान दो कोश से नव कोश पर्यन्त और आयुष्मान चौरासी सहस्र वर्षों का इत्यादि ऐसे बड़े-बड़े शरीर वाले जीव भी जैनी लोगों ने देखे होंगे और मानते हैं और कोई बुद्धिमान् नहीं मान सकता।

सत्यार्थ दर्पण में जैन पण्डित जी ने समाधान में कहा है कि पहाड़ पर बड़े लम्बे-लम्बे मनुष्यों का पता चला है। असल में यह मनुष्य नहीं एक प्रकार का बन्दर है, ९-१० फीट लम्बा, पर आज तक पकड़ा नहीं गया है मगर मीलों लम्बे-चौड़े जानवर और मनुष्य लिखना गपोड़ा नहीं तो क्या है? असल में जिस समय ये जैन पुस्तक लिखे गये थे वह समय ही गपोड़ेबाजी का था।

मुसलमानों के यहां भी लिखा है कि हजरत ऊज जो हजरत आदम के पोते थे, समुद्र में खड़े होकर मछलियां पकड़ पकड़कर सूर्य पर भूनकर खाते थे। कुम्भकर्ण भी कितना लम्बा-चौड़ा था :—

योजन एक नासिका बाढ़ी। योजन चार मूंछ रही ठाड़ी॥

किन्तु यह बात कविता की है। इसका समाधान भी हो जाता है। मूंछ खड़ी रखना प्रतिष्ठा बढ़ाना। नाक बढ़ना, यश छा जाना, पर हजरत ऊज और जैनों के कोसों लम्बे चौड़े जीव एक मनोरंजक गप्प के सिवा कुछ नहीं सत्यार्थ प्रकाश में जैनों की ऐसी गप्पें बहुत दिखाई गई हैं। तीर्थंकरों का शरीर-आयु गप्पें नहीं तो क्या हैं? अपसर्पिणी काल के बाद उत्सर्पिणी काल में ऐसे लम्बे-चौड़े जीव उपजते हैं। तो अयोनिज सृष्टि तो जैन मानते नहीं तो इन लघु प्राणियों से ऐसे लम्बे-चौड़े जीव कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। ५ फीट के मनुष्य का पुत्र ६-७ फीट लम्बा तो हो सकता है किन्तु कोसों लम्बा तो असम्भव बात ही है। इसी प्रकार के अनेक खण्डन स्वामी जी ने जैनमत के लिखे हैं। जो सब सही किए हैं। जैनों को उचित है कि अपनी पुस्तकों से ऐसे गपोड़े बाहर कर दें।

जैन पण्डित जी ने जैनमत के समर्थन में और वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने के विरोध में अनेक विद्वानों के लेख दिए हैं। किन्तु यह सब साध्यसम हेत्वाभास से दूषित हैं। जो दलील और सबूत दूसरी दलील और सबूत के मुहताज हों (आधीन हों) वह साध्यसम हेत्वाभास से दूषित होते हैं। पं० राममिश्र जी महामहोपाध्याय वेदों में हिंसा बतावें, चाहें जैन पण्डित बतावें, तो प्रमाण प्रस्तुत करें। श्री लाला लाजपतराय जी वेदों को ईश्वरीय-ज्ञान न मानते हुए भी हर हिन्दू को वेदों का आदर करने का उपदेश दे रहे हैं। तो जैनी को समझना चाहिए कि वास्तविकता क्या है? लाला जी राजनैतिक नेता थे। संस्कृत से कतई वंचित थे। ईश्वरीय ज्ञान की सूक्ष्म बातें उनके सोच-विचार से बहुत दूर थीं। सोऽहं शर्मा एक कम्युनिस्ट हैं, वेदों से अपरिचित, तो उनकी राय का क्या मूल्य है? जैनी जी! परोक्षज्ञान को तो आप भी मानते हो। जब तीर्थंकर भगवान् समवरण में पधारते हैं तो उनकी वाणी 'ॐ' ध्वनि में खिरती हैं। जिसे उनके गणधर प्रकट करते हैं। ऐसी ही वाणी ऋषियों के हृदयों से खिरी जो परावाणी के रूप में उनके हृदयों में आयी और उन्होंने बैखरी वाणी के रूप में प्रकट किया। तीर्थंकर भगवान् भी जब तप की अन्तिम सीमा पर पहुंचे तो उन्हें दिव्यवाणी मिली। और ऋषि भी जब तप की अन्तिम सीमा पारकर गये तो उनको वेदवाणी प्रकट हुई। एक परोक्षवाणी को आप भी स्वीकार करते हो किन्तु उसे तीर्थंकर भगवानों की वाणी मानते हो। हम कहते हैं कि वह वाणी सदा नित्य है। और सर्वव्यापक ब्रह्म तत्व का

ज्ञान है। ऋषि हों वा तीर्थंकर हों वा बुद्ध हों, उन सब का वह उच्च ज्ञान नैमित्तिक होता है उनका अपना नहीं होता। जब तपस्या से हृदय निर्मल हो जाता है तो ज्ञान का उदय होता है। आप मानते हो कि यह ज्ञान उनका अपना ही था जो दबा पड़ा था। हम कहते हैं कि जो यह ज्ञान उन्हें था तो बन्धन में कैसे आ गये और यह ज्ञान दब कैसे गया? हमारा समाधान तो यह है कि प्रत्येक जीव अल्पज्ञ है। अपनी अल्पज्ञता के कारण बन्धन में आया। जब तप से हृदय विकसित हो गया तो अनादि सर्वज्ञ ब्रह्म का ज्ञान उनमें प्रकाशित होने लगा।

जैनमत में असंख्य देवताओं का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। प्रत्येक लोक का, प्रत्येक वस्तु का एक-एक देवता है। परन्तु देवाधि देव ब्रह्म से, जोकि सर्वव्यापक होकर सबको गति प्रदान कर रहा है; उसके अस्तित्व से इन्कार किया गया है। उसी सर्वव्यापक प्रभु का आनन्द तीर्थंकरों को प्राप्त हुआ था किन्तु उन्होंने प्रत्यक्ष में तो कभी न 'हां' करी न 'न' करी'। जैसे बुद्ध भगवान् के वचन बौद्धों के पास हैं ऐसे जैन तीर्थंकरों, सिद्धों, गणधरों तक के वचन भी जैनों को प्राप्त नहीं हैं। वर्षों बाद पंडितों के बनाये पुस्तक ही जैनों पर हैं। ब्राह्मणों के विरोध में जैन पंडितों ने ईश्वर से इन्कार किया है।

यद्यपि बड़े जैन ग्रन्थों के लेखक भी ब्राह्मण ही थे किन्तु ये सब ब्राह्मण से अनाहत होकर जैनों में गये थे। आप्त मीमांसाकार भी पहिले शैव पण्डित थे फिर जैन बने थे। जैनों में ब्राह्मणों का पद बहुत नीचा हैं। भरत चक्रवर्ती ने दान देने के लिए एक वर्ग चुना था वह ब्राह्मण कहलाया। पहिले तीन ही वर्ण थे पढ़ो 'जैन धर्म प्रकाश'।

जैनों में ब्राह्मणों को किस दृष्टि से देखा जाता है; वह कथा यह है—

भगवान् महावीर तीर्थंकर पहले ब्राह्मणी के गर्भ में आए तब इन्द्र ने विचारा कि तीर्थंकर भगवान् ब्राह्मणी के गर्भ से जन्म कैसे ले सकते हैं, ब्रह्मणी तो तुच्छ है। तब उस गर्भ को ब्राह्मणी के उदर से निकाल कर रानी त्रिशला के गर्भ में रखा। (उपरोक्त मत श्वेताम्बरों का है)

बौद्ध जैन क्षत्रिय पूर्वी प्रान्तों में ही थे। शाक्य, मल्ल, मौर्य, श्रोणिक आदि कई क्षत्रिय जातियाँ उधर थी जिन्हें अन्य प्रान्तों के क्षत्रिय हीन समझते थे ये सब यज्ञोपवीतादि से रहित थे। और गणतन्त्र राज्य थे इनके। हां, श्रोणिक राज गणतन्त्र नहीं था। भगवान् महावीर भी गणतन्त्र राज्य में जन्मे थे

संकीर्ण भावना :—

जैन ग्रन्थों में अन्य सम्प्रदाय वालों के प्रति क्या भाव हैं, यह देखिए—

चहुगुण विजया निलओ, उसुत्त भासी तहा विमुत्तव्वो।

जह वर मणि जुत्तो विहु, विग्ध करो विसहरी लोए ॥

जैसे विषधर सर्प में मणि त्यागने योग्य है वैसे जो जैनयत में न हो वह चाहे कितना बड़ा धार्मिक पंडित हो उसको त्याग देना ही जैनियों को उचित है ॥ १८॥

समीक्षक:—देखिए! कितनी भूल की बात है। जो इनके चेले और आचार्य विद्वान् होते तो विद्वानों से प्रेम करते जब इनके तीर्थंकर सहित अविद्वान् हैं तो विद्वानों का मान्य क्यों करें? क्या सुवर्ण को मल बा धूड़ (धूल) में पड़े को कोई त्यागता है? इससे यह सिद्ध हुआ कि बिना जैनियों के वैसे दूसरे कौन पक्षपाती, हठी, दुराग्रही विद्याहीन होगें?

नामंपि तस्स असुहं, जेष निदिठाइ मिच्छ पव्वाइ।

जेसि अणुसंगाड, धम्मीणवि होइ पाव मइ ॥

प्रक० भा०२। षष्ठी सू० २७। पृ० ६३८

जो जैन धर्म से विरुद्ध धर्म हैं वे सब मनुष्यों को पापी करने वाले हैं। इसलिए किसी के अन्य धर्म को न मानकर जैन धर्म ही को मानना श्रेष्ठ है।

समीक्षक:—इससे यह सिद्ध होता है कि सबसे बैर, विरोध, निन्दा, ईर्ष्या आदि दुष्ट कार्य रूप सागर में डुबाने वाला जैन मार्ग है। जैसे जैनी लोग सबके निन्दक हैं वैसा कोई भी दूसरा मत वाला महानिन्दक और अधर्मी न होगा। क्या एक ओर से सबकी निन्दा और अपनी अति प्रशंसा करना शठ मनुष्यों की बातें नहीं हैं? विवेकी लोग तो चाहें किसी मत के हों उनमें अच्छे को अच्छा, बुरे को बुरा कहते हैं।

मूल—जच्छ पसुमहिसलरका, पव्वं होमन्ति वाव नवमीए।

पूअन्ति तपि सढ्ढा, ही हीला वीयरायस्स ॥

पूर्व सूत्र में जो मिथ्यात्वी अर्थात् जैनमार्ग भिन्न सब मिथ्यात्वी और आप सम्यकत्वी अर्थात् अन्य सब पापी, जैन लोग सब पुण्यात्मा इसलिए जो कोई मिथ्यात्वी को धर्म का स्थापन करे, वही पापी है ॥७६॥

समीक्षक:—जैसे अन्य के स्थानों में चामुण्डा, कालिका, ज्वाला, प्रमुख के आगे पापनोभी अर्थात् दुर्गानौमी तिथ्यादि सब बुरे हैं वैसे क्या तुम्हारे पजूसण आदि व्रत बुरे नहीं हैं जिनसे महाकष्ट होता है? यहां वाममार्गियों की लीला का खण्डन तो ठीक है परन्तु जो शासन देवी और मरूत आदि देवी को मानते हैं उनका भी खण्डन करते तो अच्छा था। जो कहें कि हमारी देवी

हिसंक नहीं तो इनका कहना मिथ्या है क्योंकि शासन देवी ने एक पुरुष और दूसरे बकरे की आंखें निकाल ली थीं पुन: वह राक्षसी और दुर्गा कालिका की सगी बहन क्यों नहीं ? और अपने पच्चखाण आदि व्रतों को अतिश्रेष्ठ और नवमी आदि को दुष्ट कहना मूढ़ता की बात है क्योंकि दूसरे के उपवासों की तो निन्दा और अपने उपवासों की स्तुति करना मूर्खता की बात है। हां जो सत्यभाषणादि व्रत धारण करते हैं वे तो सबके लिए उत्तम हैं। जैनियों और अन्य किसी का उपवास सत्य नहीं है।

बेशाण बदियाणय, माहण, डुबाण जरकसि रकाणं।
भत्ता भरकट्टाणं, वियाणं जन्ति दूरेणं ।।

इसका मुख्य प्रयोजन यह हैं कि जो वेश्या, चारण, यादादि लोगों, ब्राह्मण, यक्ष, गणेशादिक मिथ्या दृष्टि देवी आदि देवताओं का भक्त है जो इनके मानने वाले हैं वें सब डूबने और डुबाने वाले हैं क्योंकि उन्हीं के पास वे सब वस्तुए माँगते हैं और वीतराग पुरुषों से दूर रहते हैं ।।८२।।

समीक्षक - अन्य मागियों के देवताओं को झूठ कहना और अपने देवताओं को सच कहना केवल पक्षपात की बात है। और वाममार्गियों की देवी आदि का निषेध करते हैं परन्तु जो "श्राद्धदिनकृत्य" के पृष्ठ ४६ में लिखा है कि शासनदेवी ने रात्रि में भोजन करने के कारण एक पुरुष के थपेड़ा मारा उसकी आंख निकाल डाली। उसके बदले बकरे की आंख निकाल कर उस मनुष्य के लगा दी। इस देवी को हिंसक क्यों नहीं मानते ? रत्नसार पृष्ठ ६७ में देखो क्या लिखा है— मरूतदेवी पथिकों को पत्थर की मूर्ति होकर सहाय करती थी। इसको भी वैसी क्यों नहीं मानते ?

मूल— सुद्धे मग्गे जाया, सुहेण गच्छत्ति सुद्ध मग्गमिं।
जे पुण अमग्गजाया, मग्गे गच्छन्ति तं चुय्यं ।।

सं० अर्थ इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो जैनकुल में जन्म लेकर मुक्ति को जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं परन्तु जैन भिन्न कुल में जन्मे हुए मित्यात्वी अन्यमार्गी मुक्ति को प्राप्त हों इसमें बड़ा आश्चर्य है। इसका फलितार्थ यह है कि जैनमत वाले ही मुक्ति को जाते हैं अन्य कोई नही। जो जैनमत का ग्रहण नहीं करते वे नरकगामी हैं।

समीक्षक—क्या जैनमत में कोई दुष्ट या नरकगामी नहीं होता ? सब ही मुक्ति में जाते हैं ? और अन्य कोई नहीं ? क्या यह उन्मतपन की बात नहीं है ? बिना भोले मनुष्यों के ऐसी बात कौन मान सकता है ?

मूल – तइया हमाण अहमा, कारणरहिया अनाणगव्वेण ।
जे जपंन्ति उसुत्त तेसि द्विद्विच्छ पंडिच्चं ।।

सं० अर्थ —जो जैनागम से विरुद्ध शास्त्रों को मानने वाले हैं वे अधमाधम हैं। चाहे कोई प्रयोजन भी सिद्ध होता हो तो जैनमत से विरूद्ध न बोले; न माने। चाहे कोई प्रयोजन सिद्ध होता है तो भी अन्य मत का त्याग कर दे ।।१२१।।

समीक्षक - तुम्हारे मूल पुरुष से लेकर आज तक जितने हो गये, और होंगे उन्होंने बिना दूसरे मत को गालिप्रदान के अन्य कुछ भी दूसरी बात न की और न करेंगे। भला जहां जहां जैनी लोग अपना प्रयोजन सिद्ध होता देखते हैं वहां चेलों के भी चेले बन जाते हैं तो ऐसी मिथ्या लम्बी चौड़ी बातों को हाकने में तनिक भी लज्जा नहीं आती यह बड़े शोक की बात है।

मूल जं वीरजिणस्स जिओ, मिरई उस्सुत्त लेस देसणओ।
सागरं कोडाकोढि हिंडइ अइभीमभवरणो ।।

स० अर्थ जो कोई ऐसा कहे कि जैन साधुओं में धर्म है, हमारे और अन्य में भी धर्म है तो वह मनुष्य क्रीड़ान क्रोड़ वर्ष तक नरक में रहकर फिर नीच जन्म पाता है ।।१२२।।

समीक्षक—वाहरे ! वाह !! विद्या के शत्रुओ ! तुमने यही विचारा होगा कि हमारे मिथ्या वचनों का कोई खण्डन न करे, इसलिए यह भयंकर वचन लिखा है सो असम्भव है। अब कहाँ तक तुमको समझावें। तुमने तो झूठ, निन्दा और अन्य मतों से वैर-विरोध करने पर ही कटिबद्ध होकर अपना प्रयोजन सिद्ध करना मोहनभोग के समान समझ लिया है।

उक्त प्रमाणों से ज्ञात होता है कि जैनमत की शिक्षा कितनी तंगदिली (संकीर्ण-भावना) से भरी हुई है। इनमें तकढूंढिया सम्प्रदाय भी है। उसकी शिक्षा तो बहुत ही संकीर्ण है। मकान न बनावे, कुएं-तालाब न बनावे। स्थाणुकवासि ढूंढिये इसीलिए ढूंढिये कहलाते हैं कि ढूंढो (गिरे हुए स्थानों) में रहते हैं। जैनमत ने हिन्दू जनता को अभक्ष्य पदार्थों के सेवन से बचाया, तप, त्याग में प्रतिष्ठा कराकर जनता में सादे रहन-सहन की भावना फैलायी। हिन्दुओं में दो ही सम्प्रदाय ऐसे हैं जिन्होंने मांस-मद्य को बुरा बताया। जैन और वैष्णव। जैनों ने संस्कृत में साहित्य भी पर्याप्त तैयार किया। किन्तु बौद्ध-जैन और अद्वैतवाद की शिक्षा ने हिन्दू जाति में जीवन के प्रति विरक्ति, निराशा और आत्महीनता पैदा कर दी। जीवन-विजय और जीवन-संघर्ष से लोगों को उदासीन कर दिया।

जैनमत में दिगम्बर, श्वेताम्बर दोनो में बड़े विद्वान् हुए हैं जिन्होंने उच्च श्रेणी के संस्कृत के ग्रन्थ लिखे हैं। आप्त परीक्षा में श्री स्वामी विद्यानन्द जी ने

साँख्य, वैशेषिक, न्याय और वेदान्त का खण्डन किया है। तत्वार्थ सूत्र वा मोक्षशास्त्र के लेखक थे श्री उमा स्वामी जी महाराज वा उमास्वाति जी। यह भी सुयोग्य विद्वान् और जैनमत के पूर्ण ज्ञाता थे। इनके शास्त्र 'तत्त्वार्थ सूत्र' का दोनों सम्प्रदायों में आदर है। तत्त्वार्थ सूत्र में भी जहाँ लोक-लोकान्तर का वर्णन किया गया है वह भी असम्भव ही बातें हैं। केवल विश्वास मात्र की बातें। पढ़िये तत्त्वार्थ सूत्र का भूगोल वर्णन।

३ सूत्र ७ से (पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान का छपा) पृष्ठ ८८

जम्बूद्वीपलवणादयाः शुभनामानो द्वीप समुद्राः।७।

द्विर्द्विविष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः।८।

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूदीपः।९।

यत्र भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ।१०।

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनील रुक्मि-शिखरिणौ वर्षधरपर्वताः।११।

द्विर्धातकीखण्डे।१२।

पुषकरार्धे च।१३।

प्राङ्मानुषोत्तरान मनुष्याः।१४।

आर्या म्लेच्छाश्च।१५।

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देबकुरूत्तरकुरूभ्यः।१६।

नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते।१७।

तिर्यग्योनीनां च।१८।

जम्बूद्वीप आदि शुभ नाम वाले द्वीप तथा लवण आदि शुभ नाम वाले समुद्र हैं।७।

वे सभी द्वीप और समुद्र वलय (चूड़ी) की आकृति वाले, पूर्व-पूर्व को वेष्टित करने वाले और दुगुने-दुगुने बिष्कम्भ (व्यास या विस्तार) वाले हैं।८।

उन सब के मध्य में जम्बूद्वीप है जो गोल है, एक लाख योजन विष्कम्भ वाला है और जिसके मध्य में मेरुपर्वत है।९।

जम्बूद्वीप भारतवर्ष, हैमवतवर्ष, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवत-वर्ष और ऐरावतवर्ष नामक सात क्षेत्र हैं।१०।

उन क्षेत्रों को पृथक् करने वाले और पूर्व-पश्चिम लम्बे हिमवान्, महा-हिमवान् निषध, नील, रुक्मी और शिखरी—ये छहः वर्षधर पर्वत हैं।११।

धातकीखण्ड में पर्वत तथा क्षेत्र जम्बूद्वीप से दोगुने है।१२।

पुष्करार्धद्वीप में भी इतने (धातकीखण्ड जितने) ही हैं।१३।

मानुषोत्तर नामक पर्वत के पहिले तक (इस ओर) ही मनुष्य हैं।१४।

वे आर्य और म्लेच्छ हैं।१५।

देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड भरत, ऐरावत तथा विदेह – ये सभी कर्मभूमियां हैं।१६।

मनुष्यों की स्थिति (आयु) उत्कृष्ट तीन पल्योपम और जघन्य अन्तर्मुहूर्त है।१७।

तिर्यंचों की स्थिति (आयु) भी उतनी ही है।१८।

द्वीप और समुद्र—मध्यलोक की आकृति झालर के समान है। यह बात द्वीप, समुद्रों के वर्णन से स्पष्ट है।

मध्यलोक में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं, जो द्वीप के बाद समुद्र और समुद्र के बाद द्वीप इस क्रम से अवस्थित हैं। उन सबके नाम शुभ ही हैं। यहां द्वीप-समुद्रों के व्यास, उनकी रचना और आकृति सम्बन्धी तीन बातें वर्णित हैं, जिनसे मध्यलोक का आकार ज्ञात होता है।

व्यास – जम्बूद्वीप का पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण विस्तार एक-एक लाख योजन है, लवण-समुद्र का उससे दुगुना है। इसी प्रकार धातकीखण्ड का लवण से, कालोदधि का धातकीखण्ड से, पुष्करवरद्वीप का कालोदधि से, पुकरोदधि का पुष्करवरद्वीप से दुगुना-दुगुना विष्कम्भ है। विष्कम्भ का यही क्रम अन्त तक चलता है। अन्तिम द्वीप स्वयम्भूरमण है, जिसमें अंतिम समुद्र स्वम्भूरमण का विष्कम्भ दुगुना है।

इस भूगोल वर्णन पर वही विश्वास कर सकता है जिसने बुद्धि को पूर्ण विश्राम दे दिया हो।

● ★ ●

जैनों का सम्यक् दर्शन और सम्यक्ज्ञान उतना ही है, जितना जैन पुस्तकों में लिखा है। शेष सब "मिथ्यात्व" है। चारित्र्य भी बड़ा कठोर है। और यह अच्छा भी रहा। जैन धर्म ने [illegible] को अभक्ष्य वस्तुओं से बचाया किन्तु यह खाने पीने की आज्ञायें भी बहुत तंग बना दी गयीं। कोई जैनी शहद नहीं खा सकता। दही नहीं खा सकता। आलू, शकरकन्दी, घुइया भी अभक्ष्य है। मूली, गाजर भी निषिद्ध है। एक बार जैन पत्रों में मूंगफली को लेकर बड़ा विवाद चला था। कुछ का कहना था कि यह भी कन्द है, और अभक्ष्य है। कुछ कहते थे कि यह फली है। कटहल, गूलर भी अभक्ष्य है। जलेबी भी नहीं खानी चाहिए। कीड़े, मकौड़े, जूं, खटमल की रक्षा में मनुष्य को कष्ट हो तो कोई परवाह नहीं। सत्यार्थ दर्पण में जंगली हानिकारक पशुओं के मार देने को जो स्वामी जी ने लिखा है, उसे बहुत बुरा बताया गया है। परन्तु जैनीजी ये प्रथम बार के सत्यार्थप्रकाश का लेख (जो कि पौराणिक मान्यता है) श्री स्वामी जी ने इस सत्यार्थ प्रकाश को अमान्य कर दिया था। वे पौराणिक विचार जैनी स्वामी जी के सिर थोप रहे हैं। माँस खाने न खाने पर श्री स्वामी जी की राय यह है :—

"प्रेक्षित अर्थात् यज्ञ में माँस खाने में कोई दोष नहीं—ऐसी पागलपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई हैं। इनसे पूछना चाहिए कि जो वैदिकी हिंसा, हिंसा न हो तो तुझे और तेरे कुटुम्ब को मारकर होम कर डालें तो क्या चिन्ता है? मांस भक्षण करने, मद्य पीने, स्त्री गमन करने आदि में कोई दोष नहीं है यह कहना पागलपन है। क्योंकि विना प्राणियों के पीड़ा दिए मांस प्राप्त नहीं होता। और विना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं। मद्यपान का सर्वथा निषेध ही है।"

आगे श्री स्वामी जी ने शास्त्र-प्रमाण देकर बताया है कि अश्वमेध, गोमेध के अर्थ याज्ञिक गलत समझे थे। (मेरी लिखी पुस्तक पशुबलि और वेद पढ़िए)।

यह लेख पढ़कर जैन पण्डित जी को सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। मांस-भक्षण के विरोध में, मद्यपान के विरोध में, यज्ञों में पशुबलि या नरबलि के विरोध में श्री स्वामी जी जैन ग्रन्थों के साथ है। कर्मवाद में स्वामी जी जैन शास्त्रों के साथ हैं। परन्तु कर्मफल स्वयं नहीं मिल जाता किन्तु एक विश्व-नियामक शक्ति कर्मफल देती है। जिसका नाम ईश्वर है। जैन यदि सर्वव्यापी ब्रह्म को मान लें तो सही मार्ग पर आ जायें। जैनी जी ने यह तो मान लिया है कि स्यादवाद ठीक नहीं है।

"यद्यपि ऊपर से स्याद्वाद ठीक नहीं जंचता। क्योंकि अस्तित्व, नास्तित्व, व्यक्तव्य, अव्यक्तव्य आदि परस्पर विरुद्ध धर्म एकत्र रहें। यह असम्भव दीखता

है। किन्तु विचार करने पर भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से वे सभी धर्म एक ही पदार्थ में सिद्ध हो जाते हैं।

यत्र-तत्र श्री जैन पण्डित जी ने यह लिखा है कि स्वामी जी इसे नहीं समझे। हमारा निवेदन है कि वास्तव में स्वामी जी तो क्या कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति जैनों की गप्पों को नहीं समझ सकता। प्रिय पण्डित जी! जब यह कोसों लम्बे-चौड़े मानव पृथिवी पर थे, तो पेड़, पशु-पक्षी भी क्या उसी अनुपात में बड़े थे? यदि हां, तो नदियां और पहाड़ भी उसी प्रकार बड़े थे? यदि थे, भूमि तो बड़ी थी नहीं इतनी ही थी फिर, यह स्थिति कैसे सम्भव थी? निर्वाह योग्य कैसे थी?

पण्डित जी ने स्वामी जी के इस माप को गलत बताया है कि जैनों का योजन १० सहस्र करोड़ का होता है। स्वामी जी ने यदि यह गलत लिखा है तो किसी से सुनकर ही लिखा होगा। परन्तु आप ने भी तो नहीं बताया कि जैन योजन कितना बड़ा होता है।

श्री स्वामी जी का प्रयोजन केवल इतना ही है कि जैन ग्रन्थों में भी पुराणों के समान बुद्धि+अग्राह्य बातें भरी पड़ी हैं। आयु और कद या भूखण्डों के माप क्या गप्पें नहीं है?

आप व्हेल मछली और पहाड़ी वनमानस के उदाहरण देते हैं। किन्तु यह थोड़े बहुत ही बड़ाई-छुटाई रखते हैं। कोसों का विस्तार—यह गप्प कौन मान सकता है? आपका सम्यक्दर्शन तो यह है।

"तत्त्वार्थ श्रद्धानम् सम्यक् दर्शनम्॥"

तत्त्वों के अर्थ में श्रद्धा करना सम्यक् दर्शन है। बात पूर्णतया सत्य है। तत्वज्ञान और उसके प्रति निष्ठा होनी चाहिए। किन्तु बुद्धि में न आने वाली बातें तो तत्वार्थ नहीं मानी जाएंगी।

बहुपत्नीत्व :—यद्यपि पुराने समय में अनेक पत्नियां रखने का बड़ा प्रचार हो गया था। चीन, मध्य एशिया, अरब में बहु पत्नीत्व होना एक शान थी। परन्तु वैदिक धर्म में यह प्रथा उत्तम नहीं मानी गयी। भगवान् राम ने इस एक पत्नीत्व प्रथा को पूर्णतया निभाया। किंतु जैन मत ने इसे (बहु पत्नीत्व प्रथा को) उत्तम ठहराया। सम्मान की बात बतायी चक्रवर्ती के १६ सहस्र पत्नियाँ हों और नारायण के १६ सहस्र स्त्रियां हों। श्रीकृष्ण जी के ऊपर यह लाँछन पौराणिकों ने जैन ग्रन्थों से ही लेकर लगाया जान पड़ता है। बहुत सी स्त्रियाँ रखना जैन धर्म में प्रतिष्ठा की बात मानी गई है।

(जैन धर्म प्रकाश, श्री ब्रह्मचारी पं० शीतलप्रसाद जी कृत पृष्ठ १९० नं० ५) ९६ सहस्त्र स्त्रियां जिनका भोग सम्राट एक साथ अपने इतने शरीर

बनाकर कर सकते हैं। उनमें महाबल होता है।

नं० ४ में चक्रवर्ती पर ८४ लाख हाथी, ८४ लाख रथ, १८ करोड़ घोड़े, ८४ करोड़ प्यादे, ३ करोड़ गोशालायें आदि सम्पत्ति होती है। आज संसार भर के राज्यों की भी इतनी सेना नहीं है। जबकि मानव संख्या पहले से बहुत बढ़ चुकी है। है न पूरें पड़ंग ? वाह ! वाह !! प्यारे जैन विद्वानो !!! यही है न सम्यक् दर्शन ? इन बातों पर करने, न करने से धर्म का (चरित्र का) क्या सम्बन्ध ? सत्य, न्याय, पक्षपात-रहित होना, विद्या पढ़ना, ब्रह्मचर्य रखना जैसा कि स्वामी जी ने ११ समुल्लास में सबके मानने योग्य धर्म बताया है, मिल कर उसी का प्रचार करो।

जैन, बौद्ध, पौराणिक, सिक्ख, आर्यसमाजी सब मिलकर आर्य संस्कृति का प्रचार करें। आर्य संस्कृति के अंग है—१. मदभेद, २. सहिष्णुता, ३. बुद्धिवाद, विचारों की छूट।

२--सदाचार, आवश्यक अणुव्रतों से लेकर महान् व्रतों को पालना।

३--आत्मा को नित्यता, कर्म फल पर विश्वास।

४--नारियों का सम्मान।

५--किसी प्राणी को कष्ट न पहुंचाना।

६--सूक्ष्म तत्त्व विवेक, स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति।

भूदान और जैन विचार-धारा

वेद में पृथ्वी की बड़ी महिमा है। भूमि को माता कहा गया है :—

"नमो मात्रे पृथिव्यै" (यजुः)

जीव मात्र की शरणदात्री भूमि ही है। नभश्चर, जलचर भी भूमि पर आश्रित हैं।

भूमि पर मनुष्य का अधिकार है। ईश्वर वाक्य है :—

"अहं भूमिमददामार्याय"

श्रेष्ठ लोगों को प्रभु ने भूमि प्रदान करी।

संघर्ष तो भूमि के लिए होते रहे हैं और हो रहे हैं। मनुष्य के लिए सर्व-रत्न दात्री और धात्री यह भूमि ही तो है। इसलिए इसे वसुन्धरा (वसु-धन रत्न, धरा—धारण करने वाली) कहा गया है।

इसकी महिमा में धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक सब ही साथी हैं।

ऐसी भूमि का यदि कोई भाग कोई किसी को दान करके देता है तो उसकी विशाल हृदयता का क्या कहना है। वह भूमि के रूप में उसे जीवन दे रहा है। और जो कोई किसी से भूमि छीनता है वह कठोर हृदय है और पराये जीवन को छीन रहा है। और जो आवश्यकता से अधिक भूमि को रखे हुए हैं वह दूसरों के जीवन साधन का परिग्रह करके हिंसा कर रहा है। आवश्यकता से अधिक की परिग्रहिता हिंसा है। वैदिक धर्म कहता है कि यदि आवश्यकता से अधिक आर्थिक वस्तु इकट्ठी करो तो इरादा इतना ऊंचा रखो, भावना इतनी उदात्त बनाओ कि स्वार्थ के लिए वह न हो किन्तु "भूतेभ्य-स्त्वांप्रतिग्रहणामि" प्राणीमात्र के लिए वह वस्तुयें इकट्ठी करो। संरक्षक रूप में अधिकारी रहो, स्वामी रूप में नहीं।

जिनको उचित आवश्यकता हो और जिन पर अपने गुजारे से अधिक आर्थिक साधन (भूम्यादि) हो उन्हें दान कर देना चाहिए। इससे दाता में उदात्त भावना उत्पन्न होगी और प्रतिग्रहिता में कृतज्ञता का भाव उदय होगा इसलिए आर्य धर्मशास्त्रों में भूम्यादि दान का बड़ा माहात्म्य वर्णन किया गया है। महाभारत में तो यथाशक्ति भूमि दान करना बहुत ही आवश्यक बताया गया है। आर्यनरेश और भूमिपति सदा भूमिदान करके योग्य दानपात्रों को देते रहे हैं।

भारतीय विचारधारा की इस उदात्त दृष्टि को ध्यान में रखते हुए हमें विविध विचारधाराओं की समीक्षा करनी चाहिए। इसी आधार पर प्रस्तुत लेख में हम सर्वप्रथम जैन धर्म के भूमिदान सम्बन्धी विचारों की समीक्षा करेंगे।

जैन मत यद्यपि अहिंसा का पोषक होता है पर उसकी लीला निराली ही है। इस मत में भूमि का दान वर्जित किया गया है। भूदान को "महाघोर पाप का बंध" बताया गया है। पढ़िये—

"अब देने योग्य नहीं ऐसे खोटे दान कुदान ही हैं। तिनकू देना योग्य नहीं। जाने हल, फावड़ा, खुरपादि का निकर भूमि विदारण करिये और महान् हिंसा प्रवर्ते। महा आरम्भ पंचेन्द्रियादिक सर्प, मूष, सूकर, हिरणादिक बड़े-बड़े जीवन हूं धान्यादिक फल के बाधक जान मारिये हैं। भूमि की ममता करि भाई-भाई परस्पर मरि-मरि जावे तीव्र रोग को कारण ऐसा भूमिदान तैं महाघोर पाप का बंध जानो।"

रत्नकरंड श्रावकाचार पृ० २६६-२६७ पं० सदासुखलाल कासलीवाल का टीका।

हम जैनी बन्धुओं से पूछना चाहते हैं कि यदि उपर्युक्त दोषों के कारण भूमि का दान न किया जाये तो अपने पास भूमि रखने में क्या उक्त दोष न रहेंगे ?

भूमि जिस पर भी रहेगी वह खेती करेगा और खेती की रक्षा भी जीवों से अवश्य करेगा। और विवाद भी होंगे ही तो क्या इन कारणों से खेती बन्द करके भूमि को यूं ही "परती" पड़ी रहने दिया जाये ?

यदि सस्यवृक्षादि विहीन भूमि पड़ी रहे तो हमारे जैनी भाई क्या खाकर जियेंगे या जी रहे हैं।

आहार तो जैन तीर्थंकरों तक को चाहिए। और ऐसे हिंसादि दोष मिलों में, सब उद्योग धंधों में, व्यापार में भी विद्यमान हैं। तो इन सबसे जैन सेठों से अलग हो जाना चाहिए। फिर देखें कैसे मंदिर बनते हैं, और कैसे मेले

लगते हैं, और कहां से ऐसे गपोड़ ग्रन्थों का प्रकाशन होता है। दोषों की जड़ तो भूमि धन आदि सब प्रकार की पूंजी है ही तो फिर क्यों वे पूंजीपति बने हुए हैं ? अधिकांश पूंजीपति जैन हैं। फिर इस "सर्व मिथ्यात्व" को छोड़ते और नंग धड़ंग घूमते, पर केवल हवा खाकर।

भूमिदान तो घोर पाप, पर भूमि अपने पास रखना पाप नहीं क्या अनोखा सिद्धान्त है ?

ऐसे मत को मानने वाले आज "पंच अणुव्रत" का "प्रोपेगेण्डा" करके जनता के गुरु बनना चाहते हैं।

इसी पुस्तक के इसी प्रकरण में लोहदान, स्वर्णदान और कन्यादान का भी निषेध किया गया है। किसी गरीब को एक तवा भी दान न दिया जाय, स्वर्णमुद्रा का दान भी नहीं और मालती वसन्त आदि औषध जिनमें स्वर्ण मिला हो किसी रोगी को दान न दिये जायें। इन उपकार के कामों को भी बन्द ही करना पड़ेगा क्योंकि लोहदान और स्वर्णदान जैन मत में पाप है।

कन्यादान को भी जैनी जी बुरा बता रहे हैं तो फिर क्या कन्या को यूं ही रहने दिया जाय ? या जैन मत की "अंजिका" बना दिया जाय ?

जैनी जी के मत में अपनी कन्या न होने पर दूसरों की कन्याओं का दान करना भी बुरा है। अब विचारिये कि किसी गरीब की लड़की का विवाह इस रूप में हो जाता है, किसी गरीब का घर बस जाता है तो यह भी उन्हें पाप समझ पड़ता है। है न, देख जलने की बातें। खाना आबादी इन्हें पसन्द नहीं, खाना बरबादी पसन्द है। अच्छा जैनी जी ! उजाड़ दो संसार को। पर अपने ही घर से इस धर्म का परिवर्तन करो।

प्राचीन राजा-महाराजा ब्राह्मणों को भूमिदान दिया करते थे। निर्धन ब्राह्मणों की कन्याओं का दान भी करके धनी दानी अपने को पुण्यात्मा बनाते विद्या, बुद्धिहीन सेवकजन।

अत: ऋषिवर दयानन्द ने विश्व को दृष्टि में रखकर अपने सिद्धान्त निर्धारित किए हैं और उनके इन सिद्धान्तों का समर्थन श्रुति स्मृति पुराणों से भी हो रहा है। श्री भीमराव अम्बेडकर जैसे बुद्धिजीवी, स्व० पंडित भगवान-दास और पंडित सम्पूर्णानन्द जैसे ज्ञानियों को किस वर्ग में रखा जाएगा ? पौराणिकों को हठधर्मी छोड़कर इस पर विचार करना चाहिए। श्री झा महोदय के विचारों का माधवाचार्य जैसे संकीर्ण बुद्धि पंडित क्या उत्तर दे सकते हैं ?

सनातनधर्म को यदि विश्वव्यापी बनाना है तो ऋषि दयानन्द का दिखाया मार्ग पंडितों को अपनाना ही पड़ेगा। आर्य भाइयों को भी संकीर्णता

से ऊपर उठकर क्रियात्मक रूप से काम करना होगा। अभी बरेली में एक विवाह गुणकर्मानुसार हुआ है। पुत्री है स्वर्गीय डा० कुन्दनलाल जी की जो आचरण में एक यथार्थ ब्राह्मण थे और जन्मना कायस्थ। वर जन्मना और कर्मणा है ब्राह्मण। लड़की भी शिक्षित और ज्ञानमार्ग पर चलने वाली। लड़का भी ज्ञानमार्गी। आर्यों को मिथ्या जाति-पांति के बंधन तोड़ने चाहिये थे। जैनी जी को ब्राह्मणों का यह लाभ चुभा होगा। बस इसी ईर्षा वृत्ति का यहां इज-हार किया है।

आजकल श्री विनोबा जी का भूदान यज्ञ चल रहा है। जैनों के पास भी आवश्यकता से बहुत अधिक भूमि है। इस ग्रन्थ के होते हुए वे दान दे सकेंगे या नहीं? श्री विनोबा जी विचारें। जैनमत उनके पूज्य गुरु का प्यारा मत है और उनके अन्य चेलों का भी। पर इस ग्रन्थ के बताये दोषों से पूर्ण भूमि को तो पास भी रखने से पाप लगेगा। अत: जैन लोगों को अपनी सब भूमि यूं ही छोड़ देनी चाहिये। सर्वोदय वाले अधिकार न करेंगे तो कम्युनिस्ट कब्जा जमा ही लेंगे। जैनी जी हिंसा से बच जायेंगे।

जैनों की इस अति "हिंसावाद" ने देश के उत्कर्ष में कितने कितने रोड़े अटकाये हैं यह जानने के लिये उपर्युक्त उदाहरण पर्याप्त है।

इन्हीं बातों को जानकर ऋषि दयानन्द ने बारहवां समुल्लास लिखकर जैनमत की आलोचना की। इन मत-मतान्तरों के मिथ्या विश्वासों ने देशहित का, मानव कल्याण का कितना विघात किया है यह जानकर ऋषि दयानन्द ने खण्डन के द्वारा इन मतों को निर्विष करने का प्रयत्न किया।

१३वां समुल्लास

ईसाई मत की परीक्षा

संत यीशु जिस जाति में उत्पन्न हुए वह पैलेस्टाइन में रहने वाली यहूदी जाति थी। इस जाति ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था और यरोशलम (शान्ति का नगर) में अपनी राजधानी और बड़ा धर्ममंदिर बना लिया था। किन्तु कई सौ वर्ष पश्चात् यह जाति रोमन साम्राज्य के आधीन हो गई और इन यहूदियों की दशा वैसी ही तब थी जैसे कि अंग्रेजी राज्य के समय हिन्दू पराधीनता में पड़े हुए अपने अन्ध-विश्वासों और धर्म के नाम पर चलाये पाखण्डों को नहीं त्यागते थे। पुरोहित, पण्डे, गुरु, गोस्वामी और साधु सब अपनी आजीविका में लगे थे। और जीविका चलती थी इनकी इन्हीं पाखण्डों से। यही दशा यहूदियों की थी कि अपने धार्मिक पाखण्डों में लिप्त थे। जाति को जगाने के स्थान पर जाति को मूर्खता में डाले रखना ही इन्हें पसन्द था। तब अपने देश-जाति के सुधार की भावना संत यीशु में जागृत हुई और उन्होंने यहूदी धर्मगुरुओं-महन्तों को फटकारना प्रारम्भ किया। इससे यहूदी गुरु और महन्त चिढ़ गये तथा बेचारे यीशु पर राजनैतिक अपराध लगा-कर कि यीशु अपने को यहूदियों का राजा कहता है, क्रूस पर चढ़ाकर मार डाला। उसके शिष्यों ने उसके नाम से मत चलाया और वे धीरे-धीरे वा रोमन सम्राट् तक को ईसाई बनाने में सफल हुए। यीशु ने कोई पुस्तक नहीं लिखी थी। केवल मौखिक उपदेश दिये थे जो उसके अनेक शिष्यों ने लिखे थे। वे ही इंजील-नाम से प्रसिद्ध पुस्तकें हुईं, जिनमें से ईसाई—धर्मगुरुओं ने केवल चार को मान्यता दी। शेष अमान्य कर दी गयीं। तौरेत और जबूर यहूदियों

के धर्मग्रन्थ हैं जो हजरत मूसा, हजरत दाऊद आदि के रचे हुए हैं। इन्हें यहूदी ईश्वरीय पुस्तकें मानते हैं। और ईसाई भी इन्हें अपना धर्म ग्रन्थ स्वीकार करते हैं। यह सब बाइबिल के नाम से अनेक भाषाओं में है। बाइबिल में समय-समय पर परिवर्तन भी हुए हैं। श्री स्वामी जी के समय में जो बाइबिल थी, उसी की आलोचना उन्होंने की है।

"प्रारम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को सृजा। और पृथ्वी बेडौल तथा सूनी थी। और गहराव पर अंधियारा था। और ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था।" उत्पत्ति १।१।२॥

समीक्षक—आरम्भ किसको कहते हो?

ईसाई—सृष्टि की प्रथमोत्पत्ति को।

समीक्षक—क्या यही सृष्टि प्रथम हुई इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी?

ईसाई हम नहीं जानते हुई थी या नहीं। ईश्वर जाने।

समीक्षक—जब नहीं जानते तो इस पुस्तक पर विश्वास क्यों किया कि जिससे सन्देह का निवारण नहीं हो सकता? और इसी के भरोसे लोगों को उपदेश कर इस सन्देह से भरे हुए मत में क्यों फंसाते हो? और कि सन्देह सर्वशंकानिवारक वेद मत को स्वीकार क्यों नहीं करते? जब तुम ईश्वर की सृष्टि का हाल नहीं जानते तो ईश्वर को कैसे जानते होगे? आकाश किसको मानते हो?

ईसाई – पोल और ऊपर को।

समीक्षक पोल की उत्पत्ति किस प्रकार हुई क्योंकि वह विभु पदार्थ और अति सूक्ष्म है। और ऊपर नीचे एक सा है। जब आकाश नहीं सृजा था तब पोल और आकाश था वा नहीं? जो नहीं था तो ईश्वर, जगत् का कारण (प्रकृति) और जीव कहाँ रहते थे? बिना आकाश के कोई पदार्थ स्थित नहीं हो सकता अतः तुम्हारी बाइबिल का कथन युक्त नहीं। ईश्वर बेडौल, ईश्वर का ज्ञान, कर्म बेडौल होता है वा डौलवाला?

(नोट: –यहां 'बिना आकाश के ईश्वर नहीं रह सकता' जो ऊपर प्रश्न है, वह बाइबिली ईश्वर के विषय में है। अगली पंक्तियों से स्पष्ट होगा कि बाइबिली ईश्वर साकार पदार्थ है। वैदिक ईश्वर तो आकाश में भी व्यापक है। उसके विषय में प्रश्न नहीं हो सकता। वह आकाश से भी सूक्ष्म है।)

ईसाई—बेडौल का अर्थ है कि पृथ्वी ऊंची-नीची थी।

समीक्षक तो क्या अब ऊंची-नीची नहीं है? ईश्वर का कार्य बेडौल नहीं हो सकता क्योंकि वह सर्वज्ञ है। उसके कार्य में न भूल, न चूक। बाइबिल

में ईश्वर की सृष्टि बेडौल लिखी अतः यह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकती। ईश्वर का आत्मा क्या पदार्थ है?

ईसाई – चेतन।

समीक्षक वह साकार है वा निराकार? एक देशी है वा सर्वव्यापक?

ईसाई—निराकार, चेतन और व्यापक है परन्तु किसी एक सनाई पर्वत, चौथा आसमान आदि पदार्थों में विशेषकर रहता है।

समीक्षक जो निराकार है उसे किसने देखा? और व्यापक का जल पर डोलना कभी नहीं हो सकता। भला जब ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था तब ईश्वर कहां था? इससे यही सिद्ध होता है कि ईश्वर का शरीर कहीं अन्यत्र स्थित हो गया होगा! अथवा आत्मा के एक टुकड़े को जल पर डुलाया होगा! जो ऐसा है तो विभु और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता। जो विभु नहीं तो जगत् की रचना, धारण और पालन तथा जीवों के कर्मों की व्यवस्था एवं प्रलय कभी नहीं कर सकता। क्योंकि जिस पदार्थ का स्वरूप एकदेशीय उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी एकदेशीय होते हैं। जो ऐसा है तो वह ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, अनन्त, गुण, कर्म, स्वभावयुक्त, सच्चिदानन्द-स्वरूप, नित्य शुद्धबुद्ध, मुक्तस्वभाव, अनादि, अनन्तादि लक्षणयुक्त वेदों में कहा है। उसी को मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा नहीं।

उक्त लेख में ऋषि ने बाइबिल के वाक्यों को दार्शनिक कसौटी पर चढ़ाकर रद्दी बना दिया है। बाइबिल और क़ुरआन् के वाक्यों का दर्शन से क्या सम्बन्ध? इस्रायली और अरब दोनों ही अर्धसभ्य पशुचारक थे। सूक्ष्म दार्शनिक विचारधारा से सहस्रों कोस दूर थे। मोटी-मोटी बातें ही यह लोग अपनी कल्पनाओं में कहा करते थे। रोमन सम्राटों के समय में ईसाईयों ने और ख़लीफ़ा हारूं रशीद के समय में अरबों ने यूनानी देशों से सम्पर्क किया। ईसाई पादरी और अरबी मौलवी इसका कड़ा विरोध करते रहे। स्पेन के ख़लीफ़ा के पुस्तकालय में सहस्रों पुस्तकें दार्शनिक और गणित सम्बन्धी थीं। किन्तु इसके मरने पर जब शासन इनके मंत्री के हाथ में आया तो उसने सारे पुस्तकालय को भस्म करा दिया। खलीफ़ा उमर ने भी सिकन्दरिया के पुस्तकालय को भस्म करा दिया था। नरपिशाच बख्त्यार खिलजी ने जब नालंदा विश्वविद्यालय का विध्वंस किया तो लाखों रुपयों की अमूल्य पुस्तकें फूंक डालीं। ईसाइयों ने, मुसलमानों ने सदा ही ज्ञान का विरोध किया है। यूरोप में वैज्ञानिकों, गणित के प्रचारकों पर पादरियों ने घोर अत्याचार किये थे (पढ़िये धर्म और विज्ञान का संघर्ष) परन्तु वैज्ञानिकों की विजय हुई। पादरी लोग आज भी मन विज्ञान के विरुद्ध हैं क्योंकि बाइबिल की बातें आज भी विज्ञान-विरुद्ध हैं। यह तो केवल आर्य धर्म की ही विशेषता है कि भारत में कभी भी तर्क का,

बुद्धिवाद का विरोध नहीं हुआ। अनात्मवाद, अनीश्वरवाद की भी तरंगें उठती रहीं और अध्यात्मवाद आस्तिकता इन्हें शमन भी करती रही। क्षणिकवाद, प्रतीत्यसमुत्पादवाद (बौद्ध), स्यादवाद (जैन) और अद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद सब ही दृष्टियों से भारत के विद्वानों ने जगत पर विचार किया, और केवल बुद्धिवाद का आश्रय लेकर तलवार कभी नहीं चलायी।

"ईश्वर का आत्मा जलों पर डोलता था" यह बाइबिल का कथन और "अलल् माये अर्श" अर्थात् खुदा का अर्श पानी पर था, कुरान का वचन दोनों ही वाक्य वेद के इस मन्त्र से लिये गये—

"महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपांसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे।"

अर्थात् वह परम महान् यक्ष पूज्य परमात्मा सलिल (जल) अर्थात् सृष्टि के आदि के गतिशील परमाणुओं के पृष्ठ पर था। तात्पर्य है कि उन परमाणुओं को ईश्वर ने ही गति दी थी।

इस वेद वाक्य को बाइबिल और कुरान ने अपने ढंग पर कहा और साधारण ढंग से वर्णन किया। यदि वाक्यों का ठीक प्रयोग करते और दार्शनिक बुद्धि से काम लेते तो कोई भी शंका न होती। 'ईश्वर ने भूमि और आकाश को सृजा' बाइबिल का यह कथन और,

"खलकल्लाहो समावाते वल् अर्जा बिल हक्की।"

"खुदा ने सत्य से पृथ्वी और आकाशों को रचा" कुरान के यह कथन भावमात्र है वेद के "स दाधार पृथिवीम् द्यामुतेमां" मन्त्र के।

यदि बाइबिल और कुरआन् वाले वेदों से मिलाकर अपने ग्रन्थ पढ़ें तो इनके ग्रन्थ भी ठीक हो जायें तथा साम्प्रदायिक एकता को भी लाभ पहुंचे। किन्तु यह दुराग्रही मत वाले अपने तर्क-हीन वाक्यों वाले ग्रन्थों पर ही जमे बैठे हैं बाइबिल के ईश्वर को देखिये :—

"फिर ईश्वर उसे (इब्राहीम को) ममरे के बलूतों में दिखाई दिया। और वह दिन को धाम के समय अपने तम्बू के द्वार पर बैठा था। और उसने अपनी आँखें 'उठायीं' और क्या देखा कि तीन मनुष्य उसके पास खड़े हैं। और उन्हें देख के वह तम्बू के द्वार पर से उनकी भेंट को दौड़ा। और भूमि तक दण्डवत् की। और कहा हे मेरे स्वामी यदि मैंने आपकी दृष्टि में अनुग्रह पाया है तो मैं आपकी विनति करता हूं कि अपने दास के पास से चले न जाइये। इच्छा होय तो थोड़ा जल लाया जाय और अपने चरण धोइये और पेड़ तले विश्राम कीजिये। और मैं एक कौर रोटी लाऊं और आप तृप्त होइए, उसके पीछे आगे बढ़िए। क्योंकि आप इसीलिए अपने दास के पास

आए हैं। तब वे बोले कि जैसा तूने कहा है वैसा कर। और इब्राहीम तम्बू में सारा के पास उतावली से गया और उसे कहा कि फुरती कर। और तीन नपुआ चोखा पिसान लेके गूंध और फुलके पका। और इब्राहीम झुण्ड को और दौड़ा गया और एक अच्छा कोमल बछड़ा ले के दास को दिया। और उसने भी उसे सिद्ध करने में चटक किया और उसने मक्खन और दूध और वह बछड़ा, जो पकाया था, लिया और उनके आगे धरा। और आप उनके पास पेड़ तले खड़ा और उन्होंने खाया"

(तौ० १८ आ० १-८)

समीक्षा—अब देखिए सज्जन लोगो! जिनका ईश्वर बछड़े का मांस खावे उसके उपासक गाय, बछड़े आदि पशुओं को क्यों छोड़ें? जिसको कुछ दया नहीं और मांस के खाने में आतुर रहे वह बिना हिंसक मनुष्य के ईश्वर कभी हो सकता है? और ईश्वर के साथ दो मनुष्य न जाने कौन थे? इससे विदित होता है कि जंगली मनुष्यों की एक मंडली थी। उनका जो प्रधान मनुष्य था उसका नाम बाइबिल में ईश्वर रखा होगा। इन्हीं बातों से बुद्धिमान् लोग इनकी पुस्तक को ईश्वरकृत नहीं मान सकते और न ऐसे को ईश्वर समझते हैं।

विचारशीलो! कहाँ उपनिषद्, वेद, दर्शन द्वारा प्रतिपादित ईश्वर तत्व और कहां यह गपोड़ा भरी बातें! दर्शन, योग, वेदान्त के देश में पादरी बाइबिल को बड़े अभिमान से लाये, इन्हें कोई लज्जा नहीं हुई। इसीलिए यहां के किसी विद्वान् ने बाइबिल का आदर कभी नहीं किया। और जैकालियट महोदय, जो फ्रेन्च थे और फ्रान्स की ओर से चन्द्र नगर में जज थे; ने संस्कृत पढ़कर आर्य ग्रन्थों से बाइबिल की तुलना करी तो 'बाइबिल इन इण्डिया' पुस्तक लिखकर आर्य शास्त्रों का महत्व और बाइबिल की हीनता दिखाई। भारत में अनपढ़, मूर्ख और धनहीन ही ईसाई बने। विद्वान् कोई भी ईसाई नहीं हुआ। स्वामी जी के इस कथन का कि यह जंगली लोगों की मंडली होगी; ईसाइयों पर कोई उतर नहीं है। और थी भी यही बात कि गड़ेरियों की मंडली थी और उनकी ही ये बातें हैं। ईश्वर द्वारा यही कि आदम को बनाना, उसकी पसली से हव्वा को रचना फिर उन दोनों को बाग में रखना। फिर हव्वा को सर्प-रूप में आकर शैतान का बहकाना और जिस वृक्ष के फल खाने से ईश्वर ने आदम और हव्वा को रोका था, उस वृक्ष के जो बुद्धि का वृक्ष था, हव्वा का फल खाना और आदम को भी खिलाना। इससे उन दोनों की आंखें खुलना अर्थात् विवेक का जागना और यह सब जान लेने पर ईर्ष्या में भर कर आदम और हव्वा को ईश्वर द्वारा स्वर्ग से निकाल कर पृथ्वी पर फेंक देना आदि गपोड़ों की आलोचना ऋषि ने की है। अनेकों मुस्लिम विद्वानों का मत है कि आदम और हव्वा पृथ्वी पर भारतवर्ष में ही फेंके गए।

सर इकबाल साहब लिखते हैं :—

ऐ हिमालय ! दास्तां उस वक्त की कोई सुना
मस्कने आवा-ए-इन्सां जब बना दामन तेरा

मौलाना सुलेमान नदवी लिखते हैं —

"हज़रत आदम और हव्वा हिमालय पर ही भेजे गए ।"

जोश मलीहाबादी साहब कहते हैं—

शर्मामे आस्मानी से महकता है चमन मेरा
जो मुहब्बत हज़रते आदम का है वह है वतन मेरा ।
ज़माने में न जब बनते थे घर, हम थे मकाँ वाले ।
जहां शागिर्द है उस्ताद हैं हिन्दोस्तां वाले ।।

वह पढ़ने योग्य है । उसे पढ़कर बाइबिल की ठीक-ठीक स्थिति ज्ञात हो जाती है कि यह पुस्तक (बाइबिल) अत्यन्त साधारण और जंगली एवम् अपढ़ लोगों के विचारों से ही भरी है । लूत की लड़कियों का कृत्य तो अत्यन्त निन्दनीय ठहरता है । अपने पिता को शराब पिलाकर उससे भोग करना । शोक ! महाशोक ! १८" और ईश्वर ने अबरिहाम से कहा कि तू और तेरे पीछे तेरा बेटा उनकी पीढ़ियों में मेरे नियम को माने । तुम मेरा नियम जो मुझ से और तुम से और तेरे पीछे तेरे वंश से है जिसे तुम मानोगे सो यह है कि तुम में से हरएक पुरुष का खतनः किया जाए । और तुम अपने शरीर की खलड़ी काटो और वह मेरे और तुम्हारे मध्य में नियम का चिन्ह होगा । और तुम्हारी पीढ़ियों में हरएक आठ दिन के पुरुष का खतनः किया जाय । जो घर में उत्पन्न होए अथवा जो किसी परदेशी से ; जो तेरे वंश का न हो ; रुपये से मोल लिया गया हो ; अवश्य उसका खतनः किया जाए और मेरा नियम तुम्हारे मांस में सर्वदा नियम के लिए होगा । और जो अखतनः बालक जिसकी खलड़ी का खतनः न हुआ हो तो प्राणी अपने लोग से कट जाए कि उसने मेरा नियम तोड़ा है ।। तौ० पर्व १७ । आ० ९।१०।११।१२।१३।१४ ।।

समीक्षा—अब देखिए ईश्वर की अन्यथा आज्ञा ! कि जो यह खतनः करना ईश्वर को इष्ट होता तो उस चमड़े को आदि सृष्टि में बनाता ही नहीं और जो यह बनाया गया है वह रक्षार्थ है ; जैसा आंख के ऊपर का चमड़ा । क्योंकि वह गुप्त स्थल अति कोमल है । जो उस पर चमड़ा न हो तो एक कीड़ी के भी काटने और थोड़ी सी चोट लगने से बहुत सा दुःख होवे और वह लघुशंका के पश्चात् वह मूत्रांश कपड़ों में न लगे इत्यादि बातों के लिए है। इसका काटना बुरा है और अब ईसाई लोग इस आज्ञा को क्यों नहीं मानते ?

यह आज्ञा सदा के लिए है । इसके न करने से ईसा की गवाही जोकि व्यवस्था के पुस्तक का एक बिन्दु भी झूठा नहीं है ; मिथ्या हो गई । इसका सोच-विचार ईसाई कुछ भी नहीं करते ।

यह खतने की प्रथा भी इब्राहीम ने अन्य जातियों से यहूदियों को अलग करने के लिए चलाई थी । है यह बिल्कुल अवैज्ञानिक और जगली रीति । क्योंकि सात धातुओं का सात प्रकार का मल अलग-अलग निकलता रहता है । एक का मल पसीना है । पसीना न निकले तो रक्त दूषित हो जाये और अनेक रोग हो जाये । वीर्य का मल भी निकलता है जो मूत्रेन्द्रिय पर श्वेत रंग का मल आता है । यह खाल कटने से वह स्थान कडा हो जाता है । अतः मल निकलना कम हो जाता है । और कडा हुआ मल वीर्य में ही रह जाता है । ऐसे वीर्य की सन्तान अति कामी, क्रोधी, बुद्धिहीन, असहिष्णु होती हैं । इसका प्रमाण प्रत्यक्ष है । संसार भर में सबसे पिछड़े हुए मुसलमान हैं । गणित, दर्शन, विज्ञान में कोई मुसलमान प्रतिभाशाली नहीं मिलेगा । असहिष्णुता, क्रोध और कामातुरता से इस्लामी इतिहास भरा पड़ा है । बाइबिल की यह बात अब यहूदियों में नहीं रही. ईसाइयों ने तो आरम्भ में ही त्याग दी । मसीह के प्रमुख शिष्य पीटर ने बडा जोर दिया खतने पर किन्तु पौलुस ने खतने की उपेक्षा की तो सब ईसाइयों में से यह प्रथा बन्द हो गई । केवल रूढ़ि-भक्त मुसलमान ही कट्टरता से इसका पालन कर रहे हैं । ईसाई मत में मृत को गाड़ने की आज्ञा है । इस पर श्री स्वामी जी नेलिखा है—"मृतकों को गाडने से संसार की बडी हानी होती है । क्योंकि वह सड़ के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है" ।

ईसाई "देखो जिससे प्रीति हो उसे जलाना अच्छी बात नहीं है । और गाड़ना कि उनको सुला देना जैसा है । इसलिए गाड़ना अच्छा है" ।

स्वामी जी – "जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर में क्यों नहीं रखते ? और गाडते भी क्यों हो ? जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह निकल गया । अब दुर्गन्धमय देह से क्या प्रीति ? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाडते हो ? ······ उसके मुख, आंख और शरीर पर धूल, पत्थर. ईंट और चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना कौन सी प्रीति का काम है ? और सन्दूक में डाल के गाडने से बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवी से निकल वायु को बिगाडकर दारुण रोगोत्पत्ति करता है । दूसरा एक मुर्दे के लिए कम से कम छः हाथ लम्बी और चार हाथ चौड़ी भूमि चाहिए । इसी हिसाब से सौ, हजार वा लाख अथवा करोड़ों मनुष्यों के लिए कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है" !

ऋषि का यह कथन कितना युक्तियुक्त है । मुर्दे गाडने से वायु का दूषित होना और भूमि का बरबाद होना । जितने बीच में मृतक पड़े हैं उतने भूमि-

भाग में सहस्रों मन अन्न और फल उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए अब यूरोप में विद्युत् से फूंकने का रिवाज चल रहा है। महान् नाटककार बर्नार्ड शॉ लिख गया था कि उसे जलाया जाए। भारत में भी श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर ने मरने पर जलाने का कह रखा था। वे जलाई गयीं। और एक और थी दक्षिणी महिला ईसाई जलाई गयीं। भारत के ईसाईयों को यह बुरी प्रथा बन्द कर देनी चाहिए। रहे मुसलमान सो इनको तो बुद्धि से बैर है। रूढ़ियों पर चलने ही में धर्म समझते हैं। यह गाड़ने की प्रथा अरब आदि पश्चिमी एशिया के देशों में इस कारण चली कि वहां रेतीली भूमि थी। लकड़ी का भी अभाव था। ईरानी अग्नि को इतना पूज्य मानते थे कि उसमें मुर्दा फूंकना अग्नि का अपमान समझते थे। किन्तु मृतकों को गाड़ते नहीं थे, न अब गाड़ते हैं। यूं ही रखे रहने देते हैं। अब तो वैज्ञानिक युग है। सब ही देशों में यह बुरी प्रथा बन्द हो जानी चाहिए। मतों के अन्ध-विश्वासों में सुधार होना चाहिए। यही ऋषि दयानन्द चाहते थे। इस प्रकार से तो कब्र पूजा भी चलती है। भारत के मुसलमान तो कब्र पूजाओं में यातायात के अपार कष्ट सहते हैं और लाखों रुपया भी व्यय करते हैं। हमने पीराने कलियर में बदायूं के उर्स देखे हैं। मुसलमानों की कब्र पर स्त्री पर दया आती है।

"और कितने दिनों के पीछे यों हुआ कि काइन भूमि के फलों में से परमेश्वर के लिए भेंट लाया। और हाबील भी अपनी झुण्ड में से पहिलौठी और मोटी-मोटी लाया और परमेश्वर ने हाबील का और उसकी भेंट का आदर किया। परन्तु काइन का और उसकी भेंट का आदर न किया इसलिए काइन अति कुपित हुआ और अपना मुंह फुलाया। तब परमेश्वर ने काइन से कहा कि तू क्यों क्रुद्ध है और तेरा मुंह क्यूं फूल गया" ॥तौ० पर्व ४। आ० ३।४।५।६॥

समीक्षक—यदि ईश्वर मांसाहारी न होता तो भेड़ की भेंट और हाबिल का सत्कार और काइन का तथा उसकी भेंट का तिरस्कार क्यों करता? और ऐसा झगड़ा लगाने और हाबील के मृत्यु का कारण भी ईश्वर ही हुआ और जैसे आपस में मनुष्य लोग एक दूसरे से बातें करते हैं वैसी ईसाइयों के ईश्वर की बातें है। बगीचे में आना-जाना उसका बनाना भी मनुष्यों का कार्य है। विदित होता है कि यह बाइबिल मनुष्यों की बनाई है ईश्वर की नहीं।

श्री स्वामी जी का तर्क कितना पुष्ट है। इसका ईसाइयों पर उत्तर ही क्या है? वस्तुत: बाइबिल की यह कहानी काइन (किसान, हाबील पशु-पालक) की चढ़ा-उतरी की कहानी है। यह यहूदी पशुपालक थे। मिश्र के लोग भारत के जन कृषक थे। उनके यज्ञों से अपनी पशुबलियों को उत्तम

ठहराने के लिए यह कहानी गढ़ी है। पशुबलि की रीति डालने वाले ये अज्ञानी लोग ही थे। आर्यों में भी इन्हीं के कुसंग से पशुबलि यज्ञों में चली और मांस-भक्षण का भी प्रचार हुआ।

"और यों हुआ कि जब आदमी पृथ्वी पर बढ़ने लगे और उनसे बेटियां उत्पन्न हुई। तो ईश्वर के पुत्रों ने आदम की पुत्रियों को देखा कि सुन्दरी हैं और उनमें से जिन्हें उन्होंने चाहा ब्याहा। और उन दिनों में पृथिवी पर दानव थे और उसके पीछे भी जब ईश्वर के पुत्र आदम की पुत्रियों से मिले तो उनसे बालक उत्पन्न हुए जो बलवान् हुए जो आगे से नामी थे। और ईश्वर ने देखा कि आदम की दुष्टता पृथिवी पर बहुत हुई और उनके मन की चिन्ता और भावना प्रतिदिन केवल बुरी होती है। तब आदमी को पृथिवी पर उत्पन्न करने से परमेश्वर पछताया और उसे अति शोक हुआ। तब परमेश्वर ने कहा कि आदमी को जिसे मैंने उत्पन्न किया; आदमी से ले के पशुन लों और रेंगवैयों और आकाश के पक्षियों को पृथिवी पर से नष्ट करूंगा क्योंकि उन्हें बनाने से मैं पछताता हूं।। तौ० पर्व ६। आ० १।२।४।५।६।७॥

समीक्षा—ईसाइयों से पूछना चाहिए कि ईश्वर के बेटे कौन हैं? और ईश्वर की स्त्री, सास, श्वसुर, साला और सम्बन्धी कौन है? क्योंकि अब तो आदम की बेटियों के साथ विवाह होने से ईश्वर इनका सम्बन्धी हुआ और जो उनसे उत्पन्न होते हैं वे पुत्र और प्रपौत्र हुए। क्या ऐसी बात ईश्वर और ईश्वर के पुस्तक की हो सकती है? किन्तु यह सिद्ध होता है कि उन जंगली मनुष्यों ने यह पुस्तक बनाया है।

वह ईश्वर ही नहीं जो सर्वज्ञ न हो; न भविष्यत् की बात जाने; वह जीव है। क्या जब सृष्टि की थी तब आगे मनुष्य दुष्ट होंगे ऐसा नहीं जानता था? और पछताना अति शोकादि होना भूल से काम करके पीछे पश्चाताप करना आदि ईसाइयों के ईश्वर में घट सकता है; वेदोक्त ईश्वर में नहीं। और इससे यह भी सिद्ध हो सकता है कि ईसाइयों का ईश्वर पूर्ण विद्वान् योगी भी नहीं था, नहीं तो शान्ति और विज्ञान से अति शोकादि से पृथक् हो सकता था। भला पशु-पक्षी भी दुष्ट हो गये? यदि वह ईश्वर सर्वज्ञ होता तो ऐसा विषादी क्यों होता? इसलिए न यह ईश्वर और न यह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकता है। जैसे वेदोक्त परमेश्वर सब पाप, क्लेश, दु:ख, शोकादि से रहित "सच्चिदानन्दस्वरूप" है उसको ईसाई लोग मानते वा अब भी मानें तो अपने मनुष्य जन्म को सफल कर सकें।

श्री स्वामी जी महाराज ने बिलकुल सत्य लिखा है कि "यह पुस्तक जंगली मनुष्यों ने बनाया है"। यह यहूदी भेड़ों को पालते थे और जंगलों में दूर-दूर तक रेबड़ों को लिए घूमते रहते थे। नागरिक शिक्षित समूहों से इनका सम्पर्क

कुछ भी नहीं था। अपनी कल्पनाओं से देवता, ईश्वर और रहन-सहन के नियम बना लेते थे। नूह, लूत, यहूदा, इब्राहीम आदि इनके पुरखा थे। फिर पलस्तीन वालों को मारकर इन्होंने उनका देश पैलेस्टाइन (फिलिस्तीन) ले लिए और इनमें भी दाऊद, सुलेमान आदि बड़े प्रभावी राजा हुए। फिर बेबीलोनियां के राजाओं ने इन्हें अपने आधीन कर लिया और यीशु मसीह के समय में तो ये रोमन लोगों के आधीन हो गये थे। उच्चादर्श, दार्शनिक विचार इनमें तब भी न थे। यीशु मसीह ने बाहर जाकर बड़े अनुभव प्राप्त किए थे यूरोप में जाकर यहूदी बड़े-बड़े वैज्ञानिक बन गये। आइन्स्टीन वैज्ञानिक भी यहूदी था।

स्वामी जी ने ईसाइयों को बड़ी हित की बात बताई है कि वैदिक धर्म को स्वीकार करें। कम से कम भारत के ईसाइयों को तो इस बाइबिल जैसी तर्क शून्य पुस्तक को छोड़कर अपने देश के गीता-उपनिषद् को अपनाना चाहिए। जो कि तर्क-युक्त है। संसार का कोई भी ईसाई बाईबिल की बातों को तर्क-तुला पर नहीं तोलता है, न तोल सकता है। दुराग्रह को छोड़कर यदि ईसाई लोग हिन्दू ग्रन्थों को पढ़ें तो बाइबिल से तो पुराण भी अधिक युक्ति-युक्त सिद्ध होगें। पुराणों ने भी ईश्वर को साकार माना है। परन्तु उनके साकार ईश्वर बाइबिल के ईश्वर की तरह बछड़े का माँस खाता नहीं फिरता।

बाइबिल केवल यहूदियों का इतिहास मात्र है। उनके उत्थान, पतन, विकास और ह्रास की कहानियों से यह भरी है। अतः सार्वभौम मानव-पुस्तक यह नहीं हो सकती। सार्वभौम मानव-धर्म ग्रन्थ तो केवल वेद ही है। अतः हठ छोड़कर सब मत वाले वेदोपनिषद्, वेदान्त को पढ़ें तभी मत वाला पन दूर होगा।

१३- "उस नाव की लम्बाई तीन सौ हाथ और चौड़ाई पचास हाथ और ऊंचाई तीस हाथ की होवे। तू नाव में जाना तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरे बेटों की पत्नियाँ तेरे साथ। और सारे शरीरों में से जीवता जन्तु दो-दो अपने साथ नाव में लेना जिसनें वे तेरे साथ जीते रहें वे नर और नारी होवें। पंछी में से उसके भांति-भाँति के और ढोर में से उसके भांति-भाँति के और पृथ्वी के हर एक रेंगवैये में से भांति-भांति के हर एक में से दो-दो तुझ पास आवे जिसतें वे जीते रहें। और तू अपने लिए खाने को सब सामग्री अपने पास इकट्ठा कर वह तुम्हारे और उनके लिए भोजन होगा। सो ईश्वर की सारी आज्ञा के समान नूह ने किया॥ तौ० पर्व ६। आ० १५।१८—२२॥

समीक्षा : भला कोई भी विद्वान् ऐसी विद्या से विरुद्ध असम्भव बात के वक्ता को ईश्वर मान सकता है? क्योंकि इतनी बड़ी, चौडी, ऊंची नाव में हाथी, हथनी ऊंट, ऊंटनी आदि क्रोडों जन्तु और उनके खाने पीने की चीजें

वे सब कुटुम्ब के भी समा सकते हैं? यह इसलिए मनुष्यकृत पुस्तक है। जिसने यह लेख किया है वह विद्वान् भी नहीं था।

यह नूह की कथा ब्राह्मण ग्रन्थ, और पुराणों में आयी मनु के समय की जल-प्रलय कथा से मिलती है। मनु के समय में भी जल-प्रलय हुई थी और मनु की नाव को तब मछली लिए फिरती रही थी। नूह और मनु; कितने मिलते हुए शब्द हैं! यह नूह की कहानी पुराणों से ली गई होगी। यह जल-प्रलय भूमि के कुछ ही प्रदेशों में हुई होगी। जल प्रलय की घटना को इस्लाम भी मानता है। मुसलमान विद्वानों के अनुसार नूह की नाव भारत में आकर ठहरी थी। पुनः यहीं मानव सृष्टि बढ़ी। मौलाना सुलेमान नदवी साहब ने अपनी पुस्तक 'अरब और हिन्द के पुराने ताल्लुकात' में यही लिखा है। और सर इकबाल भी एक शेर में यही कहता है—

वन्दे कलीम जिसके पर्वत जहां के सीना।
नूहे नबो का उतरा, आकर जहां सफीना॥

'कलीम' कहते हैं ईश्वर से कलाम (बातचीत) करने वाले को। तात्पर्य है हजरत मूसा से। 'सीना' वह पहाड़ जहां पर मूसा को ईश्वर का प्रकाश दीखा था। 'सफीना'—बेड़ा।

यह बेड़ा अनेक नावों का रहा होगा। नाव मात्र नहीं। मनु की कथा नूह की कथा से बहुत सुलझी हुई है। नूह को यहूदी, ईसाई, मुसलमान, इस सृष्टि का पुरखा मानते हैं, किन्तु बाइबिल में उसके चरित्र का वर्णन अच्छा नहीं। देखो -

लूत की पुत्रियों ने लूत को शराब पिलाकर उससे भोग करके सन्तान उत्पन्न करी।

नूह ने इतनी शराब पी कि नंगा होकर नाचा।

यहूदा की पुत्र-वधू ने रूप बदलकर यहूदा से भोग किया।

दाऊद जो कि पैगम्बर था, अपने एक सेनाधिकारी की पत्नी को देखकर उस पर आसक्त हो गया तो सेनाधिकारी को युद्ध पर भेज दिया और उसकी स्त्री को अपने पास बुलाकर उससे भोग किया।

दाऊद के पुत्र ने अपनी सौतेली बहिन को धोखे से अपने घर में बुलाकर उससे भोग किया।

पुराने अहदनामे के ये चरित्र भारत-वासियों के चरित्र पर क्या प्रभाव डालेगें? चरित्र की शिक्षा हमें रामायण, महाभारत, वेद, शास्त्रों से मिलेगी

वा पुराने अहदनामे से ? यह सब अर्द्ध सभ्य यहूदियों का ऐतिहासिक वर्णन है। हमें इससे क्या लाभ ? भारत में इसका क्या मूल्य है ?

यहोशू के कारनामे

मिस्र से निकाल कर लाये हुए यहूदियों को कहीं स्थित करने से पहले ही हजरत मूसा परलोकवासी हो गये। अब इन यहूदियों के नेता हजरत यहोशू बने। इन्होंने पलस्तियों के भरे पूरे नगर 'यरीहो' पर दृष्टि डाली और उसका भेद लेने को अपने भेदिए भेजे। वे राखाल नाम की वेश्या के यहां ठहरे। सब भेद जान लेने पर यहोशू ने 'यरीहो' नगर पर आक्रमण बोल दिया और यहूदियों से कहा कि नगर के सब निवासियों को मनुष्य, पशु, स्त्री-बच्चों के सहित मार डालो। केवल कुवांरी लड़कियों को अपने लिए रहने दो। और राखाल वेश्या का घर कुटुम्ब सहित रहे। यही हुआ और सहस्रों मनुष्यों, स्त्रियों, बच्चों और पशुओं की हत्या कर दी गयी। यह सब हत्याकांड यहोवा के सिर थोपा गया (पढ़ो बाइबिल, यहोशू अ० ६,७)

अब विचारिए कि यह काम धार्मिक थे या राजनैतिक। मुसलमानों ने अल्लाह के नाम से कत्ल और लूटमार, स्त्रियों का अपहरण किया और यहूदियों ने यहोवा के नाम पर। और यह यहोवा भी जरा-जरा सी देर में नाराज होता और प्रसन्न होता रहता है। यहूदी यदि किसी और देवता को पूज देवे तो यहोबा बड़ा नाराज होता है। यहोबा में ईर्ष्या-द्वेष इसी प्रकार का पाया जाता है कि जैसा संसारी राजाओं में। पढ़ो बाइबिल में नबी "यिर्मियाह यहोबा" यहूदियों से रूष्ट होकर उन्हें बेबीलोन के राजा के आधीन कर देता है और कहता है कि तुम पाखाने से रोटियां सेक कर खाओ तब यिर्मियाह बहुत खुशामद करता है तो यहोबा मनुष्य के गू के स्थान पर पशुओं के गोबर व लीद से भोजन बनाने को कह देता है। यह दशा है यहोवा के स्वभाव की। कहां वेदोपनिषद्, वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म और कहाँ बाइबिल का यहोवा !! अन्धे हैं वे हिन्दू भारतीय जो अपना दार्शनिक, बैज्ञानिक हिन्दू धर्म छोड़कर बाइबिल के मत को मान बैठे हैं।

"हां मेरे अन्त:करण ने बुद्धि और ज्ञान बहुत दे रखा है। और मैंने बुद्धि और बौहड़ापन और मूढ़ता जानने को मन लगाया। मैंने जान लिया कि यह भी मन का झझंट है। क्योंकि अधिक बुद्धि में बड़ा शोक है और जो ज्ञान में बढ़ता है सो दु:ख में बढ़ता है।" जबूर। उ०प० १। आ० १६।१७।१८

समीक्षा :—"अब देखिए ! जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची है उनको दो शब्द मानते हैं। और बुद्धि से शोक और दु:ख मानना विना अविद्वानों के

ऐसा कौन कर सकता है ? इसलिए यह पुस्तक ईश्वर की बनाई तो क्या किसी विद्वान् की भी बनाई नहीं है।" ज्ञान और बुद्धि विरुद्ध अपने पत्र में पौलूस ने भी यही कहा है। तर्क, विवेक, विचार का ईसाइयत में घोर विरोध है। ईसाई धर्म-पुस्तकों ने वैज्ञानिकों के साथ, दार्शनिकों के साथ बड़े-बड़े अत्याचार किये हैं। हाईपेशिया को, जो कि रेखागणित का प्रचार करती थी विशप ने जीता जलवा दिया। गैलीलियो जो भूमि के घूमने का प्रचार करता था, उसे तब छोड़ा कि जब उसने अपने सिद्धान्त गलत बताकर माफी मांग ली। अब तो विज्ञान का डंका बज रहा है। ईसाइयत सिकुड़ी पड़ी है। बुद्धिवाद और विज्ञान ईसाईयत के लिए मौत है।

बाइबिल ज्ञान का विरोध करती है और गीता कहती है —"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।"

ज्ञान के समान कोई वस्तु पवित्र—उत्तम नहीं है।

अब इन्जील की बात सुनिए। इस समय ४ इंजीलें ईसाइयों द्वारा मान्य है; लूका, योहन, मार्क और मत्ती। पहले बहुत सी इन्जीलें थी। किन्तु वे सब अमान्य कर दी गयीं। इंजिलों में ईसू का चरित्र है और कुछ उपदेश हैं। कुरान शरीफ की तरह बाइबिल और इंजीलों को ईश्वरीय पुस्तक माना जाता है किन्तु बाइबिल में ईस्राइल का और इंजीलों में मसीह का और उसके चेलों का वृत्तान्त है। जैसे कुरान शरीफ में केवल आयतें, जो ईश्वरीय आदेश कहे जाते हैं, नपे-तुले शब्दों में पाये जाते हैं; वैसे इन्जीलो में नहीं। कुरान में संयत वचनावली है। बाइबिल, इन्जील में तो औरो के लिखे लेख भी हैं।

ईसू एक महात्मा थे, संत थे। उनकी जाति उस समय पराधीन थी। और गुरु तथा पुरोहित वर्ग ढोंग कर मौज मारते थे। यहूदी गुरुओं की वही दशा थी जो भारत के पण्डे-पुजारियों की है। यहूदी लोग अनेक जातियों को अपने से नीचा समझते और उनसे खान-पान नहीं करते थे। तब मसीह ने सुधार का आन्दोलन किया। वह साल डेढ़ साल ही काम कर पाये थे कि यहूदी महन्तों ने उन पर राजद्रोह का अभियोग लगाकर उन्हें क्रूस पर चढ़वा दिया। इस्लाम के अनुसार यीशु क्रूस पर नहीं चढ़ाये गये। वे बचकर निकल गये। यहूदियों ने किसी और को ही क्रूस पर ढोंग कर मार डला। देखो कुरान—"व कौले हिम कतुलुल मसीहा, ईसब्ना, मर्यमा, रसूलिल्लाह। व ना कतलूहु व मा सलाबूहो"।

मर्यम का पुत्र, खुदा का रसूल ईसू न कतल किया गया न सलीब (क्रूस) पर चढ़ाया गया। यीशु ने कोई पुस्तक अपने जीवन-काल में नहीं लिखी। इंजीलो में सब लेख पीटर और पौलूस, लूका, मत्ती, मार्क, जैकब आदि के हैं। इंजीलो में यीशु की प्राय: असगत करामातें लिखी हैं।

ईसाई लोग ईसामसीह को खुदा का बेटा मानते हैं। अर्थात् मरियम को गर्भ खुदा की ओर से था। जब मरियम की शादी यूसुफ नाम के व्यक्ति से होने लगी तो वह गर्भवती पाई गई। यूसुफ उसको गर्भवती जानकर उससे शादी करना नहीं चाहता था। किन्तु उसे स्वप्न हुआ कि "गर्भ पवित्रात्मा से है"। तब उसकी शादी मरियम से हो गयी अर्थात् यूसुफ मरियम से विवाह करने को तैयार हो गया।

अब गर्भ किससे था ? यह प्रश्न जटिल है। क्योंकि बाईबिल तो यह कहकर छूट गयी कि गर्भ पवित्रात्मा से है। और कुरान में है—"और (ऐ पैगम्बर !) कुरान में मरियम का मजकूर (भी लोगों से बयान) करो कि जब वह अपने लोगों से अलग होकर पूरब रूख एक जगह जा बैठी और लोगों की ओर से पर्दा कर लिया तो हमने अपनी रूह (यानी जिब्राईल) को उनकी तरफ भेजा। तो वह अच्छे खासे आदमी की शक्ल बनकर उसके रूबरू जा खड़े हुए। वह (उनको देखकर) लगी कहने कि यदि तू तकी (परहेजगार) है तो मैं तुझसे खुदा की पनाह मांगती हूं (कि मेरे सामने से हट जा)। (सूरवे मरियम)।

वैसे तो तकी, परहेजगार है। परन्तु

यह उस समय का कोई व्यक्ति रहा होगा ; ऐसा भी विचार है। दोनों ही बातों में ईसा की उत्पत्ति किससे हुई ; इस पर सन्देह है। इस्लामी कथाओं के अनुसार यहूदियों ने हजरत जिखरिया पर, जिनकी संरक्षता में मरियम रहती थी ; मरियम के गर्भ का दोष लगाया और उसे मार डाला।

तब अल्ला मियां ने क्यों नहीं कहा कि यह गर्भ मुझ से है। निर्दोष जिखरिया को मत मारो।

इसके अतिरिक्त मरियम के व्यवहार से भी यह प्रतीत नहीं होता कि गर्भ खुदा से था। देखो कुरान में कि जब मरियम गर्भवती होती है। पेट में दर्द होता है और वह एक खजूर के वृक्ष के नीचे पहुंच जाती है। पास में कोई रिश्तेदार नहीं, कोई दायी नहीं। तो मरियम तड़प कर कहती है : —

"या लैतनी मित्तो कब्ला हाजा व कुन्तो नस्यम्यन्सिय्यन्"

"क्या ही अच्छा होता यदि मैं इससे पूर्व मर गई होती और लोगों ने मुझे भुला दिया होता"।

अब ऐसा कौन स्त्री कह सकती है ? जिसके अवैधानिक गर्भ होगा वह ? या जिसके खुदा से गर्भ होगा वह ?

आगे जब यीशु उत्पन्न हो गये तो मरियम ने उन्हें चरनी में फेंक दिया। क्यों ? यदि खुदा का पुत्र था तो श्रीमती जी को डर किस बात का था ? या अपनी लाज बचाने को चरनी में डाला था ?

इस प्रकार से यीशु के पिता का नाम, पता सब सन्देहास्पद हैं। अब इन्जील की बातें सुनिए।

ईसाई मत का मूलाधार

ईसाई मत की मान्यता है कि ईश्वर ने आदम को अदन के बाग के जिस पेड़ के फल खाने को मना किया था, आदम ने हव्वा के कहने से उसी पेड़ के फल खाये। हव्वा को फल खाने के लिए शैतान ने बहकाया था। अत: ईश्वर की आज्ञा न मानने पर आदम पापी हुआ। और इसी कारण आदम की सब सन्तान भी पापी है। खट्टे आम के सब ही पौधे खट्टे फल वाले होंगे। जैसे खट्टे आम पर मीठे पेड़ की कलम लगा दी जाये तो आगे को सब फल मीठे होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य पर बप्तिस्मे के द्वारा रूहुल कुद्दस (पवित्रात्मा) की कलम चढ़ाई जाती है। फिर मनुष्य पापी नहीं रहता। यह अन्ध-विश्वास मनगढ़न्त मान्यता है, ईसाईमत का मूल। किन्तु आज प्रत्यक्ष ही देख लो सहस्रों बप्तिस्मा वाले भी अपराधी पाये जाते हैं। और बिना बप्तिस्मे वाले भी बड़े पवित्र देखे जाते हैं। जैसे हिन्दुओं का गंगा-स्नान आदि अन्ध-विश्वास है, वैसा ही ईसाइयों का यह अन्ध विश्वास है। स्वयं ईसू मसीह ने जिसे बप्तिस्मा दिया यहूदा इस्कराती बेईमान निकला और उसने ३० रु० लेकर अपने गुरु यीशु को ही यहूदियों के हाथ पकड़वा दिया। जब यीशु मसीह के हाथ से लगाई हुई कलम ही फेल हो गई तो आजकल के पादरी किस गिनती में हैं। अत: बप्तिस्मे की क्रिया एक ढोंग है। जैसे गंगा-स्नान कर लेने से मन शुद्ध नहीं होता और जब तक मन पवित्र नहीं तब तक पाप दूर कहां ? इसी प्रकार बप्तिस्मे से आत्मा में परिवर्तन नहीं होता। यह कोरा अन्ध-विश्वास है। इसी कारण यूरोप के वैज्ञानिक, दार्शनिक इन बातों को नहीं मानते। पादरियों के हाथ में केवल बड़े राजनैतिक बड़े-बड़े सेठ साहूकार ही हैं जो राजनैतिक स्वार्थ, व्यापारिक स्वार्थ के कारण ईसाई हैं वा स्त्रियाँ ईसाई हैं। स्त्री स्वाभाविक रूप से भावुक होती हैं। वे श्रद्धा से मरियम और यीशु को पूजती हैं। ऋषि दयानन्द जैसे दार्शनिक, तार्किक के सामने बाइबिल और इन्जील की मान्यताएं एक हंसीमात्र थी। अत: उन्होंने खुलकर कठोर आलोचना करी। ईसाईमत का सारा ढांचा असम्भव करामातों पर आधारित है। तर्कशील व्यक्ति इन बातों को कैसे मान सकता है ?

"तब बारह शिष्यों में से यहूदा इस्कराती नाम का एक शिष्य प्रधान

याजकों के पास गया और कहा जो मैं यीशु को आप लोगों के हाथ पकड़वाऊं तो आप लोग मुझे क्या देगें ? उन्होंने उसे ३० रु० देने को ठहराया''।

(मत्ती। प० २६। आ० १४,१५)

समीक्षा—अब देखिए ! ईसा की सब करामात और ईश्वरता यहां खुल गई ; क्योंकि जो उसका प्रधान शिष्य था। वह भी उसके साक्षात् संग से पवित्रात्मा न हुआ तो औरों को वह मेरे पीछे पवित्रात्मा क्या कर सकेगा ? और उसके विश्वासी लोग उसके भरोसे में कितने ठगाये जाते हैं। क्योंकि जिसने साक्षात् सम्बन्ध में शिष्य का कुछ भी कल्याण न किया वह मरे पीछे किसी का क्या कर सकेगा ?

७९—''मैं तुमसे सच-सच कहता हूं कि धनवान् को स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन होगा। फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि ईश्वर के राज्य में प्रवेश होने से ऊंट का सुई के नाके में से निकल जाना सहज है''।

समीक्षा—इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर दरिद्र था। धनवान् लोग उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे इसलिए यह लिखा होगा। परन्तु यह बात सच नहीं क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रों में अच्छे बुरे होते हैं। जो कोई अच्छा काम करें वह अच्छा और बुरा करे वह बुरा फल पाता है। और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वर का राज्य किसी एक देश में मानता था ; सर्वत्र नहीं। जब ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं। जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र है। पुनः उसमें प्रवेश करेगा वा न करेगा यह केवल अविद्या की बात है। और इसमें यह भी आया कि जितने ईसाई धनाढ्य हैं क्या वे सब नरक ही में जायेंगे। और दरिद्र सब स्वर्ग में जायेंगे ? भला तनिक सा विचार तो ईसा-मसीह करते कि जितनी सामग्री धनाढ्यों के पास होती है उतनी दरिद्रों के पास नहीं। यदि धनाढ्य लोग विवेक से धर्म-मार्ग में व्यय करें तो दरिद्र नीच गति में पड़े रहें और धनाढ्य उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं। ७९॥

ईसा ने उक्त बात एक धनाढ्य से चिढ़ जाने के कारण कही थी। ईसू और उसके चेले भी दरिद्र ही थे। ईसू का सम्बन्ध फ्री नेशन सोसायटी से था। वे भी इसी सोच विचार के थे। एक बार बिजनौर में सन् २१ में जबकि मैंने मनुष्य में यह आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था कि ईसाई सब मेहतरों को ईसाई लिखा देते हैं ; यह काम गलत है। हिन्दू मेहतरों को ईसाई न लिखा जाये तब ईसाईयों ने अपना प्रभाव डालने के लिए एक अमरीकन पादरी रेनाल्ड जोन्स को बुलाया। यह उत्तम वक्ता थे। राय साहब चौधरी स्वरूप सिंह की अध्यक्षता में भाषण हुआ। सभा में कलक्टर भी थे और नगर के प्रमुख व्यक्ति भी। भाषण के बाद प्रश्न करने का आह्वान पादरी साहब ने किया तो मैंने

उनसे कहा कि ईसू मसीह के वचनानुसार कोई भी धनी स्वर्ग में नहीं जा सकता और संसार में सबसे बड़ा धनी देश अमरीका है। और आप भी अमरीकन हैं। अतः अपने देशवासियों से कहिए कि तुम ईसाई हो तो ईसू की बात मानो और सब धन हिन्दुस्तान को देकर स्वर्ग में जाने की तैयारी करो और हम लिखकर दे देंगे कि हम नरक में जाने को तैयार हैं। स्वर्ग अमरीकनों को दे दिया जाये। इस पर तो पादरी के होश उड़ गये बोला कि यह सवाल पोलिटिकल हो वा धार्मिक आप उत्तर दें। तो बोला हमने इस बात पर सोचा नहीं है। लोग हंस पड़े। किसी भी पादरी पर उत्तर नहीं है। यीशु का आन्दोलन ही गरीबों के समाज में नीचे गिने जाने वाले लोगों को भड़काकर और करने के लिए था। नित्य धर्म से इस आन्दोलन का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था।

भोर को जब वह नगर को फिर जाता था तब उसको भूख लगी। और मार्ग में एक गूलर का वृक्ष देख के वह उसके पास आया परन्तु उसमें और कुछ न पाया केवल पत्ते। और उसको कहा तुझ में फिर कभी फल न लगेंगे। इस पर गूलर का वृक्ष तुरन्त सूख गया।

(मत्ती पर्व २१। आयात १८, १९)

समीक्षा—सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि वह बड़ा शान्त, क्षमान्वित और क्रोधादि दोषरहित था। परन्तु इस बात को देख क्रोधी, ऋतु का ज्ञानरहित ईसा था और वह जंगली मनुष्यपन के स्वभावयुक्त वर्त्तता था। भला ! वृक्ष जड़ पदार्थ है। उसका क्या अपराध था कि उसको शाप दिया और वह सूख गया। उसके शाप से तो न सूखा होगा किन्तु कोई ऐसी औषधी डालने से सूख गया हो तो आश्चर्य नहीं॥८१॥

श्री स्वामी जी की समीक्षा कितनी युक्तियुक्त है तथा तर्क-संगत भी। इन्जील की यह कथा मसीह को अति क्रोधी और ऋतु काल के ज्ञान से रहित सिद्ध करती है। चमत्कार तो तब था जब वृक्ष सफल बना देते। निर्माण करने से विध्वंस करना तो सहज ही है। अब तुलना करो यीशु के चरित्र से मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के चरित्र की ! जब राम वन में जाते हैं तो :—

सब तरू फले राम हितु लागी।
ऋतु अन् ऋतुहि काल गति त्यागी॥

समस्त वन हरा-भरा हो उठा। ऋतु के अनुसार और बिना ऋतु के अनुसार भी समय की परवाह न करके सब वृक्ष फूलने-फलने लगे। अब विचारो कि प्रकति पर किस का प्रभाव है ? श्री यीशु का या श्री राम का ? यदि

कहा कि यह बात सही नहीं तो इन्जील की बातें भी सही नहीं।

स्वामी जी ने बाइबिल और इन्जील की अनेक बातों को जंगली मनुष्यों के काम बताए हैं। जंगली शब्द कोई गाली नहीं है। जंगल में रहने वाले अशिक्षित और नागरिक सभ्यता से रहित जन। सो इब्राहीम आदि यह सब गड़रिए थे। जंगलों में भेड़ों के झुण्ड लिए घूमा करते थे। शिक्षा से इनका कोई भी सम्बन्ध न था। अपनी योग्यता के अनुसार कल्पनाएं किया करते थे। यीशु भी तो एक बढ़ई के पुत्र थे। शिक्षा भी उन्हें कहीं मिली हो, ऐसा इन्जील नहीं बताती।

८७—और वह पीटर को और जब्दी के दोनों पुत्रों को अपने साथ ले गया और शोक करने और बहुत उदास होने लगा। तब उसने उनसे कहा, मेरा मन यहां तो अति उदास है कि मैं मरने पर हूं। और थोड़ा आगे बढ़ के वह मुंह के बल गिरा और प्रार्थना की कि हे मेरे पिता ! जो हो सके तो यह कटोरा मेरे पास से टल जाये। (मत्ती २६।३७ – ३९)

समीक्षा देखो ! जो वह केवल मनुष्य न होता, ईश्वर का बेटा और त्रिकालदर्शी विद्वान् होता तो ऐसी अयोग्य चेष्टा न करता। इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह प्रपञ्च ईसा ने अथवा उसके चेलों ने झूठ-मूठ बनाया है कि ईश्वर का बेटा, भूत, भविष्यत् का वेत्ता और पाप क्षमा का कर्त्ता है। इससे समझना चाहिए यह केवल साधारण, सीधा, सच्चा, अविद्वान् पुरुष था।११।

श्री स्वामी जी का मसीह के प्रति कितना उत्तम भाव है। वे यीशु को सीधा-सच्चा मनुष्य मानते हैं और साथ ही अविद्वान् भी। वास्तव में यीशु मसीह सच्चे हृदय से गरीबों व समाजपीड़ितों का उत्थान चाहते थे और यहूदी धर्म-गुरुओं के ढोंग और पाखण्ड को दूर भी करना चाहते थे। किन्तु विदेशी शासन था। यहूदी रोम साम्राज्य के अधीन थे। उन्होंने मिथ्या षड़यन्त्र रचाकर, राजद्रोह का अभियोग लगाकर यीशु को क्रूस पर चढ़वा दिया। किन्तु यीशु के शिष्यों ने विशेषकर पीटर और मसीह के बाद मसीह के भक्त बने पौलूस ने प्रयत्न चालू रखा और रोमन सम्राट् भी ईसाई बनाये। उनके ईसाई बनने का कारण तो राजनीति थी। ईसाई बन जाने से यीशु-भक्त इस्रायली रोमन साम्राज्य के हृदय से भक्त बन गये और यीशु से विमुख इस्रायलियों के विरोध का अब रोमन सम्राट् को डर न रहा। और आसपास की कौमों को ईसाई बनाकर मसीह के चेलों ने रोमन साम्राज्य की वृद्धि भी की। यीशु मसीह पुज गए। परन्तु भारत के बलिदानी वीर कूके, हकीकतराय, वीर वैरागी और क्रान्तिकारी वीर भगत सिंह, राम प्रसाद, खुदीराम बोस के जीवनों से यदि मसीह के जीवन की तुलना की जाय तो मसीह का जीवन

निर्भयता का न था। आत्मिक बल और नैतिक बल का मसीह में अभाव था। तुलना करिए जब श्री कृष्ण जी दुर्योधन को समझाने हस्तिनापुर गये तो कर्ण ने कृष्ण को पकड़ कर जेल में डाल देने की योजना बनायी। यह समाचार मिलते ही कृष्ण जी धृतराष्ट्र के पास पहुंचे और कहा—

राजन्नैते तव सुता माम् निगृहिण्युरोजसा ॥
एते वा मामहं चैतान् अनुजानिहि प्राथिव ॥

"हे राजन ! ये तेरे पुत्र घमण्ड से मुझे बन्दी बनाना चाहते हैं। आप इन्हें आज्ञा दे दें फिर चाहे वे मुझे पकड़ें वा मैं इन्हें पकड़ूं।"

श्री कृष्ण सभा में गये। कर्ण आदि भी उन्हें पकड़ने को उनकी ओर चले तो देखते क्या हैं कि उनके पीछे बलभद्र गदा लिए खड़े हैं। यादव सेना खड़ी है। पकड़ने वाले बेहोश होकर गिर पड़े। यह था योग का चमत्कार। यीशु योग विद्या से वंचित थे। उनकी करामातें क्रूस पर चढ़ते ही लोप हो गयीं। क्रूस के पास खड़े पहरेदार और जनता के लोग कह रहे थे कि हजरत ! अब कोई चमत्कार क्यों नहीं दिखाते ? परन्तु मसीह चुप थे और व्याकुल थे। उन्होंने दुःखी होकर अपने आस्मानी बाप को बुलाया, "एली एली लामा शबक्तनी।" अर्थात् ऐ मेरे ईश्वर ! ऐ मेरे ईश्वर ! तूने मुझे क्यों त्याग दिया है। किन्तु यह पुकार भी व्यर्थ रही। ईश्वर टस से मस न हुआ। इसकी तुलना करो भक्त प्रह्लाद की कथा से :—

प्रह्लाद खम्भ से बंधा है। हिरण्यकशिपु पूछता है, "कहां है तेरा भगवान् विष्णु ?" तो प्रह्लाद कहता है, "यहीं है।

"मुझमें तुझमें खड्ग में रह्यो खम्भ में गाज।"

इस पर हिरण्यकशिपु तलवार लेकर भक्त को मारने को चलता है तो भगवान विचारते हैं—

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितम्,
व्याप्तिं च भूतेषवापि खिलेषु चात्मनः।
अदृश्यताद्भुत रूपभुद्वहन,
स्तम्भे समायाँ न मृगं न मानुषम् ॥
(श्रीमद्भागवत)

भगवान ने विचारा कि भक्त मुझे यहां-वहां सर्वत्र बता रहा है और वेद-शास्त्र मुझे सर्वव्यापी कहते हैं। अतः इसे सत्य सिद्ध करने को खम्बे से नृसिंह रूप प्रकट करके हिरण्यकशिपु को मार दिया। अब बताओ ! मसीह ईश्वर के

बेटे सिद्ध हुए वा प्रह्लाद प्रभु का सच्चा भक्त ?

भारत में सात सौ कूकों (नामधारी सिखों) ने तोप के मुख पर हंसते-हंसते अपना बलिदान दे दिया। वीर बालक हकीकत ने धर्म नहीं छोड़ा, सिर कटा दिया। वीर बन्दा बैरागी के बलिदान की कथा पढ़कर तो रोमांच हो उठते हैं। परन्तु ईश्वर के इकलौते बेटे यीशु की बलिदान समय की दशा को इञ्जील में पढ़कर खेद होता है कि मसीह में आत्मिक बल का अभाव था। और चेला पीटर जो यीशु से ३ बार मुकर गया कि मैं इसे जानता ही नहीं। यह था नैतिक बल मुख्य शिष्य का। भारत के ईसाइयो जागो और हिन्दू साहित्य तथा भारतीय इतिहास को पढ़ो। बाइबिल से सहस्रों गुणा ऊंचा है तुम्हारा धर्म साहित्य। तभी तो कवि कहता है—

आओ बच्चो तुम्हें दिखाएं झांकी हिन्दुस्तान की।
इस मिट्टी से तिलक करो यह धरती है बलिदान की ॥

अब मार्क की सुनिए—"और उसने (यीशु ने) उनसे (अपने शिष्यों से) कहा तुम सारे जगत् में जाके प्रत्येक मनुष्य को सुसमाचार सुनाओ। जो विश्वास करे और बप्तिस्मा ले उसी का उद्धार होगा, परन्तु जो विश्वास न करेगा, वह दोषी ठहराया जाएगा।" (मार्क १६।१५-१८)

"और यह चिन्ह विश्वास करने वालों के संग प्रकट होंगे कि वे सांपों को उठा लेगें और जो वे कुछ विष पियें तो उनकी उनसे कुछ हानि न होगी। वे रोगियों पर हाथ रखेंगे और वे चंगे हो जायेंगे और वे नयी-नयी भाषा बोलेंगे।" (मार्क १६।१५-२०) अब बिचारिए ! ईसाइयों का सिद्धान्त है कि आदम पापी था अतः उसकी सन्तान सब मनुष्य ही पापी हैं। मसीह के नाम से बप्तिस्मा लेने से यह पाप दूर हो जाता है। अच्छा तो ईश्वर को यह इलाज सहस्रों वर्ष बाद सूझा। मसीह से पहिले तो सब लोग पापी ही मरते रहे। है न पूरा अन्याय और ईश्वर की लापरवाही। जो इस तर्कहीन, बुद्धि-विरुद्ध बात पर (मसीह के मरने और जी उठने पर) विश्वास न करेंगे वे दण्डनीय क्यों होंगे ? क्या बुद्धि का काम बन्द कर दिया जाय ?

ये हैं ईसाई खुदा की अंधा-धुन्ध बातें ! पर विश्वास करने वालों की पहचान ने ईसाई मत का सब किला ढा दिया। संसार भर में पोप से लेकर छोटे पादरी तक में कौन है जहर पीने को तैयार ? सांप पकड़ने को तैयार और ईसाई देशों में तो चिकित्सालय बन्द कर के पादरियों की ड्यूटी बोली जाय कि हाथ फेर कर रोगियों को चंगा करे। इस विज्ञान के युग में मार्क के इञ्जील की बातों का क्या मूल्य है ?

बिजनौर में स्टेनली जोन्स से धनवानों के प्रश्न के बाद जब पूछा कि आपका यीशु पर विश्वास है तो थाने में चलकर रिपोर्ट लिखा कर एक तोला अफीम खाकर अपने विश्वास का प्रमाण दीजिए तो पादरी के होश उड़ गये। वहां बैठे हुए कोतवाल ने कहा कि चलिए हम रिपोर्ट लिखें। पादरी घिघिया कर बोला हमें पसीना आ रहा है अब आप कोई सवाल न करें, जो पूछना हो मिशन में आकर हम से पूछें। मैंने कहा कि हम सबके सामने आपके मत की पोल खोलने को पूछ रहे हैं। हम आपसे क्या पूछेंगे ? आपको तो न बाइबिल आती है और न हिन्दू धर्म का ज्ञान है। हमें दोनों का ज्ञान है अतः आप आर्य-समाज मन्दिर में आकर हमसे ज्ञान प्राप्त करें। इस पर ताली बज उठी। पादरी लज्जित होकर चला गया। ईसाईयों के चेहरे उदास हो गए। ईसाइयत का सोना बुद्धि की कसौटी पर सदा फेल रहता है।

आगे श्री स्वामी जी ने योहन के स्वप्नों की बहम भरी बातों की आलोचना की है। योहन के स्वप्नों की बातें तो बहुत भ्रान्त हैं। ईसाइयों के स्वर्ग की बातें भी ऊटपटांग हैं। मेम्ने का विवाह (मसीह की शादी) आदि बातें एक पूरी दिल्लगी की मजेदार बातें हैं।

ईसाइयों ! ईश्वर पर विश्वास करके मिशन की रोटियों का भरोसा छोड़कर अपने पुराने धर्म में लौट कर वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, गुरु ग्रन्थ साहिब को पढ़ो और अपनी सन्तान को इस अंधविश्वास भरे मत से बचाकर बुद्धिवादी आर्यधर्म का भक्त बनाओ। अब इन्जील के अनुसार ही आर्य धर्म के कर्मवाद का महत्व देखिये—"हे मेरे भाइयो !" यदि कोई कहे मुझे विश्वास है पर कर्म उससे नहीं होते तो क्या लाभ ? क्या उसके विश्वास से उसका त्राण हो सकता है ? यदि कोई भाई-बहिन नंगे हों और उन्हें प्रतिदिन के भोजन की घटी हो और तुममें से कोई उनसे कहे कि कुशल से जाओ तुम्हें जाड़ा न लगे। तुम तृप्त रहो परन्तु तुम जो वस्तु देह के लिए आवश्यक है सो उनको न देदो तो क्या लाभ है ? वैसे ही विश्वास भी जो कर्मसहित न होवे तो आप ही मृतक है।" (याकूब १५।१८)

(२) "हे निर्बुद्धि मनुष्य क्या तू जानना चाहता है कि कर्म के बिना विश्वास मृतक है।" (याकूब)

याकूब के शब्दों में विश्वास का कोई मूल्य नहीं है कर्म की महिमा है। यही तो वेद कहता है :—

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।" (यजु० ४०।२)

हे मनुष्यो शुभ कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा कर।

"ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः (ऋग्)

दुराचारी मनुष्य मुक्ति का मार्ग पार नहीं कर सकते।

'मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।" (यजु० ४०।१)

किसी का धन माल मत छीनो।

'केवलाघो भवति केवलादी।"

केवल अपना ही पेट भरने वाला पापी होता है औरों का भी पालन करो।

"समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः।"(अथर्व)

तुम सबको अन्न, वस्त्र आदि जीवन के साधन उपलब्ध कराओ, करो।

१४वां समुल्लास

१—प्रारम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु।

मंजिल १। सिपारा १। सूरत १॥

समीक्षक—मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि यह कुरआन खुदा का है परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसका बनाने वाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो "आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के" ऐसा कहता। यदि मनुष्यों को शिक्षा करता है कि तुम ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं। क्योंकि इससे पाप का आरम्भ भी खुदा के नाम से होकर उसका नाम भी दूषित हो जायेगा। जो वह दया और क्षमा करनेहारा है तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलाकर मद्य मांस खाने की आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाए हुए नहीं हैं? यह कहना कि "परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आरम्भ" बुरी बातों का नहीं। इस कथन में गोलमाल है। क्या चोरी, जारी, मिथ्याभाषण अधर्म का ही आरम्भ परमेश्वर के नाम पर किया जाये। इसीसे देख लो कसाई आदि मुसलमान, गाय आदि के गले काटने में भी 'बिस्मिल्लाह' इस वचन को पढ़ते हैं। जो यही इसका पूर्वोक्त अर्थ है तो बुराइयों का आरम्भ भी परमेश्वर के नाम पर मुसलमान करते हैं और मुसलमानों का खुदा दयालु भी न रहेगा क्योंकि उसकी दया उन पशुओं पर न रही! और जो मुसलमान लोग इसका अर्थ नहीं जानते तो इस वचन का प्रकट होना व्यर्थ है। यदि मुसलमान लोग इसका अर्थ और करते हैं तो सीधा अर्थ क्या है? इत्यादि ॥१॥

"बिस्मिल्लाह अल् रहमानुर्रहीम" कुरान के इस वाक्य में ही श्री स्वामी जी ने शब्द-न्यूनता का दोष दिखाया है। आरम्भ "शुभ कार्यों का" यह शब्द त्रुटि रह गई। इसी कारण मुसलमान पशु-हत्या जैसे निर्दयता-युक्त कार्यों में भी उस वाक्य (बिस्मि .....) का प्रयोग करते हैं। स्वामी जी का पूछना कितना यथार्थ है कि यदि वह दयालु है तो निर्दयतापूर्ण कार्य पशु-हत्या आदि

उसके नाम पर क्यों करते हो ?

स्वामी जी का यह प्रश्न कि इसमें यह भी आना था कि इस प्रकार से प्रार्थना करो अन्यथा सन्देह होता है कि कोई दूसरा कह रहा है अल्लाह के नाम से आदि तर्कसंगत प्रश्न हैं।

संसार भर में दो ही इलहामी (ईश्वर दत्त) पुस्तकें मानी जाती हैं जो उपलब्ध हैं। वेद और कुरान शरीफ। तौरत, जबूर, इञ्जील अपने असली रूप और मूल भाषा में नहीं मिलती। वेद को आर्यजन ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। और कुरान को मुसलमान। वेद अपनी वास्तविक भाषा में यथाक्षर विद्यमान है और कुरान भी अरबी भाषा में ज्यों का त्यों विद्यमान है। स्वामी जी वेद के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों को ईश्वरीय वाक्य नहीं मानते हैं। पारसियों की जिन्दावस्ता भी अब पूरी नहीं मिलती। यह भी ईश्वरीय ज्ञान मानी जाती है पारसी मत में। कुरान ईश्वरीय ज्ञान है वा नहीं ? यह आगे देखो स्वामी जी के परीक्षण से :

२--सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते है जो परवरदिगार अर्थात् पालन करनेहारा है सब संसार का। क्षमा करने वाला दयालु है॥ मं० १। सि० ११। सूरतुल्फातेहा आ० १।२॥

समीक्षा-- जो कुरान का खुदा संसार का पालन करनेहारा होता और सब पर क्षमा और दया करता होता तो अन्य मत वाले और यीशु आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता। जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा ? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि 'काफिरों को कत्ल कर दो" अर्थात् जो कुरान और पैगम्बर को न मानें वे काफिर हैं ऐसा क्यों कहता ? इसलिए कुरान ईश्वरकृत नहीं दीखता ॥२॥

स्वामी जी का आक्षेप इस आयत पर बिल्कुल नहीं है। आयत है ही बहुत अच्छी परन्तु कुरान ने आगे चलकर अन्य धर्मों के मानने वालों के प्रति कत्ल करने, लूटने, स्त्रियों के छीनने के आदेश दिये हैं, उन पर स्वामी जी की आपत्ति है। मुसलमानों को सोचना चाहिए कि उनके इन जेहादी कामों से इस्लाम बदनाम हुआ वा नहीं ? इस्लाम कितना उत्तम नाम है। इसका मफा (धातु) 'सलम" है। जिसका अर्थ है—'शान्ति', ईश्वरोपदेश का मानना, कल्याण, सहिष्णुता आदि। पर क्या इस्लाम का अब तक का इतिहास यह सिद्ध करता है कि इस्लाम ने शान्ति फैलायी ? अन्य मत वालों के ही साथ नहीं आपस में भी मुसलमानों ने बुरे-बुरे हत्याकाण्ड किए हैं। माननीय नबी के धेवते हजरत इमाम हुसैन का कत्ल निर्दयता से किसने किया ? उनके पुत्र डेढ़ साला अली असगर का कातिल सिमिर मुसलमान था वा नहीं ? हजरत अली के साथ वर्षों तक लड़ाई किसने लड़ी ? लाखों मुसलमान इन युद्धों में

मारे गये। क्यों ? सब यह था कि कुरान (इस्लाम) पर अरबी सभ्यता और संस्कृति (तहजीब और तमुद्दन) का भी प्रभाव पड़ा है। अरबी कबीले सदा लड़ते रहते थे। लूटमार भी करते थे। वही प्रभाव कुरान में भी है। बाईबिल में भी है पढ़ो नबी यहोशू के कारनामें फिलास्सामियों की, कि निरपराध हत्या कर डाली। मुसलमानों को, विशेषकर भारत के मुसलमानों को चाहिए कि जिहादी बातें उसी समय के लिए थीं और उन्हीं देशों के लिए। अब समय बदल गया है। कुरान शरीफ में ईसाइयों और यहूदियों से तब तक जिहाद करते रहने का हुक्म है जब तक वह पराधीन होकर जजिया न देने लगें। (पढ़ो सूरते तोबा, आयत २६)। कातिलुल्लजीन ला युअ्मिनन बिल्लाहि व ला बिल-यौमिल-आखिरि व ला यूहर्रिमून वा हर्रमल्लाहु व रसूलुह व ला यदीनून दीनलहक़िक मिनल्लजीन अूतुल्किताब हत्ता युऽतुल् जिज़्यत अैयदिंव्व हुम साग़िरुन ॥२४॥ और इसी में यह भी हुक्म है कि उनको भी कत्ल करो जो उन चीजों को खाते हैं जिन्हें कुरान ने हराम ठहराया है।

अब विचारो कि संसार भर का कोई भी इस्लामी देश अमेरिका, जर्मन और फ्रांस से जिहाद करने को तैयार है ? बजाय जिहाद के उनकी खुशामद में लगे हैं इस्लामी मुल्क। चीन, जो सबसे ज्यादा सुअर-भक्षी देश है उससे करेगा कोई जिहाद ? उसके तो रात दिन तलुए सहलाता है पाकिस्तान। इसलिए प्यारे भारतीय मुसलमानों ! इन जिहादी बातों को हृदय से दूरकर इस्लाम को शान्तिप्रद बनाओ। देश की अन्य जनता से मिलकर चलो। आर्यसमाजी और सिक्ख मूर्तिपूजा नहीं करते परन्तु सनातन धर्मी लोगों से इनकी मारकाट कभी नहीं चलती। जैन तो ईश्वर को भी नहीं मानते, न वेदों को। मगर सब हिन्दुओं में मिले-जुले रहते हैं। पारसी तो मजहब में भी और हैं और कौम में भी और। मगर हिन्दुओं के साथ प्रेमभाव से मिले हुए सैकड़ों वर्षों से रहते हैं। इनमें देशभक्त भी अनेक हुए हैं। हिन्दुओं से कम भक्त नहीं थे। पूज्य दादाभाई नौरोजी, माता कामागाता मारु, माननीय फीरोज गांधी (इन्दिरा गांधी जी के पति) ये देशभक्त पारसी ही थे। फिर तुम तो अपने हो। करोड़ों मुसलमान राजपूत हैं, कायस्थ हैं। फिर विरोध कैसा और क्यों ?

हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई।
सब आपस में भाई-भाई॥

मजहबी खण्डन-मण्डन तो अक्ल को बढ़ाने वाली बातें हैं। यह चलती रहें, पर मानवता के व्यवहार में अन्तर न आवे। अपनी-अपनी रविश पर चलो, नेक रहो। मौजों की तरह लड़ो मगर एक रहो देश-प्रेम में, देशवासियों के मेल-मिलाप में। सब प्रेम का व्यवहार करते रहो। अरबी सभ्यता और

संस्कृ ि के स्थान पर भारतीय सभ्यता, संस्कृति और भावना को अपनाओ। बुद्धिवाद, सहिष्णुता सबके सब भारतीय संस्कृति के अंग हैं।

३. मालिक दिन न्याय का ।। तुझ ही को हम भक्ति करते हैं और तुझ ही से सहाय चाहते हैं ।। दिखा हमको सीधा रास्ता ।। मं० १ ।लि० १।सू १ आ० ३।४।५।।

समीक्षक—क्या खुदा नित्य न्याय नहीं करता ? किसी एक दिन न्याय करता है ? इससे तो अन्धेर विदित होता है। उसी की भक्ति करना और उसी से सहाय चाहना तो ठीक परन्तु क्या बुरी बात का भी सहाय चाहना ? और सीधा मार्ग एक मुसलमानों ही का वा दूसरे का भी ? सूधे मार्ग को मुसलमान क्यों नहीं ग्रहण करते ? क्या सूधा रास्ता बुराई की ओर का तो नहीं चाहते ? यदि भलाई सब की एक है तो फिर मुसलमानों ही में विशेष कुछ न रहा और जो दूसरों की भलाई नहीं मानते तो पक्षपाती है ।।३।।

यहां स्वामी जी ने आयत के भाव को ठीक कहा है किन्तु मुसलमानों के पक्षपातपूर्ण व्यवहार की शिकायत की है कि वे अन्य मतों की भली बातों को भी बुरा कहते हैं। दूसरी बात स्वामी जी कहते हैं कि ईश्वर निरन्तर न्याय करता है किन्तु मुसलमान और ईसाई मत मानते हैं कि प्रलय के बाद न्याय होगा तब तक सब आत्माएं आलमेबर्जख (मूर्च्छा) में पड़ी रहेंगी। है न यहां अन्धेर की बातें !

४. दिखा उन लोगों को रास्ता जिन पर तूने नियामत की। और उनका मार्ग मत दिखा कि जिन पर तू ने गजब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहों का मार्ग हम को दिखा ।।

समी० जब मुसलमान लोग पूर्व जन्म और पूर्वकृत पाप-पुण्य को नहीं मानते तो किसी पर नियामत अर्थात् फजल व दया करने और किसी पर न करने से खुदा पक्षपाती हो जायेगा। क्योंकि बिना पाप-पुण्य दुःख-सुख देना केवल अन्याय की बात है। और बिना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोध दृष्टि करना भी स्वभाव से बहिः है। क्योंकि बिना भलाई-बुराई के वह दया अथवा क्रोध नहीं कर सकता। और जब उनके पूर्व संचित पुण्य-पाप ही नहीं तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता। और इस सूरत की टिप्पन पर "यह सूर: अल्लाह साहेब ने मनुष्यों के मुख से कहलाई कि सदा इस प्रकार से कहा करें" जो यह बात तो अलिफ, बे आदि अक्षर भी खुदा ही ने पढ़ाये होंगे, कहो कि नहीं तो बिना अक्षर ज्ञान के इस सूर: को कैसे पढ़ सके ? क्या कण्ठ ही से बुलाए और बोलते गये ? जो ऐसा है तो सब कुरान ही कण्ठ से पढ़ाया होगा ! इससे ऐसा समझना चाहिए कि जिस पुस्तक में पक्षपात की बातें पाई जायें वह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो

सकता। जैसा कि अरबी भाषा में उतारने से अरब वालों को इसका पढ़ना सुगम, अन्य भाषा बोलने वालों को कठिन होता है। इसी से खुदा में पक्षपात आता है। और जैसे परमेश्वर ने सृष्टिस्थ सब देशस्थ मनुष्यों पर न्याय दृष्टि से सब देश भाषाओं से विलक्षण संस्कृत भाषा कि जो सब देश वालों के लिए एक से परिश्रम से विदित होती है उसी में वेदों का प्रकाश किया है, करता तो कुछ भी दोष नहीं होता ।।

यदि मुसलमान भाई पुनर्जन्म को मान लें तो स्वामी जी की आपत्ति रद्द हो सकती है। ईश्वरीय ज्ञान का किसी एक देश की भाषा में होना पक्षपात है, यह आपत्ति स्वामी जी की अटल है। यदि मुसलमान लोग यह मान लें कि कुरान केवल अरब देश के ही उत्थान के लिए रचा गया है तो आपत्ति नहीं रह सकती। और बात भी वास्तविक यही है। कुरान की रचना अरबों के हितार्थ इसी प्रकार से हुई कि जिस प्रकार से हजरत मूसा, हजरत दाउद आदि ने इस्राइली भाषा में अपने विचारों का प्रवाह किया। उन देशों में संत लोग अपने वचनों को ईश्वरीय वचन कह कर प्रसिद्ध करते थे। और वे समझते भी ऐसा ही थे कि हमें यह ईश्वरीय प्रेरणा है। हजरत मुहम्मद साहब तो ईश्वर के महान् भक्त थे। पर्वत की गुफा में एकान्त में बैठकर घंटों ईश्वर का ध्यान किया करते थे। अतः अपने वाक्यों को ईश्वर-प्रेरित समझना उनके लिए स्वाभाविक ही था। किन्तु ईश्वरीय ज्ञान आदि सृष्टि में ही होता है। जब न देश होते हैं और न जातियाँ। और उनको होता है जिनके हृदयों पर देश जाति, परिवार, आदि का कोई संस्कार न हो। वह ज्ञान सब देशों और सब कालों के लिए एकसा ही होना है। वही वेद हैं। अतः वेदों को तो ईसाई मुसलमान, यहूदी सबको ही निर्विवाद मान लेना चाहिए। पुनर्जन्म मान लेने से खुदा पर अन्याय का दोष नहीं रहेगा। और पुनर्जन्म मान लेना कुरान के खिलाफ नहीं बल्कि मुआफिक रहेगा। देखो सूरः इन्फाल—

"व खलकल्लाहो समावाते वल अर्जा बिल हक्कि।" (ईश्वर ने जमीन और आस्मान रचे हक से) "वजितुजजा कुल्लोन-फसिम। व मा किस्बत व हुम ला यजल मून।" अर्थात् इसमें जरा भी अन्तर नहीं है कि ईश्वर ने सबको उनके नफ़स के अनुसार बनाया ताकि किसी पर अत्याचार न हो।

कुरान ने यह स्पष्ट कह दिया कि ईश्वर ने अपनी ओर से किसी को रोगी, किसी को स्वस्थ किसी को गरीब, किसी को धनी, किसी को मूर्ख, किसी को विद्वान नहीं बनाया बल्कि जैसा जिसका स्वभाव था उसी के अनुसार उसी परिस्थिति में उसे ईश्वर ने जन्म दिया। अब यह नफस क्या ईश्वर ने बनाया ? यदि ऐसा हो तो फिर ईश्वर पर तरफदारी और अन्याय का आक्षेप आयेगा। नफस हर जीव का अलग-अलग अपना था।

नफस का अर्थ है स्वभाव। जैसा कि गीता में कहा गया है—"स्वभावस्तु प्रवर्त्तते अर्थात् ईश्वर अपनी ओर से कुछ नहीं बनाता है किन्तु जैसा जिसका स्वभाव है उसी के अनुसार जन्म, कर्म और भोग की व्यवस्थायें ईश्वर कर देता है। यह स्वभाव बनता है कर्मों से। और कर्म होते हैं जन्मों से। तो इस जन्म से पहले जन्म हुए वा नहीं? जो नहीं हुए हैं तो स्वभाव कैसे बना?

ईरान के सूफी शायर शब्सतरी ने भी पुनर्जन्म को माना है—

तनासुखरा बुद्ध चे कुफ्रोबातिल।
कि आँ आज तंग चश्मी गश्त हातिल॥

अर्थ—पुनर्जन्म को जिन्होंने कुफ्र और झूठ कहा है उन्होंने मन्द, संकीर्ण दृष्टिकोण से इसे ग्रहण किया है। भावार्थ है कि पुनर्जन्म सही है।

ईसाई और मुसलमानों ने इसे इसलिए नहीं माना कि इस्राईल और अरब में दर्शन शास्त्र तो था नहीं। इन्होंने दर्शन,विद्या (Philosophy) को यूनान से सीखा और यूनानी दर्शन आत्म-विद्या से रहित है। अतः इन लोगों ने भी अनात्मभाव सीख लिए। भारत के मुसलमानों का तो दर्शन शास्त्र अपने घर का है। उन्हें तो पुनर्जन्म मान ही लेना चाहिए। पुनर्जन्म मानने से इस्लाम पर, खुदा पर होने वाले अनेकों ऐतराज खत्म हो जायेंगे।

कुरान शरीफ ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान नहीं है। केवल रसूल के अपने गूढ़ अनुभव है। देखो सूरते अनफाल, आयत ६५, ६६।

'ऐ नबी! ईमान वालों को लड़ाई पर उभारो। यदि तुममें से बीस (लड़ाई में) जमे रहने वाले होंगे तो वे दो सौ पर महत्व प्राप्त करेंगे और तुम में से १०० लोग हों तो वे एक हजार काफिरों पर भारी रहेंगे। क्योंकि वे ऐसे लोग हैं जो समझ-बूझ नहीं रखते॥६५॥"

अर्थात् अपने से दस गुने शत्रुओं को मुसलमान जीत लेंगे। बस युद्ध हुआ और मुसलमान अच्छी तरह पिट गये तो खुदा ने अपनी राय बदली, "अब अल्लाह ने तुम्हारा बोझ हल्का कर दिया। और हमने जाना कि तुममें कमी (कमजोरी) है। जो तुममें अगर सौ जमे रहने वाले होंगे तो वे दो सौ पर महत्व प्राप्त करेंगे और तुममें से हजार हों तो दो हजार पर अल्लाह के हुक्म से भारी रहेंगे। और अल्लाह उन लोगों के साथ है जो जमे रहते हैं।"

विचारो तो सही! क्या ईश्वर को विना तजुर्बा किये ज्ञान न था? क्या ईश्वर भी मनुष्य के समान ही अनुभव करने के वाद जान पाता है? यह आयत डंके की चोट वता रही है कि कुरान में नबी महोदय के ही वचन हैं। ईश्वर पर उनको अगाध विश्वास था अतः उसके नाम से ही आज्ञाएं देते थे।

तुम जिधर मुँह करो उधर ही ही मुँह अल्लाह का है।

॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० १५॥

समी०—जो यह बात सच्ची है तो मुसलमान 'किबले' की ओर मुंह क्यों करते हैं? जो कहें कि हमको किबले की ओर ही मुंह करने का हुक्म है कि चाहें जिधर की ओर मुख करो। क्या एक बात सच्ची और दूसरी झूठी होगी? और जो अल्लाह का मुख है तो वह सब ओर हो ही नहीं सकता। क्योंकि एक मुख एक ओर रहेगा, सब ओर क्योंकर रह सकेगा? इसलिए यह संगत नहीं॥२७॥

स्वामी जी के प्रश्न पूरे सही हैं। उत्तर केवल एक ही है कि हजरत को अपने देश की महिमा बढ़ानी थी। आज संसार भर के मुसलमानों का पूज्य स्थान बन गया है काबा। करोड़ों रुपये की आय होती है इससे अरब के लोगों को। दूसरा प्रश्न स्वामी जी का साकारत्व है। यदि ईश्वर साकार नहीं निराकार है तो प्रश्न नहीं होगा। वेद भी कहता है—

"प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः।" यजु० ३२।४

ईश्वर का मुख अर्थात् देखना-भालना, ज्ञान सब ओर है। भावार्थ है कि वह सर्वव्यापी है, कावे में भी है; बद्री नाथ में भी, कावे में लगे हुए संगे असबद में भी हैं और हिन्दुओं की मूर्तियों में भी। फिर एक से प्रेम, श्रद्धा और दूसरे से घृणा क्यों?

१५०- यह कि मसजिदें वास्ते अल्लाह के हैं, बस मत पुकारो साथ अल्लाह के किसी को॥ मं०७॥ सि० २९। सू० ७२॥ आ० १८॥

समीक्षा—यदि यह बात सत्य है तो मुसलमान लोग 'लाइलाह इल्लिलाः महम्मदर्रसूलल्लाह' इस कलमे में खुदा के साथ मुहम्मद साहेब को क्यों पुकारते हैं? यह कुरान से विरुद्ध है और जो विरुद्ध नहीं करते तो इस कुरान की बात को झूठ करते हैं। जब मस्जिदें खुदा के घर हैं तो मुसलमान महाबुत्परस्त हुए क्योंकि जैसे पुरानी, जैनी छोटी सी मूर्ति को ईश्वर का घर मानने से बुतपरस्त ठहरते हैं; ये लोग क्यों नहीं?

श्री स्वामी जी का प्रश्न कितना उचित है कि ईश्वर के नाम के साथ रसूल मकूल का नाम जोड़ना शिर्क हुआ वा नहीं? मस्जिदें खुदा का घर हैं तो मूर्तियां खुदा का घर क्यों नहीं? वस्तुतः इस्लाम एक संकीर्ण मत है जो अपनी सब बात को सही और दूसरों की बात को कुफ्र बताता रहता है। कब्र परस्ती मुसलमानों में बहुत बढ़ी हुई है। पीराने कलियर के उर्स में हमने पीर साबिर साहिब की कब्र को चूमते हुए सैकड़ों मुसलमान और मुसलमानियों को देखा।

इस्लाम कला का विरोधी है। चाहे चित्रकला हो, चाहे मूर्तिकला। सीकरी में अकबर के शयनागार में चित्र बने हुए थे जिन्हें औरंगजेब ने बिगड़वा दिया। चित्तौड़ के किले पर जब मुसलमानों का अधिकार हुआ (अकबर का)

तो महाराणा कुम्भा के बनाये विजय स्तम्भ में खुदीं सब मूर्तियों को नष्ट करवा दिया। इस्लाम में यह एक पुण्य की बात मानी जाती है। जीवित वस्तु का चित्र रखना निषिद्ध है। संगीतकला चित्रकलादि ललित कलाओं के अरब लोग विरोधी थे। वही रंग मुसलमानों पर है। मध्य एशिया, स्पेन और भारत के बौद्ध मन्दिर, गिरजा घरों की सारी कला मुसलमानों ने नष्ट कर डाली।

४७- अल्लाह झगड़े को मित्र नहीं रखता।॥ मं० १॥ सि० २१ सू० २१ आ० २०५॥

४३- मत फिरो पृथ्वी पर झगड़ा करते॥ मं० २१ सि० ८। सू० ७। आ० ७४॥

समीक्षा—यह बात तो अच्छी है परन्तु इससे विपरीत दूसरे स्थानों में जिहाद करना, काफिरों को मारना भी लिखा है।

स्वामी जी अच्छी बात को अच्छी बात कहते हैं और गलत को गलत। ईश्वर की आज्ञा है कि धरती पर झगड़ा करते मत फिरो परन्तु इस्लाम का इतिहास उठाकर देखो अरबों की शक्ति बढ़ते ही उन्होंने अपने आस-पास के देशों को रौंदकर रख दिया। केवल लूट के लालच में अरबी शासन को फैलाने के लालच में ही लाखों मनुष्यों का संहार कर डाला। और तुर्कों को लड़ने में चंगेज खां और उसके सेनापति हलाकू खां के हाथों लाखों मुसलमान भी मारे गये। और अन्त में तुर्कों को विजय मिली। खलीफा मुस्त हासिम बिल्लाह को तुर्कों ने घोड़ों से कुचलवा कर मार डाला। बहुत दिन बाद चीन से लड़ने में अरबों की सहायता पाने के लिए तुर्क मुसलमान बन गये। मजहब के नाम पर घोर उपद्रव मुसलमानों ने क्यों किए? खुदा के इस शान्तिमय उपदेश को क्यों भुला दिया!

४९- यहां रजस्वला प्रसंग का कुरान ने निषेध किया है। इसे स्वामी जी ने अच्छा बताया है। स्वामी जी को इस्लाम के जेहाद पर सबसे बड़ी आपत्ति है। क्योंकि धर्म के मामले में शस्त्र-प्रयोग आर्य-सस्कृति के विरुद्ध है। भारत के जैन धर्म, बौद्ध धर्म, वैष्णव और शैव तथा शाक्त एवम् चार्वाक तक ने धर्म प्रचार में तर्क और बुद्धिवाद तथा सेवा से ही काम लिया। सिक्ख धर्म शस्त्र-सम्पन्न था परन्तु धर्म-प्रचार में उसने भी केवल भक्ति-भावना के प्रचार से ही धर्म-प्रचार किया। और फिलिस्तीन तथा अरब के लोगों ने धर्म में शस्त्र-प्रयोग को मुख्यता दी। इनमें भी इस्लाम का नम्बर प्रथम है। क्योंकि इस्लाम ने धर्म के नाम पर ही अरब साम्राज्य की स्थापना करी थी। धर्म जहां राजनीति में फंसा और उसका रूप बिगडा। श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने जब सम्राट् अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा गये थे तब समुद्र तट पर इनको लेने श्रीलंका का राजा आया तो देखा कि राजकुमारी

और राजकुमार हाथों में उस पीपल की डालियाँ लिये हुए है जिसके नीचे ध्यान लगाकर भगवान् बुद्ध ने प्रज्ञापारमिता प्राप्त की थी। पर इस्लाम के प्रचार के लिये शस्त्र-प्रयोग चलता रहा।

४८--कह इससे अच्छी और क्या पहेजगारों को खबर दूं कि अल्लाह की ओर से बहिश्ते हैं जिनमें नहरें चलती हैं उन्हीं में सदैव रहने वाली शुद्ध बीबियाँ हैं अल्लाह की प्रसन्नता से। अल्लाह उनको देखने वाला है साथ बन्दों के॥ मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १५॥

समीक्षा भला यह स्वर्ग है किंवा वेश्यावन? इसको ईश्वर कहना वा स्त्रैण? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बातें जिसमें हों उसको परमेश्वर का किया पुस्तक मान सकता है? यह पक्षपात क्यों करता है? जो बीवियां बहिश्त में सदा रहती हैं वे यहां जन्म पाके वहाँ गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई हैं? यदि यहां जन्म पाकर वहां गई हैं और जो कयामत की रात से पहिले ही वहां बीवियों को बुला लिया तो उनके खाविन्दों को क्यों न बुला लिया? और कयामत की रात में सबका न्याय होगा इस नियम को क्यों तोड़ा? यदि वहीं जन्मी हैं तो कयामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं? जो उनके लिए पुरुष भी हैं तो यहां से बहिश्त में जाने वाले मुसलमानों को खुदा बीवियाँ कहां से देगा? और जैसे बीवियां बहिश्त में सदा रहने वाली बनाई वैसे पुरुषों को वहां सदा रहने वाले क्यों नहीं बनाया? इसलिए मुसलमानों का खुदा अन्यायकारी, बेसमझ है॥४८॥

स्वामी जी के आक्षेप कितने बुद्धिमत्तापूर्ण हैं। वस्तुत इस आयत के प्रचार का उद्देश्य तो विषय भोगों के लोलुप और पत्नी के लिए सदा तरसते रहने वाले अरबों के लड़कों के लिए तैयार करना था। अरब के लोग ऐसे प्रश्न सोच ही नहीं सकते थे। स्त्रियों के भोगों में लिप्त अरब के लोग आज भी हैं। अरब के शासकों को तेल से करोड़ों डालरों की आय होती है किन्तु प्रजा के हित में वह धन न लगाकर ये शासक बहुत सी स्त्रियों को रखने में व्यय कर डालते हैं। भारत से भी स्त्रियां मोल ले जायी जाती हैं। उमान के छोटे से राजा के घर में १५१ स्त्रियां थीं। यही दशा औरों की भी है। यहां लूट के धन और स्त्रियों का लोभ एवम् बहिश्त में नहरें, शराब, कबाब और हूरों का लोभ ही अरब लोगों को जिहाद करने के लिए प्रेरित करता था।

४९--निश्चय अल्लाह की ओर से दीन इस्लाम है॥ मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १९॥ "इवद्दीन इनइल्लाहि इस्लाम"

समीक्षा—क्या अल्लाह मुसलमानों ही का है औरों का नहीं? क्या तेरह सौ वर्षों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं? इसी से यह कुरान ईश्वर

का बनाया हुआ तो नहीं किन्तु किसी पक्षपाती का बनाया है ॥४६॥

उक्त आयत में आये हुए इस्लाम शब्द के अर्थ यदि यौगिक ले लिए जायें तो कोई भी आक्षेप नहीं रह सकता। इस्लाम अर्थात् शान्ति, ईश्वरीय आज्ञाओं को स्वीकार करना आदि। इसे कौन न चाहेगा? किन्तु यदि इस्लाम से यही अर्थ लिये जायेंगे कि मुसलमान मत; जो आजकल है तो सब को असन्तोष होगा ही। अन्य मत भी ईश्वर की ओर से क्यों नहीं?

श्री स्वामी जी का प्रश्न कितना उचित है कि यदि इस्लाम ही ईश्वरीय मत है तो अन्य क्यों नहीं? मुसलमानों को युक्ति से, तर्क से, बुद्धि से प्रमाणित करना चाहिए कि अन्य मत क्यों हीन हैं? किन्तु मुसलमान ऐसा कर नहीं सकते। जब यह भी ईश्वर की ओर से है तो फिर खुदा ने इस्लाम क्यों चलाया? यदि इनमें बिगाड़ आ गये थे तो खुदा किसी सुधारक को भेजता और अब इस्लाम में भी बिगाड़ आ गये हैं तो कोई नये नबी आयेंगे क्या? कादयानियों के बहाइयों के अनुसार तो नये नबी आ चुके है मिर्जा गुलाम अहमद और बहाउल्लाह।

वैदिक धर्म ईश्वरीय क्यों हैं? इसलिए कि आदि सृष्टि का है। सब विद्याओं से पूर्ण है, पक्षपात रहित है और साथ ही बुद्धिसंगत भी। कुरान में ज्योतिष नहीं, गणित नहीं, आयुर्वेद और दर्शन नहीं। इसलिए अरबों को यूनान का ऋणी होना पड़ा। आओ जरा, धर्म, मत, सम्प्रदाय और मजहब के अन्तर को समझो। धर्म होता है मनुष्य को परोक्षज्ञान देने और कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य के विवेक कराने के लिये अत: उसका आधार होता है ज्ञान और तर्क। मत होता है मनुष्य को तर्क-वितर्क करने के लिए। परोक्षज्ञान में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विचार करने के लिए। और सम्प्रदाय होते हैं विविध प्रकार की उपासना सिखाने के लिए। अत: मतों का आधार बुद्धि और सम्प्रदायों का आधार श्रद्धा होती है। किन्तु मजहब चले हैं दूसरी जातियों की भूमि पर, माल पर अधिकार करने के लिए। अत: उसका आधार घृणा और विद्वेष होता है। मिस्रियों के प्रति विद्वेष, पलासियों के प्रति घृणा, यही यहूदियों (यहूदी मत) में मुख्य थे अपने को ईश्वर की सन्तान और दूसरों को काफिर समझकर उन्हें मारना, लूटना यही यहूदियों का प्रचार था। इस्लाम ने भी सबको काफिर, मुश्रिक, घृणित बताकर मारना, लूटना और अपना शासन फैलाना प्रारम्भ किया। मजहबों का आधार घृणा और क्रूरता रही है। इनमें सहयोग या काम करना बड़ा कठिन है। हिन्दू धर्म तो विविध विचारों में भी समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाये हुए है। किन्तु सैमेटिक रिलीजन इस बात को नहीं पसन्द करते। लेकिन आज संसार बदल रहा है। इन मजहबों को भी सहिष्णुता सीखनी पड़ेगी। कुछ बुद्धिहीन निर्बल नेता कहते हैं कि खण्डन-

मण्डन बन्द होना चाहिए। परन्तु वे यह नहीं सोचते कि जो मजहब अपने को सार्वभौमिक बनाकर सारे संसार के मनुष्यों के सामने बलात् और गर्वपूर्वक अपना मत रखकर उन्हें अपनाने पर जोर दे रहे हैं तो संसार भर के लोगों का भी अधिकार बन जाता है इन मतों की परीक्षा करना। पारसी अपना मत स्वयं पालन करते हैं, दूसरों पर जोर नहीं डालते अत: उनके मत के खण्डन की जरूरत नहीं। स्वामी जी ने पारसियों के मत का परीक्षण नहीं किया। ईसाइयत और इस्लाम बड़े गर्व से हिन्दुओं के सामने आये हैं तो इनकी परीक्षा करने का हर हिन्दू को भी अधिकार है। विना जांच-पड़ताल के कैसे अपना सनातन धर्म छोड़कर इन्हें ग्रहण कर लें!

प्रश्न—तो जांच-पड़ताल करके चुप रहिए, प्रकट न करिए।

उत्तर - क्यों प्रकट न करें! अपने अबोध भाइयों को अपने परिक्षण का परिणाम तो अवश्य बताना है जिससे वे इन मतों में न फंसे। और इन भोले भाइयों की बौद्धिक चिकित्सा है खण्डन। ईसाइयों ने हिन्दू धर्म के विरुद्ध, मुसलमान मत के विरुद्ध अनेक पुस्तकें लिखी हैं। पादरी अमादुद्दीन की लिखी पुस्तकें तारीखे मुहम्मदी और उम्महातुल मोमिनीन तो बड़ी कठोर पुस्तकें हैं। सुन्नियों के विरुद्ध अहले कुरान। शाहजादा सुलतान अहमद की लिखी पुस्तक 'हफवातुल मुस्लिमीन' भी कठोर खण्डन की पुस्तक है। आपस में भी मुसलमानों का खण्डन-मण्डन चलता रहता है। महाराजा महमूदाबाद ने, जो कि शिया थे; पुस्तक छपवाई थी "कसकोल"। इसमें सुन्नियों के विचारों का घोर खण्डन है। तो स्वामी जी ने इन मतों की परीक्षा इसलिए करी कि मतों का उन्माद कम हो। सब लोग विचारों से काम लें।

७८—प्रश्न करते हैं तुझको लूटों से कह लूटें वास्ते अल्लाह के और रसूल के और डरो अल्लाह से। मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १॥

समीक्षा—जो लूट मचावें, डाकू के कर्म करें, करावें और खुदा तथा पैगम्बर और ईमानदार भी बनें, यह बड़े आश्चर्य की बात है और अल्लाह का डर बतलाते और डांका आदि बुरे काम भी करते जायें और "उत्तम मत हमारा" कहते लज्जा भी नहीं। हठ छोड़ के सत्य वेदमत का ग्रहण न करें इससे अधिक बुराई दूसरी क्या होगी? ॥७८॥

लूट खसोट की प्रेरणा खुदा की ओर से; इससे बढ़कर अनर्थ क्या होगा? खुदा के लिए लूट! पैगम्बर के लिए लूट!! शोक!!! पैगम्बर साहब को तो रुपये की जरूरत रहती थी। उनके लिए तो लूट का धन काम दे जाता था। मगर अल्लाह को लूट के धन की क्या जरूरत थी?

वास्तव में अरब देश निर्धन था। खेतीबाड़ी थी नहीं। केवल खजूरों की पैदावार थी। व्यापार भी कम ही था। अत: लूटमार होती रहती थी। रसूल

ने भी अरबों के इस रिवाज को जारी रक्खा और लूट के धन से अपना भी काम चलाया और इस्लाम का भी। किन्तु अन्य सभ्य जातियों में तो लूट-खसोट को बहुत बुरा समझा जाता है। भारत में तो यह घोर निन्दनीय कर्म गिना जाता है। इसी कारण श्री स्वामी जी ने इस आयत पर आश्चर्य प्रकट किया है। जिस भारत में "मा गृध: कस्य स्विद्धनम्" (किसी का धन मत छीनो) वेद (यजु० ४०।१) का यह उपदेश गूंज रहा हो वहाँ के लोगों के मनों में कुरान की यह आज्ञा कैसी उतरेगी? इसलिए इस्लाम को हिन्दुओं ने प्रसन्नता से ग्रहण नहीं किया। बलात् ही इस्लाम फैलाया गया। आज के सभ्य संसार में इस उपदेश को कैसा समझा जाएगा। यह विचार मुसलमानों को करना चाहिए। अब तो अरब की भी दशा बदल चुकी है। इस कारण मुसलमानों को चाहिए कि आयत को मन्सूख कर देने की घोषणा कर दें। तभी इस्लाम का आदर होगा। आज के युद्धों में लूट, खसोट और व्यभिचार असभ्य और निन्दनीय कार्य माने जाते हैं। किन्तु अरब में ये काम चालू थे। इसीलिए मुसलमानों ने सर्वत्र देशों में ऐसे काम किये। और इससे इस्लाम का इतिहास बदनाम हुआ।

खिलजी, लोदी, गौरी, तैमूर आदि के काम आज घोर घृणित माने जाते हैं। पैगम्बर साहिब का तो इसमें इस कारण कोई दोष नहीं है कि अरबों की यह प्रवृत्ति ही थी। उसे रोकना महामुश्किल था। बस पैगम्बर महोदय ने इतना सुधार कर दिया कि लूट का धन मजहबी कामों में व्यय होने लगा। मुसलमानों को गहरा विचार करना चाहिए। जेहाद और लूट उस समय की ही बातें थीं। अब यह बातें बुरी समझी जाती हैं। अरबी संस्कृति और सभ्यता में रंगे हुए कुरान शरीफ के स्थान पर यदि भारतीय उपनिषदों को, गीता को अपना लें तो उनका महान् हित होगा।

१३५--बहिश्तें हैं सदा रहने की खुले हुए हैं दर उनके वास्ते उनके ॥ तकिए किए हुए बीच उनके मंगावेगें बीच इसके मेवे और पीने की वस्तु ॥ मं० ६। सि० २३। सू० ३८। आ० ५०।५१ ॥

४८- कह इससे अच्छी और क्या परहेजगारों को खबर दूं कि अल्लाह की ओर से बहिश्ते हैं जिनमें नहरें चलती हैं उन्हीं में सदैव रहने वाली शुद्ध बीबियां हैं। मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १५ ॥

१३४--फिराया जायेगा उनके ऊपर प्याला शराब शुद्ध का ॥ सफेद मजा देने वाली वास्ते पीने वालों के ॥ समीप उनके बैठी होंगी नीचे आंख रखने वालियां सुन्दर आँखों वालियां ॥ मं० ६। सि० २३। सू० ३७ आ० ४५ ॥

१५२—और फिरेगें ऊपर उनके लड़के सदा रहने वाले, जब देखेगा तू उनको; अनुमान करेगा तू उनको मोती बिखरे हुए ॥ और पहनाये जावेगें कंगन चांदी के और पिलावेगा उनको रब उनका शराब पवित्र ॥० ७। सि० २६। सू० ७६। आ० १६।२१ ॥

यदि वहाँ जैसे कि कुरान में बाग़-बगीचे, नहरें, मकानादि लिखें हैं वैसे हैं तो वे न सदा से थे न सदा रह सकते हैं। क्योंकि जो संयोग से पदार्थ होता है वह संयोग के पूर्व न था, अवश्यम्भावी वियोग के अन्त में न रहेगा। जब वह बहिश्त ही न रहेगा तो उसमें रहने वाले सदा क्योंकर रह सकते हैं? क्योंकि लिखा है कि गद्दी, तकिए, मेवे, और पीने के पदार्थ वहां मिलेंगे। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय मुसलमानों का मज़हब चल रहा था उस समय अरब देश विशेष धनाढ्य न था। इसीलिए मुहम्मद साहेब ने तकिए आदि की कथा सुनाकर गरीबों को अपने मतों में फंसा लिया। और जहां स्त्रियां हैं वहां निरन्तर सुख कहां? वे स्त्रियाँ कहां से आयी हैं? अथवा बहिश्त की रहने वाली हैं? यदि आयी हैं तो जावेगीं और जो वहीं की रहने वाली हैं तो कयामत से पूर्व क्या करती थीं? क्या निकम्मी अपनी उमर गंवा रही थीं?

१५२—क्यों जी मोती के वर्ण से लड़के वहाँ किस लिए रखे जाते हैं! क्या जवान लोग सेवा वा स्त्रीजन उनको तृप्त नहीं कर सकतीं? क्या आश्चर्य है कि जो यह महा बुरा कर्म लड़कों के साथ दुष्टजन करते हैं उसका मूल यही कुरान का वचन हो? और बहिश्त में स्वामी-सेवकभाव होने से स्वामी को आनन्द और सेवक को परिश्रम होने से दु:ख तथा पक्षपात क्यों? और जब खुदा ही उनको मद्य पिलावेगा तो वह भी उनका सेवकवत् ठहरेगा, फिर खुदा की बड़ाई क्योंकर रह सकेगी? और वहां बहिश्त में स्त्री-पुरुष का समागम और गर्भस्थिति और लड़के वाले भी होते हैं वा नहीं? यदि नहीं होते तो उनका विषय-सेवन करना व्यर्थ हुआ और जो होते हैं तो वे जीव कहां से आये? और बिना खुदा की सेवा के बहिश्त में क्यों जन्मे? यदि जन्मे तो उनको बिना ईमान लाने और खुदा की भक्ति करने से बहिश्त मुफ्त मिल गया। किन्हीं बेचारों को ईमान लाने और किन्हीं को बिना धर्म के सुख मिल जाये इससे बड़ा दूसरा अन्याय कौन सा होगा? ॥१५२॥

कुरान के बहिश्त सम्बन्धी विचारों पर ऋषि ने जो तर्क किये हैं वे मुस्लिम सिद्धान्तों का सिर चकरा देने वाले हैं। कितने सूक्ष्म तर्क स्वामी जी ने दिये हैं। है इनका कोई उत्तर? वस्तुत: बहिश्त के इन सब उपदेशों को एक अलंकार मान लिया जाये तो सब समस्या मुसलमानों की हल हो सकती है। अर्थात् संसारी जनों को जैसा सुख इन बातों से होता है स्वर्ग में वैसा ही सुख

आत्मिक रूप में होगा। ये भौतिक सुख हैं विनाशवान् और वह होगा अमर, आध्यात्मिक आनन्द। मुस्लिम मौलाने इस पर विचार करें। वैदिक धर्म का स्वर्ग है :—

स मृत्यु पाशान् परतः पणोद्य,
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके,
शोकातिगोः यानसौदुःखैर्वर्जितः ॥ कठो० ॥

जो नचिकेता नामक अग्नि को चुनता है अर्थात् योगविधि को करता है वह मानसिक दुःखों से रहित हुआ स्वर्ग लोक में (एक प्रकार की दशा में) आनन्द से रहता है। (कठोपनिषद्)

पुराणों में जो स्वर्ग का वर्णन है वह भी एक काल्पनिक रूपक मात्र है। और कहीं-कहीं संसारी वैभव का वर्णन है। अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त ३५ में कुछ लोग कुरान जैसा स्वर्ग दिखाते हैं। किन्तु वे लोग साहित्यिक शैली को नहीं समझते। यहां लक्षणा है। सब अर्थ लाक्षणिक होंगे :—

'अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम्" ॥
॥२७।३४।२॥

यहां आया है "एषाम् बहुस्त्रैणम्" इनके बहुत स्त्रियाँ होंगी "नैषां शिश्नं दहति जातवेदाः" उनके लिंग को, अग्नि नहीं जलायेगी, (अर्थात् खूब भोग करेंगे)। अब जरा बुद्धि को गति दीजिए; वे स्वर्गीय जन होंगे "अनस्थाः" हाड़-मांस के शरीर से रहित "पवनेन शुद्धाः" वायु से शुद्ध किए हुए (भावार्थ है शरीर रहित) और रागद्वेष से रहित, पवित्र। अब बताओ स्त्री भोग की संगति कहां लगी? नैषां का अर्थ है ज्ञानवान् प्रभु उन जीवों को "शिश्नम्" ज्ञान और आनन्द प्राप्त करने की शक्ति को नष्ट नहीं होने देता। बहुत स्त्रियों के होने पर भी ऐसे योगियों के कामेन्द्रिय को "जातवेदा" कामाग्नि "न प्रदहति" नहीं जलाती अर्थात् वे योगी कामजित् होते हैं। इस प्रकार से ६ अर्थ निकलते हैं। मन्त्र के बिना खींचतान के सीधे-सादे अर्थ हैं। मन्त्र में 'सुरोदकाः' शब्द के अर्थ किए हैं — शराब और जल। भला शराब और जल की यहां क्या संगति है? अर्थ है देवताओं का जल— सुर+उदक अर्थात् दिव्य जल। शरीर रहित जीवों को शराब और जल की क्या आवश्यकता?

सूक्त में, कमलों के सरोवर फूलों, फलों से भरे मिलेगें। यह मुहावरा है अर्थात् अत्यन्त आनन्द प्राप्त होगा। यदि मुसलमान भाई भी कुरान के बहिश्त-वर्णन को अलंकार सिद्ध कर दें तो कोई आक्षेप न रहे। किन्तु इस्लाम की मान्यता है कि कब्रों में से शरीरधारी नर-नारी उठेगें। जबकि वेद कहता है—'अनस्थाः" स्वर्गीयजन शरीर रहित होंगे। वस्तुतः स्वामी जी ने ठीक लिखा है कि ऐसे वर्णन लोगों को अपने मत में लाने के लिए किए गये हैं। अरब के लोग अतिकामी होते हैं। लड़ाई, लूट और उन्हें स्त्रियाँ ही पसन्द हैं। उनकी रुचि को खीचने के लिए वैसा ही वर्णन जिहाद, लूट, शराब और स्त्रियों की प्राप्ति का कुरान में कर दिया गया है। आर्य संस्कृति में त्याग, तर्क और ज्ञान की महिमा है। अतः ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, सिक्ख इन सब के यहां आध्यात्मिक आनन्द की महिमा का वर्णन मिलेगा।

१०१ और निश्चय भेजे हमने बीच हर उम्मत के पैगम्बर—
॥ मन्त्र ३। सि० १४। सू० १६। आ० ३६॥

समीक्षा—जो सब कौमों पर पैगम्बर भेजे हैं तो सब लोग जोकि पैगम्बर की राय पर चलते हैं वे काफिर क्यों? क्या दूसरे पैगम्बर का मान्य नहीं सिवाय तुम्हारे पैगम्बर के? यह सर्वथा पक्षपात की बात है। जो सब देश में पैगम्बर भेजे तो आर्यावर्त्त में कौन सा भेजा? ॥१०१॥

३२- निश्चय हम तेरे मुख को आसमान में फिरता देखते हैं अवश्य हम तुझे उस किबले को फेरेगें कि पसन्द करे उसको, बस अपना मुख मस्जिदुलहराम की ओर फेर, जहां कहीं तुम हो अपना मुख उसकी ओर फेर लो ॥मं० १॥ सि० २। सू० २। आ० १४४॥

समीक्षा—क्या यह छोटी बुतपरस्ती है? नहीं बड़ी।

पूर्वपक्षी—हम मुसलमान लोग बुतपरस्त नहीं हैं किन्तु बुतशिकन अर्थात् मूर्ति को तोड़ने हारे हैं क्योंकि किबले को खुदा नहीं समझते।

उत्तरपक्षी—जिनको तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उन-उन मूर्तों को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। यदि बुतों के तोड़ने हारे हो तो उस मस्जिद किबले बड़े बुत को क्यों न तोड़ा?

स्वामी जी का प्रश्न कितना यथार्थ है कि यदि अन्य मतों के संस्थापक भी ईश्वर के पैगम्बर थे तो इस्लाम ने उनका विरोध क्यों किया?

सूरते तोबा की आयत २९ है—

किताब वाले (यहूदी और ईसाई) जो न अल्लाह पर ईमान लाते हैं न यौमुल आखिरी (कयामत) पर और न उसे हराम करते हैं जिसे अल्लाह और

उसके रसूल ने हराम ठहराया हैं। और न सच्चे दीन (इस्लाम) को अपना-अपना दीन बनाते हैं। उनसे लड़ो यहां तक कि वे अप्रतिष्ठित होकर अपने हाथों से जजिया देने लगें।"

अब विचारिये कि हजरत मूसा को पैगम्बर मानने वाले यहूदियों पर और हजरत ईसा को पैगम्बर मानने वाले ईसाइयों पर अल्लाह का यह कोप क्यों हुआ? या तो वे मुसलमान बनें या जजिया (कर) दें; सो भी जलील हुए।

वस्तुतः रसूल मुहम्मद महोदय अरब में एकमात्र इस्लामी शासन चाहते थे। यह धर्म के द्वारा राजनैतिक आन्दोलन न था। और इसमें हजरत को सफलता भी मिली। उनके जीवन में ही पूरे अरब में एकमात्र इस्लामी शासन कायम हो गया। यहूदी, पारसी और ईसाइयों को मुसलमानों ने कुचल कर रख दिया। भारत में सिन्ध पर भी इस्लामी शासन हो गया। मध्य एशिया पर भी आक्रमण होने लगे किन्तु तुर्कों ने अरबों की सारी वीरता कुचल डाली। तुर्क चंगेज खां सेनापति हलाकू (बोद्ध) ने खलीफा मुस्तहाशिम बिल्लौर को मरवा डाला और खिलाफत पर अधिकार कर लिया। और आज तो संसार भर के मुसलमान मिलकर भी यहूदियों और ईसाइयों का मुकाबला नहीं कर सकते। कोई भी इस्लामी शक्ति इनसे जजिया लेने का नाम नहीं ले सकती। आज तो यह समय है कि इन बातों को भुलाकर सब संसार के लोग मिलकर रहें और अपने देश को उन्नत बनावें।

हजरत मुहम्मद साहब की हमारे हृदय में बड़ी इज्जत है। उन्होंने अपने देश वालों को मजबूत बना दिया और अरब को प्रतिष्ठा की ऊंची चोटी पर चढ़ा दिया। किन्तु अन्य देशों पर इस्लाम अब नहीं थोपा जा सकता। कुरान के उपदेश उस समय के और उस देश के लिए ही ठीक थे। बुद्धिवादी, एकेश्वरवाद की सूक्ष्मता को वर्णन करने वाले वैदिक धर्मियों के लिए तो यह उपदेश निरे व्यर्थ ही हैं। कुरान यदि ईश्वरीय ज्ञान है तो २३ वर्षों तक समय-समय पर क्यों आता रहा? एकदम ही यह उपदेश हजरत के हृदय में उदय क्यों नहीं हुए? वस्तुतः जीवन में जैसी-जैसी आवश्यकता रसूल को पड़ती रही वैसे-वैसे वचन उनके मुख से निकलते रहे। वे उन वचनों को ईश्वर की प्रेरणा ही समझते थे। अतः कुरान सार्वभौम ईश्वरीय उपदेश नहीं है।

स्वामी जी ने काबे की प्रतिष्ठा और हिन्दु मूर्तियों के अपमान करने पर ठीक ही लिखा हैं कि तुम काबे को पूज्य समझते हो तो हिन्दू मूर्तियों का आदर करते हैं। जड़ वस्तु की पूजा दोनों करते हो।

यहाँ भी वास्तविकता तो यह है कि अरब के लोग ललित कलाओं संगीत कला, चित्रकला, मूर्तिकला को नहीं जानते थे। इस्लाम इन कलाओं का घोर

विरोधी है। आर्यसमाजी मूर्तिपूजक नहीं है परन्तु मूर्ति कला, चित्रकला के विरोधी नहीं है। यूनान और भारत दोनों ही देशों ने चित्रों द्वारा भावों की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति की है। कला के शत्रु, संगीत और नृत्य के विरोधी हृदयहीन कहे जा सकते हैं। मुसलमानों ने भी चित्रकला और संगीत कला का आदर किया। अकबर के शयनागार सीकरी में बड़े-बड़े सुन्दर चित्र बने हुये थे। इन चित्रों को कट्टर मुसलमान औरंगजेब ने बिगड़वा दिया। मुसलमानों ने मूर्ति तोड़ने के उन्माद में बड़ी सुन्दर कला-कृतियों का गिरजाओं में बौद्ध और हिन्दुओं के मन्दिरों में विनाश कर डाला। उनके ये कृत्य अमानवीय ही कहे जा सकते हैं। मुसलमानों को भी मूर्तिकला ने आकर्षित किया। रामपुर के नवाब हामिद अली खाँ साहब ने श्वेत पत्थर की दो मूर्तियां बनवाईं। एक अपने दादा कलवें अली खां साहब की और एक अपनी। उनकी मूर्ति रामपुर के एक पार्क में आज भी खड़ी है। जो रामपुर से मुरादाबाद को जाने वाली बस के रास्ते में देखी जा सकती है। चित्रकला और संगीतकला में भी भारत के मुसलमानों ने बड़ा नाम पैदा किया। कहिये गये इस्लामी उपदेश? मजहबी उन्माद में मानवता का, सहृदयता का, कलाओं का विरोध करना उचित नहीं माना जा सकता।

स्वामी जी ने जो मतों की आलोचना करी है वह किसी को चिढ़ाने या नीचा दिखाने के लिए नहीं की है। भूमिकाओं में उन्होंने वार-वार लिखा है कि यह प्रयत्न इसलिए है कि विद्वान् लोग तर्क द्वारा सत्य को जान सकें और कार्यक्रम बनायें कि सत्य, न्याय, परस्पर उपकार की भावना वने। सब मनुष्यों में एक दूसरे का हित करने की भावना बने। सब मनुष्यों में एक दूसरे का हित करने की भावना उत्पन्न हो। मजहबी असहिष्णुता, विद्वेष, तंगदिली दूर हो। सार्वजनिक मानवता के व्यवहार में प्रेम पैदा हो वह अपने स्वमन्तव्यामन्तव्य में लिखते हैं—"मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना (और) मनवाना तथा जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझे अभीष्ट है।"

बातों का खण्टन-मण्डन भारत की पुरानी परम्परा है खण्डन-मण्डन से सत्य का शुद्ध स्वरूप सामने आ जाता है और बुद्धि की उन्नति होती है। अतः वेद, शास्त्र, कुरान, इंजिल सब पर बुद्धिपूर्वक तर्क का प्रयोग करना अनुचित नहीं। परन्तु हृदय में उदारता अवश्य रहे। मानवता के व्यवहार प्रेममय, उपकारमय रहने चाहिएं। और सब ही महापुरुषों मूसा, हजरत यीशु हजरत मुहम्मद, बुद्ध, पूज्य तीर्थंकरों का इन संतों का आदर सब ही करें। वेद का यह उपदेश सब में फैले:—

"सहृदयम् सांमिनस्यं' अविद्वेषं कृणोमि वः । अन्यान्यमभि हर्यत वत्सं जातमेवाध्न्या ।"

हे मनुष्यो सहृदय रहो, अर्थात् किसी को कष्ट में देखो तो उसके कष्ट की तुम्हें अनुभूति हो और उसके कष्ट का निवारण करो । मनों में समझौता रखो दूसरों के विचार भी सहिष्णुता से सुनो । द्वेष से रहित रहो । एक दूसरे को इस प्रकार धारण करो कि जैसे गौ अपने तत्काल उत्पन्न बछड़े को प्यार करती है । आर्यसमाज का सातवां नियम भी है 'सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए ।"

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

"हे प्रभो ! तेरी सृष्टि में सब सुखी हों । सब ही रोगरहित हों । सब ही कल्याण को प्राप्त करें । कोई भी दुःख का भागी न हो ।"

सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने का फल

१. सत्यार्थप्रकाश को पढ़ने और विचारने से भूत-प्रेत, जिन्न, राहू-केतू शनैश्चर आदि ग्रहों के अंधविश्वास दूर हो जाते हैं । इन अन्धविश्वासों में पौराणिक, जैन, बौद्ध, सिक्ख, ईसाई, मुसलमान सब ही फंसे हुए हैं और कष्ट उठाते हैं ।

२. सत्यार्थप्रकाश को मन लगाकर पढ़ने से मजहबी असहिष्णुता दूर होकर तर्क में रुचि बढ़ेगी ।

३. सत्यार्थप्रकाश के पढ़ने से स्वराज्य में प्रेम बढ़ेगा । स्वदेश भक्ति और राष्ट्रीय-एकता के भाव दृढ़ होगें ।

४. सत्यार्थ प्रकाश बताता है कि मानव मात्र कभी एक ही थे ।

५. सत्यार्थ प्रकाश सिखाता है कि सब के साथ उत्तम व्यवहार ही धर्म का प्रथम अंग है ।

सप्तम समुल्लास

ईश्वर और वेद

इस समुल्लास में प्रथम चार वेद मन्त्र देकर श्री स्वामी जी लिखते हैं । "जो सब दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव, विद्या युक्त और जिसमें पृथ्वी, सूर्य आदि लोक स्थित हैं, और जो आकाश के समान व्यापक सब देवों का देव परमेश्वर है, उसको जो मनुष्य न जानते, न मानते, न ध्यान करते, वे नास्तिक, मंदगति सदा दुःख सागर में डूबे ही रहते हैं ।"

इन पंक्तियों में श्री स्वामी जी ईश्वर का जानना और मानना दोनों बातें आवश्यक समझते हैं ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव न जानने के कारण ईश्वर को मानने वालों ने भी बड़े-बड़े अनर्थ किये और आज भी कर रहे हैं । उर्दू का एक कवि लिखता है—

"खुदा के वन्दों को देखकर ही,
खुदा से मुनकिर हुई है दुनिया
कि जिस खुदा के हैं ऐसे वन्दे,
वह कोई अच्छा खुदा नहीं है ।"

ईश्वर का जानना-मानना ध्यान करना जीवन को अध्यात्म में रंग कर पवित्र शांत आनन्दमय बल देता है । ईश्वर को न जानने, न मानने, न ध्यान करने वाले जन दुःख सागर में डूबे रहते हैं स्वामी जी के इस विचार पर आज के लोग हँसेंगे । क्या रूस और चीन के लोग दुखी हैं ? और क्या संसार के ईश्वर विश्वासी लोग सुखी हैं ? दोनों बातें प्रत्यक्ष के विरुद्ध हैं किन्तु गहरे विचार से देखा जाये तो जीवन की ऊपर की भोग वस्तुयें ही सुखी नहीं करती, मन बुद्धि और अन्तरात्मा में उल्लास ही शांति और संतोष हो वह है सच्चा सुख । ईश्वर न मानने वाले देशों की, भीतरी खोज करो तो पता चलेगा सुखी हैं, वा दुःखी । ईश्वर के मानने वालों को कष्ट में धैर्य मिलता है, कि हमारा भी कोई है, उससे दुःख को रोकर चित्त हल्का हो जाता है और आश्वासन-सा

मिलता है। आध्यात्मिक और मानसिक क्लेश तो रहते ही नहीं, दैविक, भौतिक कष्ट आते हैं उनमें भी सहारा मिलता है। ईश्वर का भय सैकड़ों पापों से रोकता है। दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह ज़फर का शेर है !

"उसे आदमी जफर न जानियेगा,
चाहे कितना हो साहिने फहमोज का।
जिसे ऐश में यादे खुदा नहीं,
जिसे तैश में खौफे खुदा न रहा।

ईश्वर को मानने वाले भी पाप, अपराध अत्याचार करते समय उसका स्मरण भूल जाते हैं क्यों? केवल कुसंस्कारों के कारण सच्चे पूर्ण आस्तिक बनने के लिए साधना करनी पड़ती है। उस साधना सिद्ध आस्तिक के लिये वेद कहता है " तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुयश्यतः" यजुः ४०/७

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेसु विगतस्पृहाः,
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते,

(गीता)

दुःखों में घबराहट नहीं, सुखों में लालसा नहीं, राग, भय और क्रोध से रहित है मुनि।

तो ऐसे वैरागी क्रांति नहीं कर सकते, इसलिए यह देश इतने वर्षों तक दास बना रहा। बन्धुवर ! क्रांति तो अस्तिकों ने ही की है, पूज्य महाराज शिवाजी गुरु गोविन्दसिंह जी, राणा प्रताप यह सब आस्तिक ही तो थे। सन् ५७ के क्रान्तिकारी पूज्य नाना राव, मान्य तात्या टोपे, प्रातः स्मरणीया महाराणी झांसी ये सब आस्तिक ही थे। वीरवर सावरकर महामान्य श्री खुदीराम बोस, परम आस्तिक पं० राम प्रसाद विस्मिल ये सब क्रान्तिकारी प्रभु विश्वासी थे। वह क्रान्ति जैसी कि नक्सलवादी कम्युनिस्टों की है। विश्वासघात, हत्या, निर्दयता ऐसी क्राति आज तक नहीं करते, ईश्वर का मानने वाला ईश्वर की सृष्टि का कल्याण चाहता है। समझा कर बुराई दूर करेगा जब सब उपाय व्यर्थ हो जाएँगे तो दुष्टदमनार्थ शस्त्र भी उठायेगा, वह हिंसा नहीं।

वेदमंत्रों का अर्थ देने के पश्चात् एक प्रश्न आता है—

प्र०—वेद में ईश्वर अनेक हैं इस बात को तुम मानते हो या नहीं ?

उ०—नहीं मानतें क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा।

प्र०—वेदों में अनेक देवता लिखे उनका क्या अभिप्राय है ?

उ०—देवता दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं। जैसे पृथिवी; किंतु इसको कहीं ईश्वर या उपासनीय नहीं माना है।

सत्यार्थ प्रकाश की इन पंक्तियों ने हिन्दुओं पर लगे इस मिथ्या कलंक को मिटा दिया कि हिन्दू अनेक देवतावादी हैं एकेश्वरवादी नहीं। वेद एकेश्वर की शिक्षा नहीं देता किन्तु अनेक देवों का पूजन सिखलाता है ये सब भ्रान्ति श्री स्वामी जी ने दूर कर दीं।

अब आगे श्री स्वामी जी ने दर्शन सम्बन्धी एक बहुत सूक्ष्म परन्तु बिल्कुल नया तर्क प्रस्तुत किया है कि ईश्वर सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण है। अनुमान और शब्द प्रमाण से तो ईश्वर की सिद्धि अब तक की जाती रही है किन्तु स्वामी जी प्रत्यक्ष प्रमाण दे रहे हैं। केवल एक घुमाव की बात है। श्री स्वामी जी का तर्क है प्रत्येक वस्तु के प्रत्यक्ष में उसके रूप आकार आदि गुणों का प्रत्यक्ष होता है। इससे गुणों का प्रत्यक्ष समझा जाता है तो सृष्टि में रचना, आनन्दोंद्रेक आदि गुणों का प्रत्यक्ष होता है फिर ईश्वर को प्रत्यक्ष क्यों न माना जाये। हमारे एक आर्य विद्वान ने स्वामी जी के इस तर्क को गलत लिखा है। उनका कहना है घड़ी के प्रत्यक्ष से घड़ीसाज का प्रत्यक्ष तो नहीं हो जाता उनका तर्क मोटे रूप में सही मालूम पड़ता है पर बुद्धि का थोड़ा और प्रयोग करने पर उनका कुतर्क धूल चाटने लगता है। घड़ीसाज दूर है और साकार है। देशकृत दूरी उसके प्रत्यक्ष में बाधक है किन्तु ईश्वर सर्वव्यापक है और निराकार है। घड़ीसाज से उसकी तुलना करना अपनी तर्क शक्तिहीनता को प्रभावित करना है। साथ ही घड़ी की तुलना करने वाले तार्किक ने स्वामी जी के गुणों के प्रत्यक्ष द्वारा गुणी का प्रत्यक्ष इस तर्क पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। घड़ी और घड़ीसाज का गुण गुणी सम्बन्ध नहीं है।

"समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता,

सांख्य दर्शन का यह सूत्र बताता है कि सुषुप्ति में हमें लम्बे गुण के पर्दे में प्रभु का प्रत्यक्ष होता है और समाधि में सतोगुण के पर्दे में। ईश्वर न मानने वाले जैन बौद्ध आदि कहते हैं कि आत्मा के अपने गुणों के ही विकास का यह

परिणाम है किसी अन्य तत्व से यह आनन्द नहीं मिलता। यह लोग आत्मा में ही अपार गुण मानते हैं किन्तु इतने गुणों से युक्त यह जीव बन्धन में कैसे फंसा और गुणों का विकास सीमित ही क्यों रहा? इसका समाधान इनके पास नहीं है। वस्तुतः आनन्द का कोष वह ब्रह्म ही है अल्पज्ञ जीव ज्यों-ज्यों अपने को निर्मल बनाता है। त्यों-त्यों उस ईश्वर रूपी सविता की किरणें जीव को प्रकाशित करने लगती हैं उसका प्रकाश जहूर महिमा सर्वत्र व्याप्त है मगर—

नकाब दूर है हरचन्द रुए लैला से,
कहां से लाये मगर कोई दीदए मजनू को।

(भक्त को हर जगह प्रभु प्रत्यक्ष है, और दुराग्रही घमंडी कुतर्की को सदा दूर)।

न मां दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमाः,
मा मयाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः।

गीता का कथन है कि आसुरी भाव वाले मूढ़ ईश्वर से दूर रहते हैं।

'न साम्यरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं
वित्त मोहेन मूढम्"

बालबुद्धि प्रमादी, धनदाराओं में मस्त रामजी के भैंसे उसकी अनुभूति नहीं पाते। आप कहेंगे भगवान् महावीर भगवान् बुद्ध तो त्यागी, तपस्वी थे। उन्होंने ईश्वर का अस्तित्व क्यों नहीं माना? हमारा निवेदन है कि इन महापुरुषों ने ईश्वर सत्ता का निषेध कहां किया। तीर्थंकर भगवानों की तो कोई वाणी वैखरी रूप में होती ही नहीं उनके गणधर ही व्यक्त रूप में उनके उपदेश लिखते हैं, तो गणधरों का भी प्रत्यक्षरूप में कोई ग्रन्थ मिलता नहीं भगवान बुद्ध के वचन मिलते हैं उनमें ईश्वर का कहीं निषेध नहीं। यह सब बबाल बाद के हैं पंडितों के चमत्कार।

श्री कबीर जी, श्री राधास्वामियों के गुरु ये लोग वेदों को नहीं मानते किन्तु आपने अनुभव के आधार पर ईश्वरीय सत्ता की साक्षी देते हैं सिक्ख गुरु जी, सूफी भी अपने अनुभव के आधार पर ईश्वरी का अस्तित्व मानते हैं।

प्र०—ईश्वर व्यापक है वा किसी देश विशेष में रहता है।

उ०—व्यापक है, क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तिर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सबका, स्रष्टा, सबका धर्ता और पालनकर्ता और प्रबन्धकर्ता नहीं हो सकता।

अप्राप्त देश में कर्ता की क्रिया असंभव है।

ईश्वर सर्वत्र है स्वामी जी की यह मान्यता अपनी नहीं किन्तु वेद, उपनिषद् और दर्शनों के आधार पर है।

"ओतः-प्रोतश्च विभुः प्रजासु" यजुः ३२।८
"सपर्यगात्,' (यजु० ४०।८) वह विभु (व्यापक)

भगवान सब प्रजा में ओत-प्रोत है, अर्थात् सर्वत्र समाये हैं।

"एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।" (कठ० उप०)

वह ब्रह्म सबमें व्यापक है एक है, वशी है। सब प्राणियों की अन्तरात्मा में हैं। वही एक रूप प्रकृति को अनेक रूपों में करता है।

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।
(गीता)

उसके हाथ, पाँव, आँखें, सिर, मुख सब ओर हैं। उसके कान सर्वत्र हैं (अर्थात् सब की सुन रहा है) (सर्वमाहत्व तिष्ठति) सबको घेर कर स्थित है। अर्थात् सर्वव्यापक है।

वेद, उपनिषद्, गीता, दर्शन सभी उसे सर्वव्यापी मानते हैं पुराण भी ईश्वर की व्याप्ति स्वीकार करते हैं। किन्तु कहीं-कहीं जाकर फिर बहकी-बहकी बातें करने लगते हैं। खंभ से बंधे प्रह्लाद को बचाने के लिए भगवान्

"सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितम्,
व्याप्तिञ्च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः,
अदृश्यतामद्भुतरूप- मुदवहन्,
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्।

(श्रीमद्भागवत स्कंध ७ अध्याय ७ श्लोक १८) भक्त (प्रह्लाद) की वाणी कि मैं यहां हूं सत्य सिद्ध करने के लिये और सब प्राणियों में मैं व्यापक हूं यह सिद्ध करने के लिए खम्भ में अद्भुत रूप (नरसिंह) को धारण किये हुए दिखाई पड़े।

यहां श्रीमद्भागवत ईश्वर को सब प्राणियों में व्यापक बता रहा है। ईसाई मत में ईश्वर सर्वव्यापक नहीं है न इस्लाम में। इस्लाम के ग्रन्थ कुरान से तो कहीं-कहीं सर्वव्यापक होने का प्रमाण मिल भी जाता है। बाइबिल में तो ईश्वर को साकार मनुष्याकृति ही माना है। पढ़ो उत्पत्ति इब्राहीम के पास ईश्वर का आना और भोजन करना। अब लोग प्रश्न करते हैं कि जब ईश्वर सर्वव्यापी है तो गन्दे पदार्थों में भी है तो गन्दगी दुर्गन्ध भी उसे सूंघनी पड़ेगी, उत्तर है कि ईश्वरीय सत्ता सूक्ष्मतम है। उस पर प्रकृति के परमाणुओं का प्रभाव नहीं पड़ता ईश्वर तो सबसे ही सूक्ष्म है उस पर प्रभाव नहीं।

दूसरा प्रश्न है कि जब वह हमारे हृदयों में है तो हमें बुरे कामों से रोकता क्यों नहीं?

उत्तर—यदि ईश्वर जीवात्मा के स्वभाव के विरुद्ध रोक लगावे तो जीव की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाये। जीव को कर्म करने की स्वतन्त्रता है। फल भोगने में वह परतन्त्र है। जैसे एक विद्यार्थी परीक्षा भवन में जो चाहे सो लिखने में स्वतन्त्र है। उसकी देख-रेख करने वाला अध्यापक उसे गलत लिखने से रोके, और सही लिखवा दे तो उस विद्यार्थी की स्वयं सोचने विचारने की शक्ति क्षीण हो जायेगी। अतः वह लिखने में स्वतन्त्र है पर अंक पाने में परतन्त्र है, जीव स्वयं ही सोच-विचार कर श्रेष्ठ कर्म करे। श्रेष्ठ और नेष्ट कर्मों को ईश्वर ने शास्त्र द्वारा पहले ही बता रक्खा है फिर मूर्तियों की पूजा क्यों न की जाये? भैया जी! बुद्धि को थोड़ा श्रम कराइये, घी मटके में है किन्तु मटका घी नहीं हो सकता। ईश्वर मूर्ति में व्यापक है और मूर्ति है व्याप्य। व्यापक और व्याप्य एक नहीं होते। भीगे कपड़े में जल है किन्तु कपड़ा जल नहीं है। ईश्वर मूर्ति में भी व्यापक है और आप में भी किन्तु न आप ईश्वर हैं न मूर्ति ईश्वर है। यदि कहो कि हम उस मूर्ति में व्यापक ईश्वर की ही पूजा करते हैं तो ईश्वर तो आप में भी व्यापक है अपने ही को क्यों न खोजते? कठोपनिषद की श्रुति यही कहती है—

"तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति, धीरा,
तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।"

उस ब्रह्म तत्व को जो अपने में देखते हैं, उन्हें शाश्वत सुख (मुक्ति) मिलती

है न इतरेषाम्। जो उसे अपने से बाहर मूर्ति आदि में देखते हैं उन्हें नहीं। व्याप्य और व्यापक को एक मानना बुद्धि के विरुद्ध है। उसकी खोज सब ही संतों ने अपने में ही की है।

ईश्वर सर्व व्यापक है यह सिद्धान्त ही ईश्वर की एकता को सिद्ध करता है। क्योंकि सर्वव्यापी पदार्थ एक ही हो सकता है। दूसरा पदार्थ व्यापक तब होगा, जब उससे सूक्ष्म हो और जो सबसे बढ़कर सूक्ष्म होगा वही ईश्वर माना जायेगा। "सा काष्ठा सा परागतिः" यह उपनिषद् की श्रुति है। चरम सीमा पर व्याप्ति होना ही ईश्वरत्व है। एक-सी दो सत्तायें एक ही स्थान में व्यापक नहीं हो सकतीं।

"तदा खुलहमजिन्स महासत है" अरबी के मन्तक का सिद्धान्त और "न द्वि-सतास्तित्वमेकज" यह आपके दर्शनों की मान्यता है, एक-सी दो वस्तुएँ एक ही बराबर आकाश में नहीं रह सकती, दूसरे के लिए स्थान बढ़ेगा। अतः जो सर्वव्यापी एक सत्ता है तो दूसरी सत्ता को स्थान कहाँ? अतः सर्वव्यापिनी सत्ता एक ही है।

आगे स्वामी जी ने एक और महत्त्व पूर्ण प्रश्न उठाकर उत्तर दिया है—

ईश्वर न्यायकारी है तो दयालु नहीं रह सकता, दयालु है तो न्यायकारी नहीं हो सकता। दो गुण न्याय और दया विरुद्ध गुण है। स्वामी जी समाधान करते हैं—

"न्याय और दया का नाम मात्र ही भेद है। क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है, वही दया से। दंड देने से प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करना बंद करके दुःखों को प्राप्त न हो। वही दया कहाती हैं जो पराये दुःखों का छुड़ाना। और जैसा अर्थ न्याय और दया का तुमने किया वह ठीक नहीं। क्योंकि जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया उसको उतना ही वैसा दंड देना चाहिये इसी का नाम न्याय है। और जो अपराधी को दंड न दिया जाये तो दया का नाश हो जाये क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है। जब एक के छोड़ने से सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है। वह दया किस प्रकार हो सकती है? दया वही है कि उस डाकू को कारागार में डालकर पाप करने से उसे बचाया जाये। पाप

कर्मों से बचाना डाकू पर दया और उस डाकू को मार देने से अन्य सहस्रों पर दया प्रकाशित होती है।" (सत्या-प्र०)

स्वामीजी के इस लेख का तात्पर्य यह हुआ कि न्याय और दया का प्रयोग एक ही व्यक्ति पर नहीं होता। न्याय हुआ डाकू के साथ और दया के पात्र हुए सहस्रों प्रजा-जन किन्तु डाकू पर भी स्वामी ने लिखा है कि उसे कारागार मे रखकर अन्य डाकों के पाप से बचाया जाता है यह उसका सुधार भी उस पर दया है। ये लाखों जीव योनियाँ सुधारात्मक दंड ही हैं।

जिस इन्द्रिय से अधिक पाप का अभ्यास जीव को हो जाता है वही इन्द्रिय उस जीव से छीन ली जाती है ताकि वह उस अभ्यास को भूल जाये। जब क्रोध का माद्दा बढ़ जाता है तो उसे सिंहादि क्रोधी योनियां प्रदान को जाती है ताकि वह माद्दा (प्रकृति) शीघ्र व्यय हो जाये, सिंह की आयु कम होती है, हाथी की अधिक। सुधारात्मक दण्ड है इसकी दया और कभी-कभी ऐसे भोग भी सामने आते हैं कि उस समय धैर्य छूट जाता है। विश्वास हिल जाते हैं। किन्तु ईश्वर प्रार्थना उस समय धैर्य बंधाती है। शांति भी मिलती है। इन सब बातों पर विचार किया जाये तो नाना तर्क उठते हैं। संसार अपार है। तर्क पर सबका तोला जाना कठिन है।

प्र०—ईश्वर साकार है वा निराकार?

निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न होता जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तु में गुण, कर्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं। (स० प्र०) यदि साकार ईश्वर ने स्वेच्छा से अपना शरीर बनाया तो इससे प्रथम तो निराकार ही था। ईश्वर ने साकार रूप क्यों धारण किया? ईश्वर के कोई भी कार्य निष्प्रयोजन नहीं होते। यदि कहो कि भक्तों को दर्शन देने के लिए तो भक्तों को दर्शन माया का ही हुआ, क्योंकि शरीर माया का है। और वे भक्त भी महामूर्ख हैं। जो तत्व आत्मस्थ है उसे बाहर देखने का हठ करते हैं। यदि कहो कि भक्तों में रक्षा के लिए, राक्षसों को मारने के लिये प्रभु शरीर धारण करते हैं तो भी गलत है। सर्वव्यापक प्रभु बिना शरीर धारण किये ही हिरण्यकशिपु को मारकर प्रह्लाद की रक्षा कर सकता है। क्योंकि हिरण्यकशिपु के हृदय में ही वह

व्यापक था तो हृदय की गति रोक देता। हार्ट फेल (heart fail) होते ही हिरण्यकशिपु मर जाता और प्रह्लाद बच जाता। वास्तव में साकारत्व के लिये न कोई युक्ति है न प्रमाण यह केवल वैष्णवों ने ईसाइयों की नकल की है। ईसाई लोग मद्रास में, केरल में व्यापार के लिए आते थे उन्हीं से वैष्णवों ने यह साकारवाद, तिलक और अवतारवाद लिया। अपने शास्त्रों में कहीं साकार-वाद का आभास भी नहीं है। वैष्णव मत दक्षिण से ही चला भी है। अब निराकारवाद ही सनातन है। इसका प्रबल प्रमाण लीजिये—

"अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्।" ३।२।१४

इस वेदान्त सूत्र पर शांकर भाष्य है—

"रूपाद्याकाररहितमेव ब्रह्मावधारयितव्यम्, न रूपादिमत्। कस्मात्? अस्थूल मन एव ह्रस्वमदीर्घम् बृ० ३।८।८ "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् (कठ० ३।१५) आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्विहिता ते यदन्तरा तद् ब्रह्म) छा० ८।१४।१। दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।"

(मुण्डक० २।१।२)

"तदेतत् ब्रह्मापूर्वम् न परमनन्तरम्,
अबाण्ह्यमयमात्मा प्रब्रह्म सर्वानुभूः। बृ०२।५।१९

एवमादीनि वाक्यानि निष्प्रपञ्च ब्रह्मात्मतत्त्व प्रधानानि नान्तरप्रधानानि इत्वेतत् प्रतिष्ठासि तम्। (तत्तु समन्वयात्) वे० १।१।४ इत्यत्र तस्मादेवं जातीयकेषु वाक्येषु यथाश्रुतं निराकारमेव ब्रह्मावधारयिव्तयम्।

इतराणि त्वाकारवद् ब्रह्मविषयाणि वाक्यानि न तत्प्रधानानि। उपासना-विधि प्रधानानि तानि। तेस्वतिविरोधे यथाश्रुतमानयितव्यम्।

उभयीष्वपि श्रुतिषु अनाकारमेव ब्रह्मावधार्यते। न पुनर्विपरीतमिति।

अर्थ—(अरूपवत्) रूपरहित (एव) ही (हि) निश्चय (तत्प्रधानत्वात्) श्रुतियों में उस अरूप की ही प्रधानता होने से।

भावार्थ—ब्रह्म निराकार है क्योंकि उपनिषदों में निराकार का ही प्रधान-तया निरूपण है।

ध्यान दीजिए सूत्र में "एव" शब्द है अर्थात् "ही" "भी" नहीं। केवल निराकार ही है साकार भी नहीं।

यही भाव भाष्य में जगद्गुरु श्री स्वामी शंकराचार्य जी प्रकट करते हैं—

"रूपाद्याकाररहितमेव ब्रह्मावधारयितम्व्यम् न रूपादिमत् ।

अर्थ—रूपादि आकार रहित ही ब्रह्म को जानना चाहिए ! रूपादि युक्त नहीं। अब आगे उपनिषदों की श्रुतियां देकर (जिनमें ब्रह्म को निराकार माना है) भगवान शंकर लिखते हैं—

तस्मादेवं जातीयकेषु वाक्येषु यथाश्रुतं निराकारमेव ब्रह्मावधारयितव्यम्।

अर्थ—इसलिये इस प्रकार के जैसे कि उपनिषदों में हैं वाक्यों में (यथाश्रुतम्) श्रुति जैसा वर्णन करती है (निराकारमेव ब्रह्मावधारयितव्यम्) ब्रह्म को निराकार ही जानना चाहिये ।

आगे लिखते हैं—

"इतराणि त्वाकारवद् ब्रह्मविषयाणि वाक्यानि न तत् प्रधानानि उपासनाविधि प्रधानानि तानि । तेष्वसप्तविरोधे यथाश्रुतं यावनयितव्यम् । उभयाँष्वपि श्रुतिषु अनाकारमेव ब्रह्मावधार्यते ।"

और जो आकारवत् ब्रह्म के विषय में वाक्य मिलते हैं वे प्रधानवाक्य नहीं हैं उपासना विधि प्रधान हैं। उनमें विरोध न होने पर शास्त्र के अनुसार मानना चाहिए। दोनों ही प्रकार की श्रुतियों में ब्रह्म को निराकार ही निश्चित किया गया है, कितना बलपूर्वक कहा है। श्री आचार्य महोदय ने) इस पर भी ईश्वर की साकारता का राग अलापना दुराग्रह, और नास्तिकता ही है।

उपासना की साकारता इस प्रकार होती है—

१. मिलता है सच्चासुख केवल भगवान् तुम्हारे चरणों में ।
२. दया की दृष्टि करो हम पै भगवन् ।
३. अपने कर का अवलम्बन दो हे नाथ ! शरण में आया हूं ।

यहां चरण, दृष्टि करके लाक्षणिक अर्थ है शरण, ज्ञान, कृपा, सहारा ।

श्रुति में जैसे ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् (यजु० ३१)
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य अजायत
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत आदि ।
पुराण देवीभागवत् (स्कन्ध ४ अध्याय १३ श्लोक १५) भी
साकारत्व पर आक्षेप करता है—

किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा,
मघवा किं बृहस्पतिः,
देहवान् प्रभवत्येव
विकारैः संयुक्तस्तदा ।

विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, बृहस्पति क्या है। कुछ नहीं जो देहधारी है वह विकार युक्त होता ही है।

यही सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी कहते हैं—शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन-भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। श्री स्वामी जी और जगद्गुरु शंकराचार्य जी निश्चित रूप से ईश्वर का निराकारत्व मानते हैं किन्तु पं० अखिलानन्द जी अंट-शंट इधर-उधर अर्थ करके असंगत प्रमाणों की पोटली सिर पर लिये साकारत्व की चिल्लाहट मचाते फिरते हैं। यही दशा माधवाचार्यादि अन्य पौराणिकों की है। खैर ये तो उदरम्भरि ब्राह्मण हैं, इन्हें सत्यासत्य विवेक से कोई सरोकार नहीं किन्तु हमें तो आश्चर्य पुरी के शंकराचार्य श्री १०८ निरंजनदेव तीर्थ जी महाराज पर होता है कि भगवान शंकराचार्य जी की गद्दी पर विराज कर भी यह उनके भाष्य के विरुद्ध ईश्वर को साकार बता रहे हैं। और वेद मन्त्र का असंगत अर्थ करके जनता को भ्रमाते हैं। यह मन्त्र प्रस्तुत करते हैं—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः,
तस्मिन् ह तस्थु र्भुवनानि विश्वा । (यजु० ३१।१९)

इस पर श्री उव्वटाचार्य और महीधराचर्य के भाष्य देखिये—

उव्वट—किं भूतं तं विशिष्यते । प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः अजायमानः बहुधा विजायते । तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः, तस्मिन् ह तस्थुः, भुवनानि विश्वा । स एव पुरुषः, एकाशभूतः प्रजापतिःकस्य गर्भस्य, अन्तः, अजायमानः चरति चतुर्विधेषु भूतेषु । स एव जायमानः बहुधा अनेक प्रकारं विजायते । ये धीराः योगिनः, ते तस्य योनिं परिपश्यन्ति । सर्वं त्यागे न परिहरन्ति । विश्वे, त्रैलोक्ये भुवनानि तस्मिंस्तस्थुः ।

महीधर—यः सर्वात्मा प्रजापतिः, अन्तर्हृदि स्थितः सन् गर्भे चरति, गर्भ-

मध्येचरति, यश्चाजायमानः अनुत्पद्यमानः, नित्यः कार्यकारणरूपेण विजायते । म यया प्रपंचरूपेण उत्पद्यते। धीराः ब्रह्मविदस्तस्य प्रजापतेः योनिस्थानस्वरूपम् परिपश्यन्ति अहं ब्रह्मास्मीति जानन्ति । विश्वा, विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि तस्मिन्नेव कारणात्मनि ब्रह्मणि तस्थुः—स्थितानि ।

सर्वं तदात्मरूपमेवेत्यर्थ, दोनों भाष्यों में कहीं भी अवतारवाद या साकार होने का नाम संकेत तक नहीं । "विजायते" शब्द जिसमें इन साकार वादियों ने अपना सहारा बनाया है उसका अर्थ एक ने तो किया ही नहीं, दूसरे महीधर लिखते हैं, "मायया प्रत्यक्षरूपेणोत्पद्यते" माया से प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है । अर्थात् इस सृष्टि के द्वारा प्रकट हो रहा है । यहाँ श्री स्वामी जी ने लिखा है कि सृष्टि रचना के द्वारा परमात्मा का प्रत्यक्ष हो रहा है । इस मंत्र में दो वाक्य ऐसे हैं जो साकार वादियों की कमर तोड़ कर रख देते हैं ।

तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः ।।

और "तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा"

उसके योनि स्थान वा स्वरूप को (मही) धीरवराः ब्रह्मविदः (ब्रह्म ज्ञानी) और उव्वट लिखते हैं :—योगिनः योगीजन जानते हैं ।

महीधर लिखते हैं :—

ब्रह्मास्मीति जानन्ति—मैं ब्रह्म हूं, ऐसा जानते हैं ।

अन्तिम पद "तस्मिन् विश्वा" उसमें सब लोग स्थित हैं । सब लोकों का अधिष्ठान वा आधार निराकार होगा वा साकार ? मंत्र का सीधा सादा भाव है कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है किन्तु उसकी अनुभूति (प्रत्यक्ष) केवल योगियों को होता है । वह असीम है, क्योंकि सब लोग उसी के सहारे हैं । अवतारों को तो सर्व साधारण देखते थे । अवतारों को तो यह पृथ्वी धारण करती है तब वे सब लोकों के आधार कहाँ हुये ।

इसी प्रकार आखिलानन्दादि कई पौराणिकों ने प्रसंग रहित प्रमाण लिख मारे हैं और अर्थ तो ऐसे किये हैं जिनका मूल से दूर का भी सम्बन्ध नहीं ।

एक पंडित ने अपनी पुस्तक में श्रीकृष्णावतार का हाल लिख मारा है । मंत्र है ऋग्वेद का (४।७।१।९)

"कृष्णे न राम रूशतः" मंत्र देकर कृष्ण अवतार की कथा लिख मारी है ।

इस मंत्र में कृष्णम् नपुंसक लिंग शब्द है और आग के धुंयें के लिये आया है । यही आचार्य सायण ने किया है । "कृष्ण वर्णं भवति" हे अग्ने धुंये से तुम्हारा मार्ग काला हो जाता है । अपने अंध विश्वासों मिथ्या मान्यताओं को शास्त्रीय सिद्ध करने के लिये इन पौराणिक पंडितों ने छल और झूठ का सहारा लिया है । खेद है कि इनको ऐसा झूठ लिखने में लज्जा नहीं आती । सबसे अधिक शोक तो पुरी के शंकराचार्य पर होता है कि वह भी इस दशा में सम्मिलित हो गये हैं । निष्पक्ष पौराणिक विद्वान् भी इस पोपमंडल की ऐसी तुकों पर हँसता है । ऐसा ही एक मंत्र यजुर्वेद १८।७१ है—

"मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजन्माः परस्ताः"

सृक ँ स ँ शाव पावेमिन्द्र तिग्मं विशत्रून् पाहि विभृधो नुदस्व ।

इस मंत्र में कहीं अवतार का वा साकारपन का लेश भी नहीं । उव्वट और महीधर दोनों का ही अर्थ एक सा है । हे इन्द्र कुचरः कुत्सितचारी हिंस्र पहाड़ों पर रहने वाले हिंसक सिंह के समान शत्रुओं पर वज्र प्रहार करो और शत्रुओं को संग्राम से विमुख कर दो ।

इसी प्रकार ऋग्वेद ६।४७।१८ मन्त्र हैं :—

रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्तास्त्यस्य हरयः सैतादृश ७१

इन्द्र ईश्वर प्रत्येक रूप वाले पदार्थ में २५ है । उसका यह रूप भिन्न नामों के लिए है । वह इन्द्र माया से (प्रकृति से पुरुरूप ईयते) बहुत रूपों को (पदार्थ मय रूपों) को प्राप्त है । उसके घोड़े शक्तियां सहस्रों हैं । यह मंत्र सूत्र सूर्य के घोड़े हैं, सूर्य की रश्मियाँ और जीव के घोड़े हैं शरीर की एक सहस्र नाड़ियां ।

इस मन्त्र में तो ईश्वर की सर्वत्र व्याप्ति दिखाई गयी है । अवतार कहां से आ टपका ।

इसी प्रकार के असंगत प्रमाणों से यह पुस्तक भरी पड़ी है । इन पुस्तकों में से पढ़े-लिखे और संस्कृत रहित लोग बहुत बहक जाते हैं । और मूर्खों पर

रंग भी खूब जम जाता है। "तस्य पृथ्वी शरीरम्" आदि सब ही प्रमाण ईश्वर को निराकारता को सिद्ध कर रहे हैं। भक्तों के लिए अवतार लेने वाला भगवान अब क्यों नही अवतार लेता। असुर तो आज भी हैं और अवतार केवल भारत में ही क्यों लिये। अन्य देश भी तो प्रभु के द्वारा बनाये हुए हैं। अवतारवाद और साकारवाद केवल भावुकता की कल्पनाएँ हैं। यथार्थ ज्ञान में इनका कोई महत्व नहीं।

श्री स्वामी जी ने एक प्रश्न लिख कर अवतारवाद को असामान्य ठहराया है।

प्र०—ईश्वर अवतार लेता है या नहीं ?

उ०—नहीं क्योंकि "अज एक पाद्देव:" ३५।५३

"समर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्" ४।८

ये यजुर्वेद के वचन हैं। इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता।" (स. प्र.)

पण्डित अखिलानन्द जी ने इस पर लिखा है—

"मालूम होता है कि यहाँ पर स्वामी दयानन्द की बुद्धि कहीं अन्यत्र चली गयी है, क्योंकि जो अज है वह "एक पात्" एक पैर वाला कैसे बनेगा। बिना जन्म के पैर कहाँ ? (खूब मुँह की खाई) ईश्वर के समान जीव भी अज है। फिर उसका जन्म क्या ? प्रकृति भी अजा है फिर उसका जन्म क्यों ?" यहां पण्डित अखिलानन्द की बुद्धि कहाँ डूब गयी। यदि साकार ईश्वर एक पात् एक पाँव वाला है तो सहस्र पात् सहस्र पाँव वाला यह विरोध हुआ। कवि होकर ऐसे अनर्थों पर क्यों तुल गये ? केवल स्वार्थ के लिए ऐसे स्थानों पर शब्द के अर्थ लाक्षणिक होते हैं। एक पात् एक रस रहने वाला अटल सहस्रों आंखों वाला अर्थात् अपार दृष्टि वाला सर्वज्ञ अन्यथा सहस्र शीर्षा सहस्र सिर वाला और सहस्र आँखें रखने वाला तो काना हुआ एक सहस्र सिर में दो सहस्र आँखें चाहिए ना ?

गीता कहती है :—

सर्वत: पाणिपादोऽयम्
सर्वतोऽक्षि शिरो मुख:
सर्वत: श्रुतिमल्लोके
सर्वम् आवृत्य तिष्ठति

सब ओर उसके हाथ और पाँव हैं और कान हैं सब को आवृत्त करके ठहरा हुआ है। यहाँ सर्वव्यापकत्य बताया गया है, वा साकारत्व हाय रे स्वार्थ। आर्य समाज से निकाले जाने पर अखिलानन्द जी की दशा शापग्रस्त बुद्धि वालों की सी हो गई थी।

जीव अज है फिर जन्म क्यों लेता है ? जीव जन्म नहीं लेता, अन्त:करण जन्म लेता है। बुद्धूराम जी ! अजा: (प्रकृति) जन्म नहीं लेती वह अनादि है। आगे यजुर्वेद ३१ अध्याय के दो मंत्र देते हैं :—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो: सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।१२
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो: द्यौ समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिश: श्रोत्रात् तथा लोकानकल्पयत् ।१३

यजुर्वेद के इन दो मन्त्रों में ईश्वर के मन, चक्षु श्रोत्र, मुख, नाभि, शिर, चरण इन अवयवों का वर्णन है। यदि इनको अलंकार (फर्जी) माना जावे तो नास्तिकता आ जाती है। क्योंकि वेद की कोई बात (फर्जी) झूंठ नहीं कही गई है। जहाँ ईश्वर की मूर्ति का वर्णन किया गया है वही सब अंग-प्रत्यंग लिखे हैं। जहाँ उसका अमूर्त वर्णन है वहाँ वैसी ही सामग्री एकत्र कर दी गई है। देखिये (द्वैवाव ब्राह्मणो रूपे मूर्तञ्चामूर्तञ्च तदेतन्मूर्तम् यदन्यद् वायोरन्त रिक्षाच्च)

वृहदारण्यक के इस प्रमाण से ईश्वर साकार और निराकार दोनों प्रकार का माना जाता है। पृथिवी, जल, तेज, ईश्वर के साकार रूप हैं। इन पांच प्रकार के भेदों से ईश्वर दोनों प्रकार का सिद्ध हो जाता है (उभयं वा एतत् प्रजापति: निरुक्तश्च प्रतिरुक्तश्च परिमितश्च अपरिमितश्च) शतपथ ब्राह्मण के इस प्रमाण से ईश्वर परिमित परिच्छिन्न, सावयव और अपरिमित, अपरिच्छिन्न निरवयव दोनों प्रकार का माना गया है।

(आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविध:। एकं रूपं बहुधा य: करोति) उपनिषद् के इन आत्मा ईश्वर पहिले "पुरुषविध" मनुष्य के आकार वाला था।" सत्यार्थालोचन पृ० १२१)

वाह रे कविरत्न ! कर दिया सब अलंकारों का नाश। कविता के आभूषण

हैं। वेद काव्य हैं पग-पग पर अलंकारों से सुशोभित है। वेदों में अलंकार नहीं, कितना घोर झूठ है, परन्तु लोभी को झूठ सच से क्या प्रयोजन? "मृगो न भीम कुचरो गिरिष्ठाः" (यजु० १८, ७१) यहाँ उपमा अलंकार है या नहीं?

यहां पर भी रूपक अलंकार है जो शतपथ और वृहदारण्यक के वचन उद्धृत किये गये हैं वहाँ बुद्धि विरुद्ध असंगत अर्थ कर डाले हैं। जल, वायु, अग्नि यदि ईश्वर हैं तो समाधि लगाने की जरूरत नहीं। ये ईश्वर हर वक्त मिले हुये हैं। आप कहते हैं वेद मेरे (फर्जी) झूठी बातें नहीं। फर्जी का अर्थ आपको मालूम नहीं और लिख मारा झूठी बातें। फर्जी कहते हैं कल्पित को और कल्पना से बनता है उत्प्रेक्षालंकार। अब कविरत्न तो रहे नहीं उनके चेले देखें कि वेद क्या कहता है पंडित जी के प्रस्तुत मन्त्र में ही "तथा लोकान् अकल्पयत्" और लोकों की कल्पना करी। अर्थात् इन लोकों को अपने अंग रूप में कल्पित किया। ये अंग हैं कि नहीं कल्पित अंग है। (ईश्वर वास्तव में साकार नहीं) कवि कल्पना में अंगों वाला है। दोनों अपने माननीय भाष्यकार उव्वटाचार्य और महीधर आचार्य के भाष्य—

'मन एव चन्द्रमाः नेत्रं एव सूर्यः। प्राणो जीवः स एव वायुः।" उव्वट। कल्पितवन्तः (मही०) ये सब कल्पित किये रूपक अलंकार के लिये चुने गये।

पुरुष के प्रथम मंत्र में महीधर "यः पुरुषः भूमिभ् ब्रह्माण्ड लोकरूपम् सर्वतः तिर्यग् ऊर्ध्वमधश्च स्मृत्वा व्याप्य।"

ध्यान दीजिये द्युलोकरूपम् द्योलोक रूपी कहो यह रूपक बताया जा रहा है वा नहीं? सर्वतः स्मृत्वा व्याप्य सब ओर से तिरछे, ऊपर नीचे (तिर्यक्, ऊर्ध्वम्, अधश्च) आचार्य महीधर कहते हैं सब ओर से व्यापक होकर क्योंकि कविरत्न जी सर्व व्यापी निराकार होगा वा साकार? ईश्वर को आप सावयव बता रहे हैं। परिच्छिन्न लिख रहे हैं। सावयव नित्य होता है वा अनित्य? परिच्छिन्न सर्वज्ञ कैसे होगा? आपकी बुद्धि पर स्वार्थ की धूल बुरी तरह पड़ी हुई है

अब अपने मान्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत का रूपक भी दीजिये—

एतद् वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः,
नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः

प्रजापतिः प्रजननम् अपाने मृत्युरीशितुः,
तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ यमः,
लज्जोहारोऽधरो लोभोदन्ता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः।
रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुष मूर्धजाः।

श्री मद्भागवत स्कन्ध १२ अध्याय ११ श्लोक ६, ७, ८

कहो यहां रूपक दीख रहा है वा नहीं? प्रजापति यहाँ ईश्वर नहीं है किन्तु ईश्वर का प्रजनन कहा गया तो यह क्या रहा ईश्वर वा उसकी रचना?

शतपथ ब्राह्मण और वृहदारण्यक में भी प्रजापति सृष्टि का आदि स्वरूप होता है और संवत्सर भी प्रजापति है "सवत्सरो वै प्रजापतिः" (श० प० १२।२।४) अतः प्रजापति दो प्रकार का हुआ सृष्टि रचना के समय प्रकृति का आदिम बिन्दु (ब्रह्मा) और रचयिता ईश्वर यज्ञ को भी प्रजापति कहा गया है।

आचार्य शंकर के ये बचन पुनः ध्यान देने योग्य हैं। "उभयी स्वपि श्रुतिषु अनाकारमेव ब्रह्मावधार्यते" दोनों प्रकार अर्थात् निराकार प्रतिपादक और साकाराभास वाली श्रुतियों में आकार रहित ही ब्रह्म निश्चित किया गया है। कहो! आचार्य शंकर की हंसी उड़ाओगे क्या?

प्र०—जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस, रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके?

उ०—प्रथम जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस रावणादि एक कीड़े के समान भी नहीं। वह सर्व व्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला, इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव युक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिये जन्म मरण युक्त करने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है और जो कहे कि भक्तजनों के उद्धार करने के लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं, क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं, उनके उद्धार करने का सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर को पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् को बनाने, धारण और प्रलय रूप कर्मों से कंस, रावणादि का वध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना

बड़े कर्म हैं। क्या जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो "न भूतो न भविष्यति" ईश्वर सदृश न कोई है न होगा, और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया और मुट्ठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता, क्योंकि आकाश बाहर आता है न भीतर जाता है वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहाँ हो सकता है जहाँ न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा? इसलिये परमेश्वर का आना जाना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिये "ईसा" आदि भी ईश्वर के अवतार नहीं ऐसा समझ लेना। क्योंकि राग-द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शान्ति, दुःख, सुख, जन्म-मरण आदि गुण युक्त होने से मनुष्य थे। (स० प्र० ७ समुल्लास)

यहां श्री स्वामी जी ने सहेतुक युक्तियुक्त ढंग से बता दिया है, कि ईश्वर अवतार नहीं लेता। अब जरा जैनों की भी सुनिये। सत्यार्थ प्रकाश के खंडन में जैनों ने लिखा है—"सत्यार्थ दर्पण" इसमें लेखक लिखता है—

(१) स्वामी जी ने ईश्वर अकेला एक ही मानकर अन्य सभी जीवों से यहां तक की मुक्त जीवों से भी सर्वज्ञता तो छीननी चाही, किन्तु यह खुलासा नहीं बतलाया कि ईश्वर के सिवाय अन्य जीव इतनी सीमा तक ही जान सकते हैं इससे आगे नहीं। हम देखते हैं कि छोटे से मस्तक और चार, पांच फीट ऊँचे शरीर वाले मनुष्य आकाश-पाताल की सूक्ष्म-सूक्ष्म बातें जान लेते हैं। घर में बैठा हुआ वैज्ञानिक विद्वान (साइंटिस्ट) दुनिया भर की छानबीन कर लेता है फिर स्वामी जी किस आधार से कहते हैं कि एक देशी (असर्वव्यापी) का ज्ञान सर्वव्यापी नहीं हो सकता है। क्या बहुव्यापक कार्य करने वाली शक्तियां अल्प स्थान में नहीं रह सकतीं? जब स्वल्पदेशी मनुष्य बहुव्यापक स्थान का जानकार हो जाता है तब कौन-सा कारण है कि जो एकदेशी जीव को सर्वज्ञ होने में रुकावट डाले!

१. ईश्वर सर्वव्यापक है। यह बात प्रमाण बाधित है क्योंकि ईश्वर यदि

सर्वव्यापक हो, तो उसका प्रत्येक जीव को मानसिक प्रत्यक्ष अवश्य हो जो ईश्वर अपने ईश्वरीय गुणों सहित हृदय में निवास भी करे, और फिर कभी मालूम भी न हो पाये, यह असम्भव बात है।

२. अब यहां पर विचारना यह है कि जीव का स्वभाव, जबकि पदार्थों का स्वभाव ज्ञेय यानी ज्ञान द्वारा जाना जाने योग्य है तब जीव को सब पदार्थ एक साथ साफ क्यों नहीं जान पड़ते हैं? इस बात का विचार करने से यह पता चलता है कि ज्ञान के ऊपर कोई पर्दा पड़ा हुआ है। जो कि ज्ञान को सब पदार्थों के जानने में बाधा डालता है जैसे कि मनुष्य की दृष्टि निर्मल भी हो किन्तु रात्रि का गाढ़ा अन्धेरा हो तो नेत्र उस समय अपने देखने की शक्ति को पूरे तौर से काम में नहीं ले सकते हैं।

उ०—सर्वज्ञता जीवों से स्वामी जी ने छीननी नहीं चाही अपितु सदा से छिनी है कोई भी सीमित जीव असीम ज्ञानी नहीं हो सकता है एक प्रकाशमान हन्डे का प्रकाश दूर तक जा सकता है किन्तु अपनी सीमा से अधिक नहीं। सूर्य का प्रकाश भी सीमित है।

तीर्थङ्करों वा मुक्त जीवों के सर्वज्ञ होने में आपके पास प्रमाण क्या है? हमारे पास तो प्रत्यक्ष दलील है कि कोई भी समीप पदार्थ असीम गुणों वाला नहीं हो सकता। आपके तीर्थङ्करों ने कोई शास्त्र नहीं रचा जिससे उनके असीम ज्ञान का पता चले उनके गणधरों का भी कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। केवल जैनाचार्य के ग्रन्थ आपके पास हैं जिनमें मतभेद भी पर्याप्त है इस दशा में युक्ति प्रमाणहीन आपका कथन निष्प्राण है। सर्वव्यापी ईश्वर का प्रत्यक्ष सब जीवों को क्यों नहीं होता। इसका उत्तर आपके लेख ने ही दे दिया—

"जीव के ऊपर कोई पर्दा पड़ा हुआ है" (दूसरे नम्बर का लेख)।

यही वेद कहता है कि अपने अंतर्यामी को इसलिये नहीं जान पाते कि "नीहारेणावृता जल्प्या चासुतृपः उक्थशासश्चरन्ति" मोह के कुहरे से घिरे हो यही पर्दा है। कुतर्क से भरे हो। केवल कामोपभोग में तृप्ति मानते हो। केवल विद्याभिमानी हो। यह है पर्दा जैनी जी!

अच्छा यह तो बताओ कि एक उत्सर्पण काल में २४ तीर्थङ्कर ही क्यों होते हैं? ६३ ही शलाका पुरुष क्यों होते हैं कौन हैं इसमें प्रतिबन्धक। जो

प्रतिबन्ध यहाँ है वही है जीव के सर्वज्ञ होने में। जैनी जी ! कोई नियन्ता तो है नहीं। कन्ट्रोलर (नियन्त्रक) कोई नहीं, पर काम नियन्त्रण में चल रहा है २५ वा २३ तीर्थङ्कर नहीं हो सकते। ६० वा ६५ शलाका पुरुष नहीं हो सकते। क्यों ? अवश्य है कोई नियामक वा कन्ट्रोलर।

आगे स्वामी जी लिखते हैं :—

प्र०—ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं ?

उ—नहीं, "क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय ही नष्ट हो जाये। और सब मनुष्य महापापी हो जायें" (स० प्र० ७) पाप क्षमा की बात चली, ईसाई मत से। क्योंकि उन्हें मज़हब बढ़ाना था। यीसू ने घोषणा की कि सब पापी मेरे पास आयें मैं सबके पाप क्षमा कर दूंगा। बस चेलों के समूह बनाये "हर्रा लगे न फिटकरी रंग चोखा आये" क्या कहना है न तप न ज्ञान न सेवा। केवल यीसू के नाम का वप्तिस्मा लेना ही काफी है नष्ट हुए सब पाप।

ईसाइयों के इस मन्तव्य पर नहले पर दहला मारा वैष्णवों नें।

"यावती नाम्नः शक्तिः पापनिर्दहने हरेः
तावत् कर्तुम् न शक्नोति पातकं पातकी जनः,

पापपुंज जलाने में जितनी शक्ति हरि नाम बोलने में है उतने पाप जीवन-भर में मनुष्य कर ही नहीं सकता। बोलो "हरे हरे।"

ईसाईयों के मुंह बन्द करने को वैष्णवों के ये नुस्खे बहुत बढ़िया हैं। एक बार जिला बदायूं के ककोड़े के गंगा मेले पर बाजार में ईसाई प्रचारकों से एक बड़े जोशीले आर्यसमाजी महाशय रूपकिशोर जी से बहस छिड़ गयी। ईसाई पादरी ने कहा कि आपके हिन्दू धर्म में मुक्ति पाने के लिए योगसाधनों की आवश्यकता है। बड़े-बड़े यज्ञों की जरूरत है। हमारे यहाँ मुक्ति का साधन वह है जो सब कर सकते हैं केवल मसीह के नाम पर वप्तिस्मा ले लो। बेड़ा पार है। योग, यज्ञ, तपस्या, सब लोग कैसे कर सकते हैं वैदिक धर्म में मुक्ति असंभव ही है इस मुंशी रूपकिशोर कुछ सोचने लगे कि उधर से मैं आ निकला मैंने कहा कि हमारे यहाँ मुक्ति पाना बहुत सरल काम है और मैंने उझनी के बाल्मीकियों (मेहतरों) को पुकारा जो सरकारी काम पर आये थे, पास ही ठहरे थे, वे ८, १० जने आ गये। मैंने उनसे कहा जरा एक लाइन में

खड़े हो जाओ, वे खड़े हो गये तो मैंने पूछा कि गंगा जी दीख रही हैं। वे बोले खूब दीख रही हैं। मैंने कहा कि जाओ तुम्हारी सबकी मुक्ति हो जायेगी। अब पादरी को अपने मोहल्ले में न आने देना। गंगा जी के दर्शन से सबकी मुक्ति हो जाती है। जैसाकि—"गंगे तवदर्शनान्मुक्तिर्न जाने स्नानजं फलम्।

गंगा जी तुम्हारे दर्शन से ही मुक्ति मिल जाती है स्नान का फल मैं नहीं जानता।

पादरी चुप रह गया और कहने लगा पं० जी आप तो ऐसा नहीं मानते और न कहीं ऐसा लिखा है मैंने कहा—मैं तो नहीं मानता किन्तु करोड़ों हिन्दू तो मानते हैं जैसे ये अंधविश्वासी हैं वैसे ही ईसाई।

भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर विलायत से पादरियों का एक शिष्ट मण्डल आया, महात्मा गांधी से मिलना था इस मण्डल का नेतृत्व करती थीं एक लेडी उस देवी ने कहा— मि० गांधी, अब आप ईसाई मत स्वीकार कर लें।

महात्मा जी—क्यों ?

लेडी बोली—कि इससे आप सब पापों से छुटकारा पाकर मुक्त हो जायेंगे।

महात्मा—मैं अपने अपराधों का दंड भोगने को तैयार हूँ। क्षमा नहीं मांग सकता।

लेडी—तो फिर व्यर्थ है आपसे बात करना।

पाप क्षमा करना पूरी आत्महीनता है गिरावट है वेदों में, आर्ष शास्त्रों में जो प्रायश्चित्त बताये हैं वे मन की शुद्धि के लिए हैं जिससे कि आगे को पाप और अपराध न होवे। कृतापराधों का तो दंड भोगना अवश्यम्भावी है। अब तो अनेक इस्लामी मौलवी मानने लगे हैं कि जो पाप धर्म के क्रियाकांड में हो जाते हैं अर्थात् भूलें। उनको खुदा से माफ कराया जा सकता है किन्तु जो अपराध औरों से सम्बन्ध रखते हैं चोरी, डकैती हत्या और व्यभिचार इनकी माफी नहीं हो सकती केवल ईसाई और कथित सनातन धर्मी वैष्णव यह मानते हैं कि तीर्थों द्वारा ब्राह्मणों के भोज द्वारा, मंदिरों द्वारा पाप अपराध के दंडों से छुटकारा मिल सकता है, किन्तु यह मन्तव्य पाप करने में उत्साह बढ़ाता है, और इन

बातों का समर्थन ईसाई और वैष्णव केवल अपने स्वार्थों के लिए करते हैं। जो लोग गीता का श्लोक प्रस्तुत करते हैं—

अपिचेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्,
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग् व्यवस्थितो हि सः।

अर्थात् बड़ा से बड़ा भी दुराचारी जो मुझे भजता है वह साधु है किन्तु श्लोक में शब्द है "अनन्यभाक्" और कहीं भाग न लेने वाला, अर्थात् सब कामनाएं त्यागकर अर्थात् पहले दुराचारी भी रहा हो किन्तु अब संभल जाये तो उसे साधु, सभ्य समझना चाहिए परन्तु उसके पिछले कर्मों के फल तो मिलेंगे ही। वैदिक धर्मी, पौराणिक बौद्ध, जैन, सिक्ख सब ही आर्य सम्प्रदायों के कर्म फल पर अटल विश्वास है वैष्णवों ने पौराणिकों ने ऐसी बातें ईसाईयों के मुंह बन्द करने को ही लिखी हैं। ईसाई लोग प्रथम आये ही थे दक्षिण भारत से। जैन धर्म का तो कर्मफल मूल मन्तव्य ही है।

प्र०—ईश्वर सर्व शक्तिमान् है या नहीं?

उ०—है। परन्तु जैसे तुम सर्वशक्तिमान् का अर्थ जानते हो वैसा नहीं। किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता। अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।

प्र०—हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर चाहे सो करे क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है।

उ०—वह क्या चाहता है? जो तुम कहो सब कुछ चाहता है और कर सकता है तो हम तुम से पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयं अविद्वान्, चोरी व्यभिचारादि पाप कर्म कर और दुःखी भी हो सकता है? जैसे ये काम ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध हैं तो जो तुम्हारा कहना है कि वह सब कुछ कर सकता है यह कभी नही घट सकता, इसलिये सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हमने कहा वही ठीक है।

पौराणिक, मुसलमान, ईसाई ये सब ऐसा ही मानते हैं कि ईश्वर पर कोई नियम लागू नहीं है; किन्तु इन्हें यह समझना चाहिये कि पवित्र है, नित्य है,

ज्ञानी है वह अपने स्वभाव के विरुद्ध काम नहीं कर सकता, उसके सब काम ज्ञान पूर्ण और पवित्र होते हैं वह अपने सनातन नियमों को कभी भंग नहीं करता।

आगे दो प्रश्नों के उत्तर देकर स्वामी जी ने बताया है कि ईश्वर सबका कल्याण चाहता है और ईश्वर अनादि है। और आगे, शरीर, इन्द्रियाँ और प्राणों पर अधिकारी जीव को कर्म करने को स्वतन्त्र बताते हुये श्री स्वामी जी लिखते हैं कि "जो (जीव) स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप-पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता" और आगे लिखा है कि जीव अनादि सत्ता है ईश्वर ने जीव को नहीं बनाया। अब आगे स्तुति प्रार्थना के लाभ बताते हुये स्वामी जी लिखते हैं :—

"स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहायता का मिलना उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।"

आगे स्वामी जी ने स्तुति प्रार्थना, उपासना के उदाहरण स्वरूप वेद मन्त्र दिये हैं।

स्वामी जी अतिरिक्त अन्य सब मत वाले जो ईश्वर को मानते हैं उनकी यह मान्यता है कि स्तुति प्रार्थना से प्रसन्न होकर ईश्वर उनको उनके दुष्कर्मों का दंड न देगा और जो हम चाहें सो बिना पुरुषार्थ के ले लेंगे।

इस विचार से ईश्वर खुशामद चाहने वाला सिद्ध होता है। बाईबिल में तो ऐसे अनेक वाक्य हैं कि 'देवतों की पूजा करने से खुदा कुपित हो उठा।' ऐसी-ऐसी भावनाओं ने मनुष्य के चरित्र को बिगाड़ा और मन को दूषित कर दिया। स्वामी जी कहते हैं कि प्रार्थना से उत्साह बढ़ता और ईश्वर की सहायता मिलती है। 'अर्थ' धातु का अर्थ मांगना भी है और अभिकांक्षा भी तो अर्थ हुआ। इच्छा शक्ति बढ़ती है तो काम में उत्साह होता है, धैर्य बंधता है। ईश्वर को प्रभावित नहीं किया जाता किन्तु अपने को योग्य बनाया जाता है जिससे कि संसार में व्याप्त हुये उसके तेज और शक्ति की किरणें हम पर पड़ें और हम सफलता प्राप्त कर सकें। मतवालों का यह भी अन्ध विश्वास है कि सब काम हमसे ईश्वर ही कराता है। हम तो उसके हाथ में एक औजार मात्र

है वह जहां चलावें चलेंगे। ऐसे विश्वासों ने मनुष्य को कायर और अनाचारी बना डाला। स्वामी जी दृढ़ता पूर्वक घोषणा करते हैं कि जीव अपने सीमित साधनों द्वारा कर्म करने में स्वतन्त्र है। सम्पूर्ण आर्य सम्प्रदायों में प्रारब्ध और भोगवाद को मानते हुये भी पुरुषार्थ को प्रधानता दी गई है।

प्रारब्ध को बीज बताया है और पुरुषार्थ को उसकी सिंचाई आदि जो पौधों के लिये आवश्यक है। ईश्वर की उपासना के लिये जो आचरण आवश्यक है उस पर श्री स्वामी जी ने कैसा सुन्दर लिखा है—"जो उपासना का आरम्भ करना चाहे उसके लिये यही प्रारम्भ है कि किसी से वैर न रखे, सर्वदा सबसे प्रीति करे, सच बोले मिथ्या कभी न बोले। चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो और निरभिमानी हो।" "रागद्वेष छोड़ भीतर से और जलादि से पवित्र रहे। धर्म से पुरुषार्थ करने से लाभ में प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता करे। प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे। सदा दुःख सुखों का सहन (करते हुये भी) धर्म का ही अनुष्ठान करे अर्धम का नहीं। सर्वदा सत्य शास्त्रों को पढ़े, पढ़ावे। सत् पुरुषों का संग करे और 'ओ३म्' इस एक परमात्मा के नाम का अर्थ विचारकर नित्यप्रति जप किया करे, अपनी आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर दे।"

योग दर्शन के यम नियम सूत्रों को लेकर श्री स्वामी जी ने यह लिखा है। यह शिक्षा कितनी महत्त्वपूर्ण है। संसार भर का कोई शिष्ट पुरुष चाहे वह किसी मत का भी मानने वाला हो इसका विरोध नहीं कर सकता। ईश्वर की भक्ति का आधार ही सदाचार है। कठोपनिषद् ने यह कड़ी शर्त लगा दी है ,'नाऽविरतो दुश्चरितात्" जिसने दुश्चरित्र नहीं छोड़े वह ईश्वर को नहीं पा सकता। दुश्चरित्र बनाना और सुचरित्र बनाना हमारे हाथ में है। यही बड़ा अन्तर वैदिक धर्म और अन्य मतों में है। वहाँ चरित्र गौण। और ईश्वर भजन मुख्य है। स्वामी दयानन्द के मन्तव्य में चरित्र को प्रमुखता प्राप्त है। भक्तिवादियों ने चरित्र को गौण बनाकर ईश्वर को वदनाम कर डाला है एक उर्दू कवि कहता है—

'खुदा के बन्दों को देखकर ही खुदा से मुनकिर हुई है दुनिया।

कि जिस खुदा के हैं ऐसे बन्दे, वह कोई अच्छा खुदा नहीं।

सुगम निर्गुण इन विचारों ने बड़ा भ्रम फैलाया है साकारवादी सगुण जैसे वैष्णव और निराकार वादी सगुण ब्रह्म को मानने वाले जैसे कबीर पंथी, नानक पंथी आदि निर्गुण ब्रह्म को मानने वाले कहाटे हैं। श्री स्वामी जी ने इसका शब्दार्थ करके भेद हटा दिया। ईश्वर में सृष्टि रचना, पालन और न्याय करना आदि गुण भी हैं और साकारता रूप रंग आदि गुण नहीं हैं ब्रह्म को निर्गुण मानने वाले वेदान्ती भी, कबीर पंथी भी उसमें चेतनता आनन्द ये गुण तो मानते ही हैं। साकारवादी भी उसे सर्वदा तो निराकार ही मानते हैं। कभी-कभी साकार होता है सदा नहीं—यह है मान्यता सगुण वालों की। अब आगे श्री स्वामी जी ने दो और दार्शनिक विचार रखे हैं—

अनीश्वरवाद और अद्वैतवाद। इन पर भी विचार करना है। स्वामी जी ईश्वरवादी हैं और ब्रह्म, जीव, प्रकृति इन तीन सत्ताओं को अनादि मानते हैं। जैसाकि वेद बताता है—

'बालादेकमणीयस्कम् उतो किं' नैव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा ममप्रिया।
(अथर्व० का० १०।८।२५)

एक तत्त्व बाल से भी बहुत सूक्ष्मतर अर्थात् परमाणु (प्रकृति) नैयायिकों ने परमाणु के विषय में इस मन्त्र के ही शब्दों में परमाणु की बात कही है "बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। तस्य त्रिशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते प्रकृति का सूक्ष्मतर रूप है परमाणु। दूसरा तत्त्व जो—न दृश्यते—दिखाई नहीं देता —जीव है। उससे आगे सर्वव्यापी देवता ब्रह्म मुझे प्रिय लगते हैं। ये तीन पदार्थ वेद बता रहा है। जीव ब्रह्म और हैं यजुर्वेद के मन्त्र में देखिए :—

न तं विदाथ य इमा जजान यः युष्माकंमन्यतदन्तरं बभूव। नीहारेणावृता जल्प्या च सुतृप उक्थासश्चरन्ति।

इस पर महीधराचार्य का भाष्य ही पढ़िये जो सब पौराणिकों के मान्य हैं :—

भाष्यः—इदानीमुपदिशति। यो विश्वकर्मा इमा इमानि भूत जातानि

जजान उत्पादितवान् । तं विश्वकर्माणं हे जीवाः, यूयं न विदाथ, न जानीथ (लेटाऽडाटौः) अ० ३-४-६४। इत्यागमः। ननु देवदत्तोऽहं यज्ञदत्तोऽहमिति परमात्मानं जानीम इतिचेत्, न। नह्यहं प्रत्ययगम्यं जैवं रूपं परमेश्वर तत्त्वम्, किन्तु युष्माकमहं प्रत्ययगम्यानां जीवानामन्तरमभ्यन्तरवास्तवस्वरूपमन्यत्। अहं प्रत्ययादतिरिक्तम्। सर्वविदानं वेद्यम् ईश्वरतत्त्वं बभूव, भवति, विद्यते। जीवरूपवत् कुतोनाऽविदम् इतिचेत् भवन्त ईदृशाश्चरन्ति प्रवर्त्तन्ते अतो न जानीथ। कीदृशाः ?

भावार्थ—हे जीवो ! वह अत्यन्त' तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा तत्त्व तुम्हारे भीतर है उसे क्यों नहीं जानते ? उत्तर है—नीहार=कुहरे से ढके हैं। अज्ञान का पर्दा है, कुतर्क युक्त हैं। अपने प्राणों के पालन में लगे हैं। कामोपभोग में लिप्त हैं अतः नहीं जानते। श्री उव्बट का भाष्य भी इसी प्रकार है और भाष्य क्या देखना है। मन्त्र में स्पष्ट है अन्यत् (और) अन्तरम् (भीतर)।

भाष्यकार ब्रह्म को 'युष्माकमन्यता' शब्द का अर्थ करके जीव से अन्य और भीतर अर्थात् व्यापक बता रहा है। जीव अणु है, परिच्छिन्न है और ब्रह्म व्यापक है और अपरिच्छिन्न है। इस प्रकार यह अद्वैतवाद वेद से तो मेल खाता नहीं। यह कल्पना श्री गौडपादाचार्य ने बौद्धों के विज्ञानवाद को लेकर की है। श्री पं० रामगोपाल जी वैद्य करौल बाग, दिल्ली ने अपने पुस्तक अद्वैतवाद में बौद्ध दर्शन के और शाङ्कर मत के विचारों का और गौड़पाद की हुई बुद्धिदेव की स्तुति के पद देकर सिद्ध किया है कि शाङ्करमत (अद्वैतवाद) बौद्ध मत की नकल है। और राहुल सांकृत्यायन ने भी अपने रचे 'दर्शन-दिग्दर्शन' ग्रंथ में लिखा है :—

शंकर के दर्शन को सरसरी नजर से देखने पर मालूम होगा कि यह ब्रह्म-वाद को मानता है, और उपनिषद् के अध्यात्मवाद को सबसे अधिक प्राधान्य देता है किन्तु जब उसके भीतर घुसते हैं तो वह नागार्जुन के शून्यवाद के नाम से नामान्तर मात्र है। गौड़पाद सीधे तौर से बुद्ध और नागार्जुन के अनुयायी थे और शंकर के अनुयायियों में सबसे बड़े अनुयायी श्री हर्ष का 'खण्ड व खण्ड खाद्य' केवल सीताराम के मङ्गलाचरण तथा दो चार मामूली बातों के ही कारण शुद्ध आध्यात्मिक दर्शन 'शून्यवाद' का ग्रन्थ कहे जाने से बचाया जा

सकता है। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं जो परांकुशदास (वैष्णवाचार्य) ने कहा :—

वेदाऽनृतो बुद्धकृतागमोऽनृतः
प्रामाण्यमेतस्य च तस्य चानृतम्।
बौद्धानृतो बुद्धिफले तथाऽनृते,
यूयं च बौद्धाश्च समान संसद :॥

हे शङ्कर मत वालो। जब वेद, बुद्धागम सब असत्य हैं तो तुम और शून्य मतवादी बौद्ध एक सभा में बैठे हो।

(दर्शन दिग्दर्शन पृ० ८२१)

श्री राहुल जी ने श्री करपात्री जी के ग्रन्थ रामराज्य और मार्क्सवाद के खण्डन में एक लघु-पुस्तिका लिखी है। उसमें अद्वैतवाद और बौद्धवाद का पूरा मिलान किया है।

वस्तुतः कितनी ही कल्पनायें करो, दो तत्त्व तो प्रत्यक्ष ही दीख रहे हैं। जीव (चेतन) और अजीव (जड़) और इस सृष्टि के विषय में गूढ़ विचार करने तथा अन्तर्मुखी होने से यह भी निश्चय हो जाता है कि कोई सूक्ष्म चेतन सत्ता सृष्टि के कण-कण में समाई हुई है। जो सृष्टि की रचना और तथा समय के पाबंद काम कराती है। वही ब्रह्म है। उसकी सत्ता के अनुभवी साक्षी शतशः हिन्दूसन्त, आर्य ऋषि, मुसलमान, ईसाई सन्त, फकीर तथा कबीर पंथी, राधा स्वामी मार्गी आदि हैं और योग का डंका बज रहा है। स्वयं अनुभव करके देख लो। जैन बौद्ध मानते हैं कि जीवात्मा में ये उत्तम शक्तियाँ पहले से ही थीं जो दबी हुई थीं। वैदिक धर्मी कहते हैं ये शक्तियाँ ईश्वर दत्त हैं। निजी थीं तो दबीं कैसे ?

अब श्री स्वामी जी वेद का वर्णन करते हैं—

सत्यार्थ प्रकाश में बार-बार वेद मानने पर बल दिया गया है। स्वामी जी का वेदों पर अटल विश्वास था इसीलिये आर्य देवियाँ मथुरा सम्मेलन में गा रही थीं :—

"वेदां वाले ऋषियाँ, त्वाडे आवनदी लोड।"

स्वामी जी को वेदों वाला ऋषि कहना भी ठीक। उनका सारा जोर वेद पठन पाठ पर है, वे वेद को ईश्वरादेश मानते हैं।

जैसा कि कुरान पर मुसलमानों का दृढ़ विश्वास है वैसा ही श्री स्वामी जी का वेदों पर क्यों ?

गीता में श्री कृष्ण जी अर्जुन से अन्तिम सिद्धान्त रूप से कहते हैं—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ दृष्ट्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि । (गी० १६।१४)

हे अर्जुन ! इसलिये अर्थात् विवाद समाप्त है । अब तुम्हारे लिये केवल शास्त्र ही प्रमाण है शास्त्र के बताये विधान को देखकर कर्म करो । शास्त्र क्या हैं ? लाखों वर्ष अनुभूत प्रयोग करोड़ों सृष्टियों के पालन किये नियम । स्व बुद्धि प्रयोगों में मतभेद होते हैं । कोई-कोई प्रयोग अनर्थ कर डालते हैं । रोगी मर जाता है । किन्तु आयुर्वेद के वे अनुभूत प्रयोग, सितोपलादि, हिंग्वष्टक, मकरध्वज, मालती वसन्त अकाट्य प्रयोग हैं । आज भी चालू हैं । तुलसी पत्र आज भी कैंसर पर अमृत हैं । ठीक इसी प्रकार—

मन्त्रायुर्वेदवत् तस्य प्रामाण्यम् (न्याय)

मन्त्र (शब्द योग) और आयुर्वेद के प्रयोगों के समान उसका (वेद का) प्रामाण्य है । वेद अनेक सृष्टियों में पालित प्रयोग हैं ।

सम्पूर्ण मनुष्यों में वेद के ऊपर श्रद्धा से भावानात्मक एकता (Evsotional Integration) सब संसार के मनुष्यों में हो सकती है क्योंकि वेद उस समय का है जब न कोई देश बना था, न कोई जाति बनी थी सब मनुष्य एक ।

कुरान और इंजील

कुरान अरबों का धर्म पुस्तक है । बाइबिल फिलस्तीनियों का वेद सब भूगोल का ।

मुसलमानों की यह मान्यता है कि हजरत आदम को खुदा ने दस सहीफे इलहाम के दिये थे, जो सुरयनी भाषा में थे । अब देखो ऋग्वेद के दस कांड हैं और सुरयानी (सुखागी) में हैं । कुरान बाइबिल दोनों में ही लिखा है कि हजरत आदम को ईश्वर ने सब वस्तुओं के नाम सिखा दिये थे । देखो सूरते बकर आयत ३१ ।

"व अल्लम आदमल असमा अकुल्लाहा," और आदम को सम्पूर्ण नाम सिखा दिये । बाइबिल में देखो उत्पत्ति अध्याय १ आयत १६।२० वेद ने भी पढ़ी कहा—"वाचो अग्रे यत् प्रैरत नामधेयं दधाना" (ऋ० १०।७१।१)

ईश्वर के नाम रखने वाली वाणी मनुष्य को दी ।

प्र०—यह बातें उस अंधकारमय समय की है जब विकासवाद और भाषा विज्ञान का जन्म हुआ था ।

उ०—विकासवाद और भाषा विज्ञान ये सब मनुष्य की अधूरी और संदिग्ध कल्पनायें हैं । मनोरंजन के लिये ये अच्छी हैं किन्तु निश्चित प्रमाण में इसका कोई स्थान नहीं । इस विषय में हम इसलिये नहीं लिखना चाहते कि पुस्तकों का आकार बढ़ जायेगा, विकासवाद और भाषा विज्ञान में अधूरापन दिखाने वाली अनेक पुस्तकें छप चुकी हैं जिन्हें अधिक जानने की रुचि हो वे श्री पं० रघुनन्दन शर्मा की लिखी पुस्तक "वैदिक सम्पत्ति" का दूसरा खंड मनोयोग पूर्वक पढ़ें किंतु बिना किसी मताग्रह के विचारें । अक्षरमयी वाणी प्रकृति के किसी भी वृक्षादि पशु-पक्षी आदि में नहीं है । अतः मानवी वाणी किसी का अनुकरण नहीं । प्रभु प्रेरित है । शनैः-शनैः विकास हुआ और असीवा से विकसित होते-होते वन-मानुष बना फिर मनुष्य बनाया । किन्तु

अब यह विकास क्यों रुक गया ? अब कोई वनमानुष मानव नहीं बनता, पालतू बन-मानुष भी मनुष्य की वाणी नहीं सीख पाया। ग्रीनलैंड के स्कैमो और अफ्रीका की जंगली जातियों की वाणी में आज तक कोई विकास नहीं हुआ। ये सब कल्पनायें मनुष्य की चिन्तन शक्ति का खेल मात्र हैं। वाणी भगवान् से मिली और पूर्ण रूप में मिली आज तक कोई भी भाषा इतनी पूर्ण नहीं कि जितनी वैदिक भाषा पूर्ण है। वेद छन्दोमय हैं और गद्यमय तथा गीतिमय भी। ईश्वर सबके आत्माओं में व्यापक है अतः जो पवित्र आत्मा ऋषि थे, उनके आत्माओं में परावाणी रूप वेदमंत्र प्रकाशित किये, उनके द्वारा ब्रह्म ने ग्रहण किये।

प्र०—शतपथ ब्राह्मण कहता है कि "अग्ने ऋग्वेद" "वायो र्यजुर्वेद" "सूर्यात् सामवेद" (का०११अ० ५।८।३) अर्थात् अग्नि से ऋग्वेद वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद प्रकट हुआ और श्वेताश्वतर उपनिषद् ६।१८ में है कि यो वै ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।" अर्थात् जो ईश्वर प्रथम ब्रह्म को बनाता है और उसे वेद देता है।

उ०—दोनों को मिला लीजिये, ब्रह्म को वेद मिले, किन्तु अग्नि, वायु रवि के द्वारा। पौराणिक लोग यह मानते हैं कि इन्हीं अग्नि, सूर्य और वायु द्वारा वेद मिले जो ये प्रत्यक्ष हैं, किन्तु विचारशील जन जड़ों में ज्ञान नहीं मान सकते अतः वे कहते हैं कि इस नाम के चेतन ऋषि थे आदि सृष्टि में ब्रह्म को उनसे ही वेद प्राप्त हुये, मौखिक रूप में; किन्तु हमारा कथन है कि इस भूत काल के विचार में बुद्धि को क्यों थकाया जाये। वेद विद्यमान हैं किसी के भी द्वारा प्रकट हुये हों, हैं हमारी संस्कृति अमूल्य निधि। सार्वभौम मानव ज्ञान का, सर्वमत सम्प्रदायों का आदिमस्रोत हैं वेद। श्री स्वामी जी पूर्व आर्यजनों के समान जैसाकि ऋषियों का सनातन सिद्धान्त है वेद को अपौरुषेय अर्थात् ईश्वर प्रेरित ज्ञान मानते हैं। इस पर एक प्रश्न उठाकर उत्तर देते हैं:

प्र०—वेद ईश्वरकृत हैं अन्य कृत नहीं इसमें क्या प्रमाण है ?

उ०—जैसा ईश्वर पवित्र सर्व विद्यावित् शुद्ध गुण कर्म स्वभाव, न्यायकारी दयालु आदि गुण वाला वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल कथन हो" वेदों के पढ़ने पर जाना जाता है कि स्वामी जी का विचार अक्षरशः सत्य है हिंसा, द्वेष, अन्याय की शिक्षा वेद में नहीं। जीव मात्र को मित्र की दृष्टि से देखना वेद सिखाता है। किसी का धन न लो। किसी से द्वेष न करो यह है वेद की सीख।

१. मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे (यजुः अ० ३६ म० १८)

२. मागृधः कस्य स्विद् धनम् (यजु० अ० ४०।१)

३. अविद्वेषं कृणोमि वः अथर्व० का ३।३०।मं० १)

दुराचारी को वेद मुक्ति का अधिकारी नहीं समझता :

'ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतं (ऋग्) दुराचारी ऋत (मुक्ति) के मार्ग को पार नहीं कर सकते। अन्य मतों पर विश्वासों पर जोर डाला गया है। आचरणों पर नहीं। किन्तु वैदिक धर्म और तदनुप्राणित भी आर्य सम्प्रदायों (जैन बौद्ध आदि) में चरित्र बल दिया गया है, वस्तुतः जनता को तो चरित्र से ही काम पड़ता है। जीवन के सभी व्यवहार चरित्र पर ही सफल और विफल होते हैं। ईसू क्रूस पर मरकर भी जो उठे, हजरत मुहम्मद खुदा के दूत थे गंगा ही मुक्तिदात्री हैं। इन विश्वासों से साइंस (विज्ञान) गणित और कला सीखने वाले विद्यार्थी को क्या सहायता मिलेगी ? वह कोई भी ऐसा विश्वास न रखता है किन्तु प्रतिभा सम्पन्न हो और श्रमी सदाचारी हो तो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होगा और इन मतों का दास यदि बुद्धू है तो मत उसे पास करा नहीं सकते। वेद में कर्म और बुद्धि की ही महिमा यत्र-तत्र वर्णन की गई है। (यां मेधां गणाः) 'मेधां में देवः सविता आददातु आदि वेदों में यत्र-तत्र गणित और विज्ञान की भी शिक्षायें हैं।

यजुः का अध्याय १८ मं० २३, २४ यहाँ संख्या का वर्गमूल निकालना बताया गया है। ऐसे गणित सम्न्धी मंत्रों को लेकर इन्दौर के राज पण्डित श्री दीनानाथ चुडैल ने वेदों में गणित के अनेक नियम दिखायें थे। और अंग्रेजी में इसी को लेकर कुर्तकोटी श्री शंकराचार्य जो पहले गणित के प्रोफेसर थे उन्होंने पुस्तक लिखी थी। श्री पं० अयोध्या प्रसाद मिश्नरी कलकत्ता को इन पुस्तकों के अनेक फार्मूले याद थे। वे इससे बड़े-बड़े गणितज्ञों को चमत्कृत कर देते थे। वेदों में विज्ञान (Scince) के भी अनेक तत्व हैं। वृक्ष विज्ञान

औषध विज्ञान मणि विज्ञान, मनो विज्ञान, ज्योति विज्ञान आदि अनेक उच्च-कोटि के वेद में हैं। अब तो अनेकों पुस्तकें वेदों के ज्ञान को प्रदर्शित करने वाली छप चुकी हैं। वेदों में आध्यात्मिक ज्ञान तो भरा हुआ है। ये वैदिक देवत कहीं ईश्वर के नाम हैं, कहीं केवल भावों के नाम, कहीं सृष्टि के वैज्ञानिक पदार्थ हैं। जैसे विद्युत्, इन्द्र प्रभु आदि। वेदों में दर्शन शास्त्र के भी अनेक स्थल हैं यथा ऋग् मं० १ व सू० १२६ नासदीय सूक्त ऐसे प्रकरण यजुः और अथर्व में भी हैं। प्रश्न होता है कि सृष्टि के आदि ऐसे ज्ञान का आविष्कार कैसे हुआ ? उस समय तो मनुष्य अविकसित थे। ऐसे सन्देह वे ही करते हैं जो मनुष्य को बन मानुष का विकास मानते हैं। मनुष्य को ईश्वरीय रचना मानने वालों को ऐसे सन्देह नहीं हो सकते ईश्वर ने आदिम मनुष्यों को ही ज्ञानी बताया और उनमें भी जो अधिक सत्व सम्पन्न थे उनके हृदय में ज्ञान की प्रेरणा की। वेद है ही इसलिये कि मनुष्य के विचार से भी ऊपर की शिक्षा जिसमें मिले।

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

जो उपाय प्रत्यक्ष और अनुमान से ही ऊपर है उसकी शिक्षा वेद देते हैं। जैसे यज्ञों की, योग की, पुण्य कृत्यों की।

वेदों के विषय में मुसलमानों की भावना का प्रमाण है। पं० हबीबुर्रहमान शास्त्री प्रोफेसर मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ का लिखा 'तत्त्व प्रकाश'। यह ग्रन्थ ईशोपनिषद् यजुर्वेद के अध्याय ४० की व्याख्या है।

इसमें वेद की बड़ी प्रशंसा की है। और भी देशी विदेशी विद्वानों ने वेद के गौरव का वर्णन किया है। वेद के निन्दक, सबसे अधिक हैं जैन। वेद मंत्रों के ऊट पटांग अर्थ करके वेदों का उपहास किया है। एक जैन पण्डित ने अपने लिखे सत्यार्थ दर्पण में। इस पुस्तक में किये हुये आक्षेपों का समाधान, आर्य समाज के विद्वान् श्री पं० ब्रह्मदत्त जी, श्री चमूपति जी एम० ए०, श्री विद्यामार्तण्ड पं० धर्मदेव जी (स्वामी धर्मानन्द) के पुस्तकों में वर्त्तमान हैं।

वैदिक सम्पत्ति श्री पं० रघुनन्दन शर्मा की लिखी हुई प्रसिद्ध पुस्तक है, मेरी 'वेदवाणी' इन सब में ऐसे बेहूदे आक्षेपों का समाधान है। वेदार्थ कैसे हो।

इसके लिये निरुक्त पर स्वामी स्कन्द जी का भाष्य देखना चाहिये। वेद मंत्र कूटार्थ भी हैं, इनमें आलंकारिक वर्णन भी है। जैसे सन्त कबीर के पदों का केवल शब्दार्थ से समझना गलत है। वैसे ही वेद मंत्रों के भाष्य का इस जैनी ने जान बूझ कर अनर्थ किया है। उदाहरण के लिये देखिये .—पृ० २०५ पर।

"वेदों में ऐसा गन्दा अश्लील कथन भी भरा हुआ है।" यजुर्वेद छठा अध्याय मंत्र १४।

"हे शिष्य......मैं तेरे......लिंग को पवित्र करता हूं। तेरी जिससे रक्षा की जाती है उस गुदेन्द्रिय को पवित्र करता हूं।" यह है धूर्त्तता इस जैनी की कि पूरा मन्त्रार्थ नहीं लिखा। मंत्र है :—

"वाचं ते शुन्धामि, प्राणं ते शुन्धामि, चक्षुस्ते शुन्धामि, श्रोत्र ते शुन्धामि, नाभि ते शुन्धामि, मेढ्रं ते शुन्धामि, पायुं ते शुन्धामि, चरित्रांस्ते शुन्धामि।"

मंत्र में गुरुकुल में प्रविष्ट बालकों के तथा बालिकाओं के प्रति गुरु तथा गुरुपत्नी का कर्त्तव्य बताया गया है। गुरु कहता है शिष्य ! मैं तेरी वाणी को प्राण को, नेत्र को, श्रोत्र को, नाभि को, मूत्रेन्द्रिय को, गुदेन्द्रिय को और चरित्रों को शुद्ध करता हूं।

अर्थात् यहाँ गुरुकुल में शिक्षा द्वारा तेरे वचन शुद्ध किये जायेंगे। प्राणायाम द्वारा प्राणों की शुद्धि होगी। कान, नेत्र शुद्ध किये जायेंगे। और भोजन वा व्यायाम द्वारा नाभि की शुद्धि की जायेगी। मूत्र सम्बन्धी रोग न हों ऐसे भोजन दिये जायेंगे अर्थात् स्वास्थ्य रक्षा की जायेगी। योग की क्रियाओं द्वारा नाभि की क्रियायें ठीक की जायेंगी। और भोजन तथा व्यवहारों द्वारा मल मूत्र के रोगों से रक्षा की जायेगी। और अन्तिम उपदेश है कि चरित्रों को शुद्ध बनाया जायेगा। स्वास्थ्य रक्षा, व्यवहार रक्षा चरित्र शुद्धि के लिये तू गुरुकुल में आया है। हमारा कर्त्तव्य है कि तेरे स्वास्थ्य की रक्षा करें। तेरा चरित्र निर्माण करें। कहो जैनी जी ! इसमें क्या अश्लीलता है ?

इसी प्रकार भाष्य का एक और टुकड़ा दे दिया है यह शरीर विज्ञान की शिक्षा है। शरीर-विज्ञान पढ़ाने में अश्लीलता नहीं होती। वेदों के विरोध में आपने जिन सज्जनों के नाम लिखे हैं वे वेदों के ऐसे ही जानकार थे जैसे कि आप। और सोऽहं शर्मा ऐसा ही नास्तिक था जैसे कि जैन बौद्ध होते हैं। श्री लाला लाजपतराय वेदों को ईश्वरीय ज्ञान माने वा न मानें, उनका वेदों के

सम्बन्ध में महत्त्व ही क्या है। वे राजनैतिक महापुरुष थे और उर्दू अंग्रेजी पढ़े थे।

वेदों की यह कितनी बड़ी महत्ता है कि उनके अध्ययन में विद्वान् आज भी जुटे हैं और भिन्न-भिन्न बातें उसमें से छाँटते हैं।

"जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।"

वेदों के ऋषियों के सम्बन्ध में, वेदों के समय के सम्बन्ध में आपने जो कुछ लिखा है। अनर्गल प्रलाप मात्र है। आर्य मान्यताओं से प्रतिकूल है। इसलिये भगवान् मनु ने लिखा है :—

"नास्तिको वेद निन्दकः" और इस वचन के अनुसार ही जैनों की गणना नास्तिकों में होती है। जैनों के पास तो कोई प्रामाणिक ग्रन्थ है नहीं। तीर्थंकर भगवानों ने तो कोई ग्रन्थ लिखे नहीं, और न उनका उपदेश वचनों द्वारा होता था। उनकी वाणी एक ओंकार की ध्वनि रूप होती थी। जिसका अर्थ उनके गणधर समझ कर मनुष्यों को बताते थे, किन्तु आज जैनों के पास उन गणधरों का भी कोई ग्रन्थ नहीं है। जो भी ग्रन्थ हैं वे सब पंडितों के बनाये हुए हैं और नवीन हैं। आर्य जाति का सबसे पुराना ज्ञान ग्रन्थ वेद है। जिस पर आर्य जाति को अभिमान करना चाहिये किन्तु जैनी जी उसकी हँसी उड़ाते हैं।

"आप न काहू काम के डार पात फल मूल।
और को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़ बबूल॥

अपने पास तो तीर्थंकर भगवान् वा उनके गणधर किसी का प्रामाणिक ग्रन्थ है नहीं और वेद उपनिषद् आदि ग्रन्थों की निन्दा कर रहे हैं।

वेद के विषय में सनातन धर्मी आर्य समाजी, शैव, वैष्णव सब की सम्मति एक सी ही है कि वेद अलौकिक ग्रन्थ हैं। आदि सृष्टि में ऋषियों को मिला प्रभु प्रेरित ज्ञान है।

वेदों में पशु वध यज्ञों में होना लिखा है, यह सब वाम मार्गियों की गढन्त है। वेद केवल यज्ञों के लिये हैं वह याज्ञिकों की कल्पना है। वेदों में पशु याग नहीं है। भाष्यकारों ने वेदों को सूत्र ग्रन्थों के पीछे डालकर अनर्थ किया है। वेदों में अनेक देवों की स्तुति है। यह भी मिथ्या बात है। एक ईश्वर की ही स्तुति अनेक नामों से की गई है। पौराणिक लोग ब्राह्मण ग्रन्थों, शाखाओं, उपनिषदों सब को मानते हैं, किन्तु स्वामी जी इन चार संहिताओं को जो आज

प्रचलित हैं। ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं शेष को वेदों की व्याख्या। और इन सब को पढ़ने से यही सिद्ध भी होता है। जिन शाखाओं को सनातनीय पण्डित वेद बताते हैं वे शाखायें अब बहुत सी तो लुप्त हो गई हैं। ईश्वरीय ज्ञान इनकी मान्यता के अनुसार इन पर बहुत कम रह गया है। खण्ड मात्र ऋषि दयानन्द जिसे ईश्वर से प्रेरित ज्ञान मानते हैं वह उन पर संहिताओं के रूप में है। और हम में मनुष्योपयोगी सदा उपदेश विद्यमान है।

देखो अथर्व वेद का संज्ञान सूक्त

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या" ॥

हे मनुष्यो ! मैं तुम्हें सहृदय (पर कष्ट को देख कर दया से द्रवित हो जाने वाला) मनों में समझौता रखने वाला और द्वेष रहित करता हूं। एक दूसरे को ऐसे प्यार करो जैसे गौ अपने सद्यो जात बछड़े को प्यार करती है। यह उपदेश सार्व भौम है।

"सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया"। सरल रहो, सदाचारी रहो, और कल्याणमयी वाणी बोलो।

"समानी प्रपा सहवो अन्न भागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।"

तुम्हारे खान पान की वस्तुयें समान हों, कानून सब के लिये समान हो।

वेदों के ये उपदेश मजहब, सम्प्रदाय, जाति, बिरादरी, देश, प्रान्त सब संकीर्ण भागों से रहित हैं। मानव मात्र में प्रेम भाव, दया, सदाचार, समता वेद फैलाते हैं। जो लोग वेदों में आर्य, दस्यु, और पणियों के संघर्ष की बातें बताते हैं, ये दुराग्रही हैं, वेद के भावों से कोसों दूर हैं। दस्यु हैं वेद के शब्दों में 'अकर्मा', 'अव्रती', 'निठल्ला', 'निकम्मा', 'आलसी' और व्रत-सदाचार से रहित व्यक्ति, और पणि हैं कृपण, समाज-शोषक, इन पर राज्य का नियन्त्रण हो। यह है वेद की शिक्षा। ऐसे लोग जब राज भय से काम में लग जायें, सदाचारी बन जायें तो वे आर्य हैं। पणि-समाज-शोषक जब समाज हित में धन लगायें तो वे आर्य हैं। ये शिक्षायें सार्व भौम हैं। सार्वजनीन हैं इनका जातीय द्वेष से क्या काम ?

ईश्वर भक्ति भी वेद में जनहित ही है। आज भी वेदों पर दो लांछन

लगाये जाते हैं। १. वेदों में पशु बलिदान है। २. वेदों में इतिहास है। इन दोनों लांछनों को अनेक पुस्तकें लिखकर युक्ति प्रमाण सहित विद्वानों ने झूठे सिद्ध कर दिया है। किन्तु दुराग्रह इन लोगों को सही बात मानने नहीं देता। वाम मार्गी सूत्र ग्रन्थों का अनुसरण करके पौराणिक भाष्यकारों ने जो वेदों के अनर्थ किये हैं। उन्हें ये लोग बड़े उत्साह से मानते हैं। देखो एक मन्त्र का उदाहरण :—

"तव शरीरं पत विष्णु अर्वन्, तव चित्त वात इव अजीमान्। तव शृ गाणि निष्ठिता अरण्येषु पुरुत्रा जर्भु राणश्चरन्ति।

(ऋग् म० १ सू० १६४, मंत्र ११, यजु : २६।२२७

अर्वन् का अर्थ है घोड़ा और धात्वर्थ है गतिशील, कर्म करने की शक्ति रखने वाला। बस भाष्यकारों ने घोड़े का बलिदान यहाँ पा लिया। यज्ञ के लोग घोड़े से कहें :—

हे घोड़े ! तेरा शरीर नष्ट होने वाला है, तेरा चित्र इस डर से वायु के समान कांप रहा है। तेरे शृंग शक्तियाँ अनेक प्रकार से चमकती हुई विविध रूपों में स्थित वनों में (विषय भोगों में) विचर रही हैं।

शृंग का अर्थ सींग, पर्वत के शिखर और बल होते हैं। आचार्य सायण ने लिखा है "शृंग स्थानीयाः केशाः" सींग के स्थान वाले केश। किन्तु सींग होते हैं सिर पर और बाल होते हैं गर्दन पर। आगे 'उन्नतानि तेजांसि" उन्नत तेज भी अर्थ कर दिये हैं।

श्री महीधर जी और उव्वटाचार्य ने 'दीप्तयः, और अर्चींषि अर्थ किये हैं। भाव एक ही रहा शक्तियां।

यह मंत्र अन्योक्ति अलंकार है ऐसे ही अनेक स्थल हैं जहाँ अलंकार, श्लेष, लक्षणा, व्यंजना कूटार्थ को ध्यान में रख कर अर्थ किये जायेंगे।

घोड़े पर ढाल कर प्रत्येक मनुष्य से कहा जा रहा है 'अर्वन्' शब्द भी साभिप्राय है। अतः यहाँ परिकरालंकार है।

हे गतिशील मनुष्य ! जो तू उन्नति कर सकता है। ध्यान दे कि तेरा शरीर नाशवान है, जिस शरीर के सुख भोगार्थ ही तू जुटा रहता है। वह नष्ट होने वाला है, तेरा चित्त वायु से समान चंचल है, मन ठिकाने नहीं, अनेक

क्ति विभ्रान्त हो रहा है तू। तेरे शृंग (शक्तियाँ) बहुत चमक के साथ जंगलों में घूम रहीं हैं अर्थात् कामोपभोग प्राप्ति में ही तेरा सब पुरुषार्थ रहता है।

भावार्थ है कि परलोक सुधार के लिये तू कुछ नहीं करता। जीवन व्यर्थ खो रहा है। ऐसे सब ही मन्त्र अन्योक्ति अलंकार हैं और ऋषि दयानन्द ने घोड़े का मुख्य अर्थ लेकर ही अर्थ किये हैं जिनमें अश्वपालन की शिक्षा दी गई है, घोड़े का मारना कहीं नहीं।

जैन पण्डित ने मंत्रों में नाम देखकर वेदों में इतिहास ढूँढ लिया। ये नाम किसी व्यक्ति विशेष के नहीं हैं, किन्तु गौणिक नाम हैं। यही मान्यता आज तक के वैदिक विद्वानों की रही है। इन मंत्रों के शब्द लेकर ही आगे चलकर ऋषि मुनि और राजाओं के नाम रक्खे गये। जैनी जी ने तो अपने तीर्थंकरों के नाम भी वेद में पा लिये, यद्यपि ये मन्त्र नकली हैं। किसी जैनी की गढन्त हैं। जैनी जी का यह सारा पुस्तक (यथार्थ दर्पण) मिथ्यार्थ दर्पण मात्र है।

जैन पण्डितों ने वेदों पर जो आक्षेप किये हैं वे सब वैदिक धर्मियों की मान्यताओं के विरुद्ध किये है। मान्यता को जान कर तब आक्षेप करना चाहिये सत्यार्थ प्रकाश' में जो आक्षेप किये हैं वे जैनियों की मान्यता को लेकर किये हैं। खण्डन का यही सही तरीका भी है। वेदों के विरोध में अनेक लोगों ने तूफान चलाये; परन्तु वेद आज भी अडिग हैं। अचल है। करोड़ों व्यक्तियों के श्रद्धा ग्रन्थ हैं, इसीलिये ऋषि दयानन्द ने वेदों को पूरी मान्यता दी।

"वेद भगवान् तुम हमारे पूर्वजों के प्राण हो। रूप में पुस्तक के हो पर तत्त्वमय भगवान् हो।"

क्या वेदों में ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम हैं ? देखिये उदाहरण

१. यन्नासत्या परावति यदगस्थो अधितुर्वशे।
अतो रथेन सुवृता न आगतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ऋग् १।४७।७

२. अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रा देवं हवामहे। ऋ० १।३६।१८

३. प्रयत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति। १।१७४।६

४, अन्तरिक्षे पथतः पुरुभुजा। ऋ० ८।१०।६

५. यदुषो यासि भानुना संसूर्येण रोचसे। अथर्व०

अथ नवमः समुल्लासः

इस समुल्लास में विद्या, अविद्या, मोक्ष और बन्धन का वर्णन है "विद्यां-चाऽविद्यांच" यजुः मन्त्र देकर स्वामी जी ने योग-सूत्र के द्वारा प्रक्रिया का लक्षण बताया है :—

"अनित्यादशुचि दुःखाऽनात्मसु नित्यशुचिसुखात्म ख्यातिरविद्या" अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख, अनात्म जड़ को आत्मा समझना अर्थात् विपरीत ज्ञान का नाम अविद्या है, अविद्या से हटना ही धर्म का चरम लक्ष्य है, किन्तु ऐसे भी मत हैं जिनका प्रचार ही अविद्या से होता है उनमें नवीन वेदान्ती भी एक हैं।

प्र०—न विरोधो न चोत्पत्तिः, न बद्धो न च साधकः।

न मुमुक्षुर्न वैमुक्तिरित्येषा परमार्थता ॥

जीव ब्रह्म होने से वस्तुतः जीव का विरोध अर्थात् न कभी आवरण में आये, न जन्म लेता न बन्धन में आता, न साधक अर्थात् न कुछ साधना करने हारा है। न छूटने की इच्छा करता और न इसकी कभी मुक्ति है। क्योंकि जब परमार्थ बन्ध नहीं हुआ तो मुक्ति क्या ?"

उ०—यह नवीन वेदान्तियों का कहना सत्य नहीं, क्योंकि जीव का स्वरूप, अल्प होने से आवरणों में आया। शरीर के साथ प्रकट होने रूप जन्म लेना, पाप रूप कर्मों के फल भोग रूप बन्धन में फंसना, उसके छूटने का साधन करना, दुःख से छूटने की इच्छा करना और दुःखों से छूटकर परमात्मा परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति को भी भोगता है।

प्र०—ये सब धर्म देह और अन्तः करण के हैं जीव के नहीं, क्योंकि जीव तो पाप पुण्य से रहित साक्षी मात्र है, शीतोष्णादि शरीरादि के धर्म हैं, आत्मा निर्लेप है।

उ०—देह और अन्तःकरण जड़ हैं उनका शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं हैं जैसे पत्थर को शीत और उष्ण का भान व भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी उसका स्पर्श करता है उसी को शीत और उष्ण का भान और भोग होता है, वैसे प्राण जड़ हैं, न उनको भूख, न पिपासा, किन्तु प्राण वाले जीव को क्षुधा, तृषा लगती है, वैसे ही मन भी जड़ है, न उसको हर्ष, न शोक हो सकता है किन्तु मन से हर्ष, शोक, दुःख, सुख का भोग जीव करता है। जैसे बहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियों से अच्छे बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी दुःखी होता है। वैसे ही अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से सङ्कल्प-विकल्प, निश्चय, स्मरण और अभिमान का करने वाला दण्ड और मान का भागी होता है।

जैसे तलवार से मारने वाला दण्डनीय होता है तलवार नहीं होती, वैसे ही देहेन्द्रिय, अन्तःकरण, प्राणरूप साधनों से अच्छे-बुरे कार्य का कर्त्ता जीव सुख-दुःख का भोक्ता है जीव कर्मों का साक्षी नहीं किन्तु कर्त्ता, भोक्ता है, कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है।

प्र०—जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है जैसे दर्पण के टूटने-फूटने से बिम्ब की कुछ हानि नहीं होती इसी प्रकार अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव तक है जब तक कि अन्तःकरणोपाधि है, जब अन्तःकरण नष्ट हो गया तब जीव मुक्त है।

उ०—यह बालकपन की बात है क्योंकि प्रतिबिम्ब साकार का साकार में होता है जैसे मुख और दर्पण आकार वाले हैं और पृथक् भी हैं जो पृथक् न हो तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। ब्रह्म निराकार सर्वव्यापक होने से उनका प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता।

देखो, गम्भीर स्वच्छ जल में निराकार और व्यापक आकाश का आभास पड़ता है इस प्रकार स्वच्छ अन्तःकरण में परमात्मा का आभास है इसलिये इसको चिदाभास कहते हैं।

उ०—यह बालबुद्धि का मिथ्या प्रलाप है क्योंकि आकाश दृश्य नहीं तो उसको आँख से कोई भी क्यों कर देख सकता है।

प्र०—तो वह क्या है ?

उ०—अलग-अलग पृथिवी, जल और अग्नि के त्रसरेणु दीखते हैं, उसमें जो नीलता दीखती है वह जल जो कि बरसता है सो वही नील, जो धुंधलापन दीखता है वह पृथ्वी से धूलि उड़कर वायु में घूमती है वह दिखाती, और उसी का प्रतिबिम्ब जल व दर्पण में दीखता है आकाश का कभी नहीं।

प्र०—जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाश के भेद व्यवहार में होते हैं वैसे ही ब्रह्म में ब्रह्माण्ड और अन्तःकरण उपाधि के भेद से ईश्वर और जीव नाम होता है जब घटादि नष्ट हो जाते हैं तब महाकाश ही कहाता है।

उ०—यह भी बात अविद्वानों की है क्योंकि आकाश कभी छिन्न-भिन्न नहीं होता, व्यवहार में भी लाओ इत्यादि व्यवहार होते हैं। कोई नहीं कहता है कि घड़े का आकाश लाओ; इसलिये यह बात ठीक नहीं।

प्र०—जैसे समुद्र के बीच में मच्छी कीड़े और आकाश के बीच में पक्षी आदि घूमते हैं वैसे ही चिदाकाश ब्रह्म में सब अन्तःकरण घूमते हैं वे स्वयं तो जड़ हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसे कि अग्नि से लोहा— वैसे चेतन हो रहे हैं जैसे वे चलते-फिरते और आकाश तथा ब्रह्म निश्चल हैं वैसे ही जीव को ब्रह्म मानने में कोई दोष नहीं आता है।

उ०—यह भी तुम्हारा दृष्टान्त सत्य नहीं, क्योंकि जो सर्वव्यापी ब्रह्म अन्तःकरणों में प्रकाशमान होकर जीव होता है तो सर्वज्ञादि गुण उसमें होते हैं वा नहीं ? जो कहो कि आवरण होने से सर्वज्ञता नहीं होती तो कहो कि ब्रह्म आवृत और खण्डित है वा अखण्डित है, जो कहो कि अखण्डित है तो बीच में कोई परदा नहीं डाल सकता, जो परदा नहीं तो सर्वज्ञता क्यों नहीं ? जो कहो कि अपने स्वरूप को भूलकर अन्तःकरण के साथ चलता-सा है स्वरूप से नहीं, जब स्वयं नहीं चलता तो अन्तःकरण जितना-जितना पूर्व प्राप्त देश छोड़ता और आगे-आगे जहाँ-जहाँ सरकता जायेगा वहाँ-वहाँ का ब्रह्म भ्रान्त और अज्ञानी हो जायेगा और जितना-जितना छूटता जायेगा वहाँ-वहाँ ज्ञानी, पवित्र और मुक्त हो जायेगा, इसी प्रकार सर्वत्र सृष्टि के ब्रह्म को अन्तकरणः बिगाड़ करेगा और बन्ध-मुक्ति भी क्षण-क्षण में हुआ करेगी, तुम्हारे कहे प्रमाणों

जो वैसा होता तो किसी जीव को देखे सुने का स्मरण नहीं होता, क्योंकि जिस ब्रह्म ने देखा वह नहीं रहा। इसलिए ब्रह्म जीव, जीव ब्रह्म कभी नहीं होता, सदा पृथक्-पृथक् हैं।"

नवीन वेदान्तियों की भ्रान्त कल्पनाओं का स्वामी जीने ऊपर कैसा युक्ति-युक्त विवेचन किया है। जीव ब्रह्म बताना, जो संसार प्रत्यक्ष दीख रहा है उसे मिथ्या बताना अद्वैतवादियों का पूर्ण अन्धेर है, ब्रह्म में अज्ञान और भ्रम कहाँ ? और यदि ब्रह्म भी भ्रान्त हो सकता है तो मुक्त होकर जीव पुनः भ्रम के चक्कर में आ सकता है। नवीन वेदान्तियों का चेतना द्वैतवाद और मार्क्स तथा ऐंजिल्स का अद्वैतवाद दोनों ही भ्रान्त कल्पनायें हैं। प्रकृति और जीव तो प्रत्यक्ष दीख रहे हैं। ब्रह्म की रचना और नियम संसार में प्रत्यक्ष हो रहा है फिर ये कल्पनायें मस्तिष्क की विकार मात्र ही हैं।

अब स्वामी जी मुक्ति और बन्धन का वर्णन करते हैं—

सब प्रकार के दुःखों से छूटना ही मुक्ति है स्वामी जी के मत में और यह दशा प्राप्त होती है जीव को "अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्य भाषण परोपकार, विद्या पक्षपात रहित न्याय, धर्म की वृद्धि करने, विद्या पढ़ने पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनों को करने, और जो कुछ करे वह सब पक्षपात रहित न्याय धर्मानुसार ही करे।"

मुक्ति के उक्त साधनों पर ध्यान दीजिये। जो लोग मुक्ति और परलोक को नहीं मानते वे भी स्वामी जी की बताई उक्त बातों का विरोध नहीं कर सकते उक्त व्यवहार मानव जगत् में सुख शान्ति, फैलाने के लिये कितने उपयोगी हैं। इसी उपर्युक्त काव्य में स्वामी जी ने ईश्वरोपासना, ईश्वर की स्तुति प्रार्थना को भी मुक्ति का साधन बताया है। किन्तु साथ ही लिखा है अर्थात् योगाभ्यास लिखकर बता दिया कि मन को इन्द्रियों को संयम में रखना आवश्यक है। यह भी सबके मानने योग्य बात है।

अब अन्य मत वालों के मुक्ति के साधनों से तुलना कीजिये—

इस्लाम में मुक्ति का कोई वर्णन नहीं, केवल स्वर्ग का वर्णन है, उसके लिये सदाचार, तप, ज्ञान की आवश्यकता नहीं, केवल हजरत मुहम्मद साहब

को नबी मानने की आवश्यकता है, अत्यन्त निर्मल चरित्र वाला व्यक्ति भी नरक में डाला जाएगा यदि वह मुसलमान नहीं है। इसाईयों के यहाँ भी मुक्ति का, स्वर्ग का भी कोई वर्णन नहीं है, इसके मत में मुक्ति का अर्थ—पाप से मुक्ति। पाप क्या है? दुराचार, भ्रष्ट जीवन पाप नहीं। पाप वह जो आदम ने ईश्वराज्ञा के विपरीत स्वार्थ में ज्ञान के वृक्ष का फल खाकर किया। ईसाईयों के अनुसार आदम का वह पाप आदम की सन्तानों में है। उससे वही बचेगा जो वपतिस्मा ले ले अन्यथा कितना ही सुचरित्र व्यक्ति हो पाप में जाएगा। ईसाई कहते हैं जैसे खट्टे आम के सब ही पौधे खट्टे ही होंगे, इसी प्रकार के आदम के सब सन्तान पापी हैं। खट्टे पेड़ पर कलम चढ़ाने से फल बदल जाते हैं इसी प्रकार वपस्तिमा द्वारा रुहुल कुदस (पवित्रात्मा) की कलम चढ़ाई जाती है। यह पूरा अन्धविश्वास है युक्ति विरुद्ध प्रत्यक्ष तर्क से हीन। वपतिस्मा लेकर भी लाखों जन दुराचारी देखे जाते हैं, और वपतिस्मा रहित भी कई व्यक्ति पवित्र चरित्र हैं, और फिर सृष्टि बनने के लाखों वर्ष बाद खुदा को यह इलाज़ सूझा! इससे पहले के सब लोग नरक गये? इन मतों की ऐसी ऊट-पटांग मान्यताओं का विरोध प्रत्येक बुद्धिमान् करेगा। ईसाई और इस्लाम इन मतों का सम्बन्ध दर्शन शास्त्र से तो था नहीं। दोनों मतों ने दर्शन और विज्ञान का घोर विरोध किया। दार्शनिक और वैज्ञानिक मार डाले गये। हाँ अब ये मत वाले कुछ दबे पड़े हैं। वैदिक धर्म दार्शनिक धर्म हैं। वेदों में यत्र-तत्र दार्शनिक विचार, वैज्ञानिक सूत्र विद्यमान हैं। ऋग् वेद के नासदीय सूक्त, अस्यवामीय सूक्त दार्शनिक हैं अर्थात् वेद में ऐसे विचार हैं। यजुः का १७ वां और ४० वां अध्याय गम्भीर दार्शनिक विचारों से भरे हुये हैं भारत के अन्य सम्प्रदायों में भी चरित्र पर बल दिया है। स्वर्ग प्राप्ति, मुक्ति प्राप्ति के लिये चरित्र को प्रधानता दी गई है किसी तर्कहीन विश्वास को नहीं। वैदिक धर्म इस जीवन में ही मुक्ति की दशा प्राप्त करने का उपदेश देता है।

मुक्ति से पुनरावृत्ति

महर्षि दयानन्द के दार्शनिक सिद्धान्त (सुलझे हुये हैं और अटल भी)

प्र०—मुक्ति में जीव का लय होता है या विद्यमान रहता है।

उ०—विद्यमान रहता है (स० प्र० ७ समुल्लास) नवीन वेदान्तियों का कहना है कि मुक्ति प्राप्त करके जीव ब्रह्म में मिल जाता है और प्रमाण में वे मुण्डक उपनिषद के उस वचन को प्रस्तुत करते हैं।

"यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान् नामरूपाद विमुक्तः परात्परम् पुरुषमुपैति दिव्यम्। (मुंडक इखण्ड श्रुति)

अर्थात् जैसे बहती हुई नदियाँ नामरूप को छोड़कर समुद्र में अस्त हो जाती हैं इसी प्रकार विद्वान् (ज्ञानी मुक्त जीव) नाम रूप से मुक्त हुआ दिव्य परम पुरुष (ब्रह्म) को प्राप्त होता है।

इस मुक्ति से केवल यही भाव निकलता है कि जीव नामरूपे अर्थात् स्थूल शरीर का सम्बन्ध छोड़कर अपने चेतन स्वरूप में रह जाते हैं दृष्टान्त वा उपमा एक देशी ही होती है। नदियों का नाम रूप मिट जाता है पर पानी का अस्तित्त्व तो रहता ही है। उस पानी का नाम बदल जाता न कि अस्तित्त्व। श्री रामानुजाचार्य जी भी इस पर शंका उड़ाते हैं—

किं च जीवाश्रयाया अविद्याया तत्त्वज्ञानादानन्द प्राप्ते सति जीव नश्येत् वा न वा? यदि नश्येत् तु विनाश लक्षणो मोक्षःस्यात्।
(वे० २।१।१५)

अविद्या के नाश और ज्ञान के उदय से जीव भी नष्ट हो जाता है। वा नहीं? यदि हो जाता है तो अपने स्वरूप का विनाश रूप हुआ मोक्ष। कविवर रत्नाकर जी ने भी उद्धव के लिये गोपियों से यही कहलवाया है।

"बूंदता विलइ है बूंद विवश विचारी की।"

समुद्र में मिलकर जलबिन्दु अपना अस्तित्त्व खो देता है तो जीव भी ब्रह्म रूप होकर अपने अस्तित्त्व खो देंगे, फिर मोक्ष का आनन्द कौन भोगेगा, खीर खाने को चले तो स्वयं ही खीर बन गये, अच्छी खीर खाई।

दरिया और कतरे की मिसाल सूफियों की है वह एक प्रकार का हेत्वाभास रूप है। दरिया और कतरा समुद्र और बूंद ऐसा भाव तो श्रीशंकराचार्य जी भी नहीं मानते देखो—

"अंशस्यांशो नहि निरवयवस्य मुख्यांशः – स भवति।" (वेद २।३।४३)

जीव ईश्वर का अंश जहाँ ऐसा प्रमाण मिले वहाँ यह समझ लेना चाहिये कि भौतिक शत्रु (बूंद और समुद्र) जैसा अंशांशी भाव जीव ब्रह्म का नहीं है।

निरवयव पदार्थ का अंश नहीं होता । यहाँ मुख्य अंश से प्रयोजन कहा है किन्तु एक है प्रतिच्छन्न चेतन, दूसरा है सर्वव्यापी चेतन; इस प्रकार चेतनता के कारण औपचारिक अंशाशी भाव सम्पन्न कहा है, मुख्य नहीं ।

मुक्त जीव ब्रह्म के आनन्द को भोगता है जैसा कि राजा का मित्र राजा के भोगों को प्राप्त करता है किन्तु राज प्रबन्ध में उसका कोई अधिकार नहीं ।

वेदान्त ५० अध्याय ४ पाद ४ खण्ड १७ में कहा ।

"जगद्व्यापारवर्जप्रकरणादसंनिहितत्त्वाच्च" जगत् के कामों को छोड़कर अन्य आनन्द होता है, जगत् प्रबन्ध का अधिकार नहीं पाता प्रकरण के असन्निहित होने से ।

"जगदुत्पत्यादिव्यापारं वर्जयित्वाऽन्य अणिमाद्यात्मकमैश्वर्यं मुक्तानां भवितुमर्हति जगद्व्यापारस्तु नित्यसिद्धस्य ईश्वरस्यैव ।"

अर्थ—संसार की उत्पत्ति आदि व्यापार को छोड़कर अन्य अणिमा आदि सिद्धि रूप ऐश्वर्य मुक्तात्माओं को प्राप्त हो सकता है । सृष्टि रचना आदि तो नित्य सिद्ध ईश्वर का ही काम है । शास्त्र ज्ञान शून्य हिन्दी के अद्वैतवादी विचारें कि यह भेद है वा अभेद ?

शास्त्रज्ञ संस्कृत के पंडित भी जरा बुद्धि पर जोर दें कि स्वामी शंकराचार्य जी के शब्दों में सृष्टि व्यापार कर्त्ता एक नित्य ईश्वर है तो आनन्द भोगने वाला जीव अनित्य है ईश्वर ठहरा वा नहीं ? मुक्त जीव का ईश्वरत्व अनित्य है तो मुक्त अवस्था नित्य रहा वा अनित्य, यदि अनित्य है, तो मुक्ति से पुनरावृत्ति सिद्ध है । क्योंकि अनित्य पदार्थ प्रागभाव एवं प्रध्वंसाभाव दो अभावों के बीच की वस्तु है । जो नित्य पदार्थ होता है, वह दोनों अभावों से रहित होता है । एक अभाव स्पर्श करने वाला पदार्थ असम्भव होता है । यदि मुक्ति का आदि है तो अन्त भी होना ही चाहिये । शास्त्रों में अनावृत्ति शब्द केवल एक सर्ग के लिये है एक परान्त काल तक आवृत्ति नहीं होती, मुक्ति की अनावृत्ति को सदा मानकर पुराने आचार्य कैसे उलझे हैं । यह भी दिखाना था पर लेख संक्षिप्त ही मांगा गया है, अतः यहीं विराम देते हैं । पर हम यह घोषणा करते हैं कि स्वामी जी की दार्शनिक मान्यतायें उलझनों से रहित हैं ।

"दयानन्दस्य सिद्धान्ताः शुद्धास्तर्कसमन्विताः न च खंडयितुं शक्याः मायावादिविमोहितैः" ।

जो लोग मुक्ति से कभी पुनरावृत्ति नहीं मानते, जैन और पौराणिक तो अनावृत्ति शब्द उपनिषद, दर्शन, गीता में आया देखकर ऐसा विचार बनाते हैं, किन्तु अनावृत्ति केवल परान्त काल तक नहीं होगी जैसा कि—

फिर तो आना ही होगा, सीमित कर्मों का फल असीम नहीं मिल सकता, और नाहीं नैतिक ज्ञान जो प्रभु से मिला है वह सदा रह सकता है । जैनों के मुक्त जीव तो स्फटिक शिला पर जाकर चिपक जायेंगे, फिर वे कुछ भी न सोचेंगे न करेंगे । इनकी मुक्ति दशा भी केवल विनाश दशा के तुल्य ही है ।

मुक्ति में जीव कहां रहता है । इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी जी कहते हैं, परमात्मा के आश्रय जीव रहता है । परमात्मा आकाश से भी सूक्ष्म है । वह अति सूक्ष्म परमात्मा के आधार पर रहता है, और परमात्मा के आनन्द में मग्न रहता है । प्रकृति के स्थूल विषयों में जीव की रुचि नहीं रहती । अतः सूक्ष्मेन्द्रियाँ और भौतिक मन तथा पंच प्राण भी नहीं रहते । स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीनों शरीरों से जीव मुक्त रहता है । शृण्वन् श्रोत्रं भवति आदि का तात्पर्य यही है कि इन्द्रियों के साधनों के बिना भी उसे सुनने आदि की शक्ति रहती है, जैन मुक्त जीव के समान मुक्त जीव जड़ है ।

तदत्यन्त विमोक्षेऽपवर्ग (न्या. १।१।२२) और दुःख जन्य प्रवृत्ति दोषाभिनथानानामुत्तरोत्तरापायो तदनन्तरापायादपवर्गः (न्या. १।१।२)

सूत्र देकर स्वामी जी ने इस शंका का समाधान किया है कि दुःख की अत्यन्त निवृत्ति जब बता दी गयी, तो मुक्ति से निवृत्ति कैसी ? स्वामी जी ने यहाँ बताया कि यह मुहावरा है इसका अर्थ है—बहुत अधिक ।

जैसे हमें अत्यन्त सुख मिला आदि । मुक्ति तो सावधि ही होगी । यदि मुक्ति से जीव न लौटे तो एक समय ऐसा भी आयेगा, कि जब संसार से जीव निःशेषः हो जायेंगे, नवीन वेदान्तियों का ब्रह्म तो फिर जीव बनता रहेगा, किन्तु जैनों का संसार जीव रहित हो जायगा । जो यह प्रश्न है कि ईश्वर और नये जीव बना लेगा तो जैन तो ऐसा मानते नहीं, मुसलमान, ईसाई जीव की रचना ईश्वर द्वारा मानते हैं तो स्वामी जी का आक्षेप है कि ऐसा होने पर जीव अनित्य हो जायेगा ।

जीव का स्वरूप तर्क पूर्ण ढंग से जिन मतों में निश्चित नहीं है वे ही ऐसी असंगत बातें करते हैं। स्वामी जी जीव की अनादि स्वतन्त्र संज्ञा मानते हैं और गीता भी जो कि सब ही पौराणिकों को मान्य है यही कहती है।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते।

ईश्वर जीव से कोई काम नहीं कराता, और न जीव के कर्म निर्धारित करता है, और कर्म फल का संयोग भी अपनी ओर से नहीं बनाता। यह सब जीव के सत्त्व, रज, तम युक्त स्वभाव से ही होता है। ईश्वर केवल नियामक है।

नवीन वेदान्ती एक और अनोखी बात कहते हैं कि जीव सुख-दुःख नहीं भोगता। यह बात प्रत्यक्ष के विरुद्ध है, मुर्दा सुख-दुःख नहीं भोगता। सुख-दुःख से जीव ही प्रत्यक्ष प्रभावित होता है। गीता भी यही कहती है,

कार्य कारण कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते
पुरुषः सुखदुःखान्ते भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।

कार्य-कारण और कर्तत्व का हेतु प्रकृति है। प्रकृति प्रभाव से जीव प्रभावित हो जाता है, किन्तु जीव सुख-दुःख भोगने में हेतु है। जड़ प्रकृति सुख-दुःख का अनुभव नहीं करती, यह सब अनुभव जीव को होते हैं, प्रकृति का संयोग जीव के लिये सुख-दुःख से मिश्रित है और ब्रह्म का संयोग साक्षात् अनुभूति है। वैसे तो ईश्वर का संयोग सब ही पदार्थों से है, किन्तु अनुभूति अर्थात् वृत्ति का संयोग आनन्द प्रद होता है। मुक्ति का आनन्द भोगने की अवधि कितनी है। इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी जी ने मुंडक उपनिषद का दृढ़ प्रमाण दिया है—

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले,
परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे। मु० ३।२१६

वे मुक्त जीव ब्रह्म लोकों में रहकर परान्त काल में उससे छूट जाते हैं, अर्थात् फिर जन्म लेते हैं। परान्त काल की गणना भी स्वामी जी ने दी है, लाखों वर्ष जीव मुक्ति के आनन्द को भोगता है।

यहाँ पौराणिक विद्वानों का कथन है कि यह वर्णन मुक्ति का नहीं है, स्वर्ग लोकों का है। स्वर्ग लोक से जीव लौटते ही हैं, किन्तु यहाँ शब्द है

"ब्रह्म लोक" और "परामृतात्" (परम अमृत) यहां दोनों शब्द सिद्ध करते हैं कि यह वर्णन मुक्ति का है। इस पर नवीन वेदान्तियों का वही आग्रह है कि जीव ब्रह्म में विलीन हो जाता है। फिर भेद नहीं रहता, किन्तु हम आचार्य शंकर के भाष्य में पहले दिखा चुके हैं कि भेद रहता है। और यदि जीव का लय हो भी जाता है, तो जब ब्रह्म ही माया और अविद्या के वश में आकर ईश्वर और जीव बन जाता है, तो लय हुआ जीव कैसे बचेगा ?

श्री स्वामी जी लिखते हैं "यह बात (मुक्ति से पुनरावृत्ति का अभाव) कभी नहीं हो सकती। क्योंकि प्रथम तो जीव का सामर्थ्य, शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं। फिर इसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? अनन्त आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य, कर्म और साधन जीव में नहीं।"

आगे स्वामी जी ने लिखा है :—

"ब्रह्म में लय होना समुद्र में डूब मरना है।" यह बात आचार्य श्री रामानुज ने लिखी है कि यदि जीव का ब्रह्म में लय हो जाता है तो जीव का विनाश होना ही मुक्ति है।"

किसी प्रकार अनन्त मुक्ति का सिद्धान्त तर्क पूर्ण नहीं ठहरता।

मुक्ति के साधन

"कुछ साधन तो प्रथम लिख आये हैं, लेकिन विशेष उपाय यह हैं :—

जो मुक्ति चाहे वह जीवन्मुक्त अर्थात् जिन मिथ्या भाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है उनको छोड़ सत्य भाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है, सत्पुरुषों के संग से विवेक अर्थात् सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय अवश्य करे, पृथक्-पृथक् जाने, और शरीर अर्थात् पंच कोषों का विवेचन करे।"

श्री स्वामी जी ने पाँच कोष बताये हैं :—अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष। फिर स्वामी जी ने जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति, तुरीया चार अवस्थायें और योग के कई साधन लिखे हैं, यह सब साधनायें करके इसे जीवन में चरित्रार्थ करे तो मनुष्य की दशा काम, क्रोध, लोभ से मुक्त हो जाये।

स्वामी जी मनु महाराज के श्लोक (मनु० अ० १२।८, ९।२५।२३, ३५।३८) देकर यह बता रहे हैं कि मानसिक, वाचिक और कामिक पापों का दण्ड अवश्य मिलता है। फिर आगे स्वामी जी ने मनु जी के प्रमाणों से ही (मनु० अ० १२।२ श्लो० ४०।४२-५०।५२। से) यह सिद्ध किया है कि राजस, तामस और सात्त्विक गतियाँ किस-किस प्रकार होती हैं।

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च ।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमः । ऋ० १२।५१।

अर्थात् विद्वान् भी इन्द्रियों के वश में होकर नीच योनियों में चले जाते हैं। इन्द्रियों का संयम जिसने नहीं किया, उसकी सारी विद्या व्यर्थ है।

अन्त में स्वामी जी कहते हैं कि मनुष्य रजोगुण, तमोगुण—युक्त कर्मों से मन को रोक शुद्ध सत्व गुण युक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्म युक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त का ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना। जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है। तब सब के द्रव्य ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है। इत्यादि साधन मुक्ति के लिए करे, और जो आध्यात्मिक अर्थात् शरीर सम्बन्धी पीड़ा, आधिभौतिक जो दूसरे प्राणियों से दुःखित होना, आधिदैविक जो अतिवृष्टि अतिताप, अतिशील मन इन्द्रियों की चंचलता से होता है, इस त्रिविध दुःख को छुड़ा कर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है।

वैदिक धर्म और आर्य जाति के अन्य सम्प्रदाय भी मुक्ति के लिए ज्ञान, तप और साधना को अनिवार्य समझते हैं। इस पर हमारे ईसाई पादरी प्रश्न किया करते हैं कि इतना तप और पुरुषार्थ कैसे किया जा सकता है? केवल मसीह पर विश्वास करके मुक्ति पा जाना कितना सहज उपाय है। उनको समझना चाहिए कि प्रथम श्रेणी में आने के लिए विद्यार्थियों को कितना परिश्रम करना पड़ता है। केवल कुलपति के नाम लेने से उच्च श्रेणी मिल जाय तो बुद्धू और बुद्धिमान सब की एक ही दशा हो जाय। ईसाईयों को उत्तर देने के लिए ही पौराणिकों ने यह लिखा—

"गंगे तवद्दर्शनान् मुक्तिर्नजाने स्नानजम् फलम् ।";

"हे गंगे तुम्हारे दर्शन से ही मुक्ति हो जाती है। स्नान के फल को तो मैं जानता ही नहीं।"

तो ईसाइयों से हमारे पौराणिकों का नुस्खा बहुत सस्ता रहा। पर भोले लोगो! यह सब बातें दिल बहलाने की ही हैं। वास्तव में मुक्ति और बन्धन मनुष्य के अपने आचार और विचार के साथ हैं। वैदिक धर्म आचार पर बल देता है और अन्य मत गुरुओं तथा नबीओं पर विश्वास-मात्र की शिक्षा देते हैं, क्योंकि मजहबों को अपनी दुकानदारी चलानी है। हँडिया-हकीम बीमार से कह देगा कि परहेज कर न कर किन्तु मेरी दवा मोल ले ले, किन्तु उत्तम वैद्य परहेज भी करायेगा, औषधि भी खिलायेगा, मनुष्यों को चाहिए कि आचरण की उपेक्षा करने वाले मतों को छोड़कर आचरणात्मक वैदिक धर्म को ग्रहण करें।

दशम समुल्लास

इस १०वें समुल्लास में श्री स्वामीजी ने आचार, अनाचार, भक्ष्य और अभक्ष्य के विषय में वर्णन किया है। प्रत्येक विषय में श्री स्वामी जी शास्त्र का आश्रय लेकर चलते हैं। अपनी ओर से वे कुछ नहीं कहते अतः इस विचार में भी उन्होंने मनस्मृति के श्लोक उद्धत किये हैं।

"वेदो ऽखिलो कर्ममूलं स्मृति पूरीलो च तद्विदाम ।
आचार श्चैवसाधना मात्मनस्तष्टिरेव च ।"

सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषिप्रणितपास्त्र उत्तम मनुष्यों का आचार और जिस-जिस कार्य में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा न हो उन कर्मों का सेवन करना उचित है। देखो जब कोई मनुष्य मिथ्या, भाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा में भय, शंका, लज्जा, अवश्य उत्पन्न होती है इसलिये यह कर्म करने योग्य नहीं।

यहां प्रश्न उठता है कि आज कल सुरापान करने, अण्डे, मास खाने और वेश्याओं से सम्बन्ध रखने में लज्जा, शंका, भय कहां उत्पन्न होता है! मुसलमान ईसाइयों को गौवध करने में लज्जा है न शंका, न भय तो यह लक्षण तो अत्यप्ति दोष से मुक्त रहा। ठीक है यह लक्षण नहीं है संकेतमात्र है। उत्तम समाज आस्तिक समाज की पहचान मात्र है। वर्तमान समय न ईश्वर का भय है, न शासन से शंका, न समाज से लज्जा। अतः अनाचार, आचार, भक्ष्य, अभक्ष्य का निर्णय इस कसौटी पर निर्णीत नहीं होगा। उसके लिए वही लक्षण रहेगा। वेदानुमोदित हो सत्पुरुषों के आचार की परम्पराओं के विरुद्ध न हो और ऋषि प्रणीत परास्त्र सम्भव हो। इसीलिये श्री स्वामी जी स्मृति प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। हमारे शास्त्रों के उपदेश, रागद्वेष से रहित, पक्षपात शून्य और तर्क संगत हैं जबकि मतवालों के विधि निषेध अपने मत के पक्ष और अन्यों के विपक्ष से भरे हैं। तर्क को उनमें कोई स्थान नहीं जबकि हमारे शास्त्र तर्क को महत्व दे रहे हैं।

"पुस्तर्केणानु संघत्ते सधर्म वेदनेतरः"

जो बुद्धि से, तर्क से खोज करता है वह धर्म को जानता है। अब तर्क से विचारिये—

सुरापान से बुद्धि नष्ट हो जाती है तब विवेक शक्ति उचित अनुचित का ज्ञान व परीक्षण (नेकोबद की तमीज) नहीं रहती इसलिये सुरापान (सत ही नहीं) दुराचार हैं। अधर्म हैं। मांस भक्षण जीवों के प्रतिदया कर जाती है। स्वार्थभावना स्वादु लोलूपता बढ़ती है। जीवों के प्रति न्यायवृत्ति नहीं रहती। सब जीवों को जीवित रहने का अधिकार है। मांसाहारी स्वार्थ तथा अपने से निर्बल जीवों के इस अधिकार को अपहरण करता है तो यह वृत्ति निर्बलों पर अत्याचार की प्रचारक बन जाती है। अतः मांस भक्षण पाप है। अनाचार है। वेश्यागमन पति-पत्नी के प्रेम में दरार एक पैदा कर देता है तो संतान मातृ-पितृ भक्त नहीं बनेगी। अतः व्यभिचार मात्र पाप है, अधर्म है।

श्री स्वामी जी ने मनुस्मृति का अध्याय १ श्लोक १०८ का आधा श्लोक दिया है।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ॥

वेद का आदेश किया हुआ स्मृतियों का निर्धारित किया हुआ आचरण ही परम धर्म है। आर्यों के सभी सम्प्रदायों ने वैदिक, बौद्ध, जैन, सिख, कबीर पन्थी, राधास्वामी आदि सन्त मतवालों सिख सम्प्रदाय और ईश्वर को न मानने वाले चावकि तक ने आचरण पर बल दिया है। जबकि ईसाई, मुसलमान विदेशी मतों में आचरण को प्रमुखता न देकर ईमान को मुख्य माना गया है।

"एक फासिक और फाजिर मुसलमान गांधी जी से अच्छा है।" (मुहम्मद अली)।

दुराचारी मुसलमान सदाचारी हिन्दू से श्रेष्ठ है। यह इस्लाम के नेता की राय है। बिना बप्तिस्मा के उच्च कोटि का सदाचारी भी स्वर्ग नहीं जा सकता और आचरण हीन बप्तिस्मा वाला स्वर्ग पा सकता है। यह है ईसाई मत। आचरण की दृष्टि से आर्य जाति के सभी समुदाय निबक्ष हैं।

स्वामी जी ने आर्य लोगों के विदेश जाने का समर्थन किया है और महाभारत के प्रमाण दिए हैं। वेद स्वयं कहता है—

अदो यद्दारूपलवते सिन्धोः पारे अपूरूषम् ।
तदारमस्व दुरहणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥ ऋ०।

अर्थ—समुद्र के किनारे जो यह प्राकृत काठ (वृक्ष) तैर रहा है। ऐ ! अभागे, गरीब मनुष्य इसका संस्कार कर अर्थात् नाव जहाज बना। और उसके द्वारा समुद्र पार जा।

इस मन्त्र का देवता अलक्ष्मीघ्न है। अर्थात् निर्धनता को नष्ट करने वाला। वेद ने बताया कि समुद्र यात्रा करने से गरीबी दूर होगी और बात सही भी है। स्पेन और इंग्लैंड ने सामुद्रिक व्यापार से धन भी कमाया और नाम भी। भारत के लोग भी पहिले विदेशों में जाते थे किन्तु फिर संकीर्ण बुद्धि गुरुओं ने विदेश यात्रा पर प्रतिबन्ध लगाकर आर्य जाति की सम्पत्ति का विनाश करके रख दिया। अब से पचास-साठ वर्ष पूर्व इंग्लैंड जाने पर बिरादरी से निकाल दिया जाता था। राजा साहब ताजपुर और उनके भाई (श्री श्याम शिव, शिवनाथ शिव) इंग्लैंड पढ़ने गये तो उनका जातीय बहिष्कार किया गया तथा उनको ईसाई बनना पड़ा। कपूरथला के राजा को भी ईसाई बनना पड़ा था। अब तो इस पोप मण्डल के सब हौंसले परस्त हो गये हैं। चाहे जिस देश में जाओ-आओ। बिरादरी कुछ नहीं कर सकती। परन्तु करपात्री, पुरी के शंकराचार्य आदि अब भी विदेश जाने के विरुद्ध हैं। 'किसके हाथ का भोजन खाओ' इस विषय में स्वामी जी कहते हैं कि आर्यों के यहां भोजन बनाने वाले शूद्र हों इस सम्बन्ध में स्वामी जी आपस्तम्ब धर्मसूत्र का प्रमाण देते हैं—"आर्याधिष्ठिता वा शूद्रः संस्कर्त्तारःस्युः।"

आ० ध०।प्रश्न २१ पटल २।ख० ३।४

ठीक ही है भोजन बनाने का काम शास्त्री, आचार्य और एम० ए० थोड़े ही करेंगे। यह तो अपढ़ ही करेंगे, किन्तु वे सब अपने काम निपुड़ होंगे और शुद्ध स्वच्छ रहेंगे। स्वामी जी ने मनु का श्लोक दिया है - "अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणी च ॥"५।५

और—"वर्जयेन्मधुमांसं च ॥२।१७७॥"

स्वामी जी अशुद्ध स्थानों में उत्पन्न हुए अन्न और फलों को अभदय ठहराते हैं, शराब और मांस को अभक्षय ठहराते हैं। जो भोजन हिंसा से आव, बुरे साधनों चोरी आदि से आवे, अरूचि, अक्षह्ला से खिलाया जाय, अशुद्ध से, वे

सब निषिद्ध हैं। अण्डे जीव सहित हों वा जीव रहित, अशुद्ध हैं। क्योंकि आयु बढ़ाते और बुद्धि को तमोगुणी बनाते हैं। मूत्र पीना महाघृणित कर्म है। उसके स्थान पर अन्य औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। शास्त्र-ज्ञान-शून्य क्षुद्र बुद्धि वाले नेताओं का अनुसरण नहीं करना चाहिए।

अब श्री स्वामी जी ने गौ रक्षा के विषय में जो विचार दिए हैं वह बड़े उत्तम हैं। पढ़िये—"जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे उसका मध्य भाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होता है, कोई गाय अट्ठारह और कोई छः महीने तक दूध देती है, उसका मध्य भाग बारह महीने हुए। अब प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से २४६६० (चौबीस सहस्र नौ सौ साठ) मनुष्य एक बार में तृप्त हो सकते हैं। उसके छः बछिया छः बछड़े होते हैं। उनमें से दो मर जायें तो भी दस रहे। उनमें से पांच बछड़ियों के जन्म भर के दूध को मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं। अब रहे पाँच बैल, वे जन्म-भर में ५००० (पाँच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं। उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावे तो अढ़ाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिलाकर ३७४८०० (तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त होते हैं। दोनों संख्या मिला के एक गाय की एक पीढ़ी में ४७५६०० (चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ) मनुष्य एक बार पालित होते हैं और पीढ़ी पर पीढ़ी बढ़ाकर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन होता है। इससे भिन्न गाड़ी सवारी भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूध में अधिक उपकारक होती है परन्तु जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंस भी हैं, परन्तु गाय के दूध घी से जितने बुद्धि वृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं, इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है। और जो कोई अन्य विद्वान होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से २५६२० (पच्चीस सहस्र नौ सौ बीस) आदमियों का पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, ऊँट, भेड़, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा। देखो ! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे

जाते थे, तभी आर्यवृत्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द से मनुष्यादि प्राणी वर्त्तते थे, क्योंकि दूध घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्फल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी माँसाहारी इस देश में आकर गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानि राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ोतरी होती जाती है। क्योंकि—

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम् ॥ [चाणक्य नीति १०।१३]

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल फूल कहाँ से हो?"

स्वामी जी शिकार के विषय में बताते हैं कि 'यह राजपुरुषों का कार्य है के जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हैं उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें।' इन पंक्तियों से सिद्ध होता है कि स्वामी जी शौकिया शिकार के विरुद्ध हैं। शौकिया शिकार का परिणाम यह हुआ कि कई पशु पक्षियों की नस्लें नष्ट हो गईं और अब सरकार ने सिंहों के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाकर सिंहों की रक्षा की है। स्वामी जी मांस भखण के बिल्कुल विरुद्ध हैं। शिकार किए हुए पशु का मांस भी नहीं खाना चाहिए। स्वामी जी कहते हैं—"(शिकार किए पशु का (माँस) चाहे फेंक दें, चाहे कुत्ते आदि मासाहारियों को खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है।"

यह पंक्तियां यह बताती हैं कि स्वामी जी मांस खाने के घोर विरोधी हैं। एक साथ खाना और जूठा खाना इसको स्वामी जी गलत समझते हैं। पति-पत्नी भी एक-दूसरे की जूठ न खायें। सबके हाथ का भोजन खाने में स्वामी जी को आपत्ति है क्योंकि सबके शरीरों के रक्त कण एक से नहीं होते। कई गिरी हुई जातियां और जंगली जातियां वा मुसलमान जो कि पाखाना जाकर न हाथ मांजते हैं और व बर्तन। मशक भीतर से कभी नहीं धुलती और टोंटीदार लोटे की नली भीतर से कभी नहीं धुल सकती। मुसलमानी औरतें महीनों तक एक ही पाजामा पहन कर और जूते पहन कर रोटी बनाती हैं। और घई में से रोटी निकाल कर उसी पांव पर झाड़ती हैं। ऐसे भोजनों को महात्मा गांधी के चेले ही खा सकते हैं। कोई बुद्धिमान नहीं। स्वामी जी कहते हैं, "जैसे मियां जी के रसोई के स्थान में कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, कहीं जूंठी रकेबी, कहीं हाड़-गोड़ पड़े रहते हैं। और मक्खियों का तो क्या कहना! वह स्थान ऐसा बुरा लगता है कि जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे बात होने का भी सम्भव है और उस दुर्गन्ध स्थान के समान ही वही स्थान दीखता है।"

अब इन सर्व भक्षी नेताओं से पूछिये कि ऐसी जगह का भोजन बुद्धि को नष्ट करेगा या बढ़ायेगा। मुसलमानों के हाथ का भोजन करने से पूर्व मुसलमानों को तो भी यह शिक्षा दे कि वे वैज्ञानिक बातों का विरोध न करें। थूक को कोई मुसलमान घृणा नहीं करता। एक ही मटके में कुल्हड़ डाल-डाल कर सब पानी पीते जाएँगे। सब के होठों से लगा हुआ कई तोला थूक उस मटके में पहुंच जायेगा। अब यह बीमारी करेगा या स्वास्थ्य ठीक करेगा? महात्मा गांधी के चेलों को वैज्ञानिक शुद्धि पर तो ध्यान देना चाहिए। जब मुसलमान इनकी युक्ति युक्त सही बात को नहीं मानते तो यह उनकी गलत बात को स्वीकार करके अशुद्धि का प्रचार क्यों करते हैं? स्वामी जी ने वैधक के अनुसार शुद्धि पूर्वक भोजन का विधान किया है।

स्वामी जी रोटी और पूड़ी का भेद जैसा आजकल ब्राह्मण करते हैं, उसे व्यर्थ समझते हैं। हां यात्रा में जाओ तो रोटी और भात काम नहीं देगा। वहां पूड़ी, मठरी और शक्कर पारे ही ले जाओ परन्तु घर पर बनियों और खत्रियों के हाथ की ब्राह्मण पूड़ी तो खा लेंगे परन्तु रोटी और भात नहीं खायेंगे। यह सब व्यर्थ रिवाज हैं। स्वामी जी कहते हैं कि आर्यों का भोजन सम्मिलित होना चाहिए। देखो स्वामी जी की सम्मति, "जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहींक्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री-पुरुष रसोई बनाने, चौका देने, बर्तन-भांडे मांजने आदि बखेड़े में पड़े रहें तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी नहीं हो सके।"

यह है स्वामी जी की खान-पान में सम्मति, जिसे अब सनातन धर्मी भी अपनाते जाते हैं। आगे स्वामी जी ने बड़े तत्त्व की बात लिखी है—"परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है।"

आगे स्वामी जी फिर कहते हैं, "विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना

वा पढ़ाना तथा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयाशक्ति, मिथ्या भाषणादि कुलक्षण, अविद्या का प्रचारादि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पञ्च बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पाँच सहस्र वर्ष के पहिले हुई थीं, उनको भी भूल गये ? देखो ! महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते-पीते थे, आपस की फूट से कौरव पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है, न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःख सागर में डूबा मारेगा ?"

उक्त पंक्तियों में स्वामी जी के हृदय की वेदना प्रकट हो रही है। आर्य राष्ट्र की अवनति ऋषि को कितना दुःख है। क्या हमारे सनातन धर्मी सन्यासी महन्त और पण्डित इस पर ध्यान देंगे ? यह राजनैतिक नेता जो भ्रष्ट और श्रेष्ठ, शुद्ध और अशुद्ध सबका खान-पान एक करना चाहते हैं। क्या वह विचारेंगे कि खान-पान की एकता से ही काम न चलेगा किन्तु उक्त गुण भी होने चाहिए। स्वामी जी ने लिखा है कि जब तक सुख-दुःख, हानि-लाभ को सब एक न समझें तब तक एकता नहीं होती। पूरा राष्ट्र देश की हानि-लाभ और सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख और हानि-लाभ समझें। आगे स्वामी जी फिर कहते हैं—

"जब भूगोल में एक वेदोक्त मत था, उसी में सब की निष्ठा थी और एक-दूसरे का सुख-दुःख, हानि-लाभ आपस में अपने समान समझते थे, तभी भूगोल में सुख था।"

स्वामी जी चाहते थे कि सार्वभौम एकता रहे। आजकल भी सार्वभौमिक एकता का प्रयास प्रत्येक देश कर रहा है। मुस्लिम देश ईसाई देशों से सहायता ले रहे हैं। ईसाई देश मुसलमानों को मित्र बना रहे हैं। भारत वर्ष तो किसी भी देश से द्वेष नहीं रखता और सबकी सहायता को तैयार रहता है। वेदोक्त शब्द का स्वामी जी ने इस कारण प्रयोग किया है कि वेद आदि सृष्टि के धर्म पुस्तक हैं। जो सब मत वालों के लिए एक से ही हैं। अपने-अपने मतों पर चलते हुए भी यदि सब मत वाले वेद को भी मान्यता दें तो सब भूगोल में भावनात्मक एकता हो जाय। वेद ही क्यों महत्वपूर्ण हैं, इसके लिए मिस्टर जैकालियर जो कि फ्रेन्च थे, चन्द्रनगर बंगाल के जज थे। उनकी लिखी

पुस्तक 'बाइबिल इन इण्डिया' पढ़ी जाय तो जान सकोगे कि सब मतों ने भारत के धार्मिक साहित्य से सहायता ली है। भारत संसार-भर के मनुष्यों की गुरु भूमि है। और वेद सबका सर्व मान्य पुस्तक होना चाहिए।

राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय दृढ़ता के लिए स्वामी जी का सिद्धान्त—

"जब तक एक मत, एक हानि-लाभ, एक सुख-दुःख परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना-पीना एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है। विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना, पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयाशक्ति, मिथ्याभाषादि, कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं।"

यही उपदेश अथर्ववेद के इस मन्त्र में है—

सत्यं बृहद् तम उग्रां दीक्षा तपः ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरू लोकं पृथिवीं न कृणोतु। अथर्व १०।१।

अर्थात् सत्य भाषण, सत्य आचरण, सत्य व्यवहार, बृहत्-उच्च विचार, उच्चादर्श, ऋतण्—प्रकृति के वैज्ञानिक नियमों के अनुसार चलना, उन्हीं के अनुसार विधान बनाना, जैसा कि मनु ने बताया है। उग्रां—वीर भावों से युक्त रहना। दीक्षा—संयम के साथ राष्ट्र के नियमों का पालन करना। एकता के साथ रहना। तपः—राष्ट्र के लिए आ पड़े तो कष्ट भी सहना। ब्रह्म—ज्ञान, सदाचार, बल, ईश्वर भक्ति का होना। यज्ञः—एक-दूसरे की सहायता करना, कार्यों को संगति पूर्ण करना, जन हित कार्यों में सहयोग (Co-Opration) रखना। राष्ट्र के यह गुण पृथिवी को धारण करते हैं। अर्थात् देश की रक्षा करते हैं। उपर्युक्त गुणों से युक्त समाज ही स्वाधीन रह समता है। और देश की रक्षा कर सकता है। ऐसी ही शिक्षा दशम् समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने राष्ट्र को दी जो अत्यन्त उपकारक है। देश में आज भी देश-भक्ति के लिए एक मत नहीं पाया जाता। करोड़ों व्यक्ति आज भी भारत में वह हैं जो विदेशों के भक्त हैं।

●

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द संस्थान

[पंजीकृत—न्यास] द्वारा प्रकाशित

प्रमुख वैदिक साहित्य की सूची

१. सम्पूर्ण वेद भाष्य : ४ जिल्दों में २८४)
२. सम्पूर्ण वेद भाष्य : ३ जिल्दों में २७१)
३. सम्पूर्ण वेद भाष्य : २ जिल्दों में २५०)
४. सम्पूर्ण वेद भाष्य आर्ट पेपर पर ६०४)
५. यजुर्वेद भाष्य महर्षि दयानन्द कृत सजिल्द मूल्य: ३०)
६. अर्थववेद परिचय: पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड ६)
७. अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र : विद्यामार्तण्ढ स्वामी ब्रह्ममुनि जी कपड़े की सुनहरी जिल्द (द्वितिय संस्करण) मूल्य १५)
८. वेदामृत । पृष्ठ ४०० से अधिक : सजिल्द मूल्य १०)
९. शतपथ ब्राह्मण प्रथम काण्ड) : स्वामी समर्पणानन्द जी २५)
१०. संक्षिप्त महाभारत : स्व० पं० सन्तराम मूल्य १०)
११. सामवेद भाष्य सजिल्द मूल्य २५)
१२. वैदिक गीता भाष्य सजिल्द मूल्य १५) : सुनहरी जिल्द २०)
१३. वेदांजलि सजिल्द मूल्य १५) डिलक्स २०)
१४. अपने प्रभु से : प्रार्थना सजिल्द मूल्य १०)
१५. श्री मद्दयानन्द प्रकाश : सजिल्द मूल्य ८) अजिल्द मूल्य ६)
१६. अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या सजिल्द मूल्य १०)
१७. वेदों का यथार्थ स्वरूप सजिल्द मूल्य १०)
१८. उपनिषद् संग्रह : महात्मा नारायण स्वामी जी सजिल्द ८)
१९. वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण सजिल्द मूल्य ८० पैसे
२०. वैदिक अर्थनीति—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ४० पैसे
२१. वैदिक अर्थशास्त्र परिचय : पं० भारतेन्द्र नाथ १)

२२. क्या वेद में माँस भक्षण का विधान है ? लेखक--आचार्य शिवपूजन जी, कानपुर मूल्य १)
२३. वेद और बाईबिल—दीनानाथ सिद्धाँतालंकार मूल्य १)
२४. मोक्ष का वैदिक धर्म—आचार्य वैद्यनाथ योगीराज पथिक मूल्य १)
२५. वैदिक सिद्धान्त—पं० यशःपाल सिद्धाँतालंकार ३)
२६. गायत्री शतक—पं० शिवदयालु आर्य मूल्य २)
२७. ईश्वर भक्ति—स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती मूल्य १)५०
२८. माँ गायत्री : तृतीय संस्करण मूल्य १)५०
२९. धर्म का मार्ग—पं० सुरेशचन्द्र विद्यालंकार मूल्य १)
३०. अमृतपथ—पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार सजिल्द ५
३१. नारायण अध्यातम सुधा—श्री महात्मा नारायण स्वामी १)
३२. शतक-त्रयी पं० शिवदयालु जी आर्य मूल्य १)५०
३३. उपनिषद्-वचनामृत—पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार मूल्य १)
३४. ईशोपनिषद्—पं० हरिशरण सिद्धांतालंकार मूल्य १)
३५. उपनिषद् त्रयी—पं० शिवदयालु आर्य मूल्य १)५०
३६. स्वर्ण पथ—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती अजिल्द १)५०
३७. वैदिक धर्म ही क्यों ? महात्मा नारायण स्वामी ५० पैसे
३८. महान् अनुपमेय—ऋषिराज स्वामी दयानन्द मूल्य १)५०
३९. धर्म का सार : ९ कथाएं मूल्य १)
४०. आर्याभिविनय (काव्यमय व्याख्या) मूल्य १)५०
४१. प्रभु के चरणों में—हरिशरण सिद्धांतालंकार मूल्य १)५०

अन्य उपयोगी साहित्य

४२. ऋषि दयानन्द ने कहा था मूल्य १)५०
४३. योगेश्वर श्रीकृष्ण—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ६० पैसे
४४. १८५७ के भूले बिसरे शहीद—बनारसी सिंह मूल्य १)५०
४५. कल्याण का मार्ग—श्री जगन्नाथ पथिक मूल्य २५ पैसे
४६. यज्ञ प्रसाद—महात्मा आनन्द स्वामी जी मूल्य ६० पैसे

विवाह पर बांटने योग्य

४७. वैदिक गृहस्थाश्रम विद्यामार्तण्ड पं० विश्वनाथ जी ८)
४८. धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम
लेखक—पं० शिवकुमार शास्त्री महामहोपदेशक अजिल्द २)
४९. आदर्श परिवार—श्री युगल किशोर चतुर्वेदी मूल्य ६० पैसे

आर्यसमाज सम्बन्धी साहित्य

५०. स्वामी दयानन्द (जीवन चरित्र) सजिल्द ६) अजिल्द २)
५१. ज्योति स्तम्भ मूल्य ६)
५२. आर्य क्रांतिकारी—श्री बनारसीसिंह मूल्य ३)
५३. विश्व का आर्यसमाज को सन्देश
—पं० भारतेन्द्र नाथ मूल्य ३० पैसे

महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थ

५४. सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी संस्करण अजिल्द मूल्य ३)
५५. ,, ,, राज संस्करण सजिल्द मूल्य ६)
५६. ,, ,, उपहार संस्करण कपड़े की बढ़िया जिल्द ८)
५७. ,, ,, अनुपम शताब्दी संस्करण १० × १५ इंच
का बड़ा साइज ५१)
५८. ,, ,, अनुपम शताब्दी संस्करण १० × १५ इंच
सुनहरी जिल्द आर्ट पेपर पर १०१)
५९. संस्कार विधि : (बड़ा साइज) सजिल्द मूल्य ६)
६०. संस्कार विधि : (छोटा साइज) अजिल्द ४)
६१. व्यवहारभानु : स्वामी दयानन्द सरस्वती मूल्य ४० पैसे
६२. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश मूल्य २० पैसे
६३. मूर्तिपूजा की हानियां मूल्य २० पैसे

६४. आर्योद्देश्य रत्नमाला मूल्य २० पैसे
६५. उपदेश मञ्जरी महर्षि के व्याख्यान मूल्य २)

अन्य साहित्य

६६. बोध रात्रि (महाकाव्य) मूल्य ६)
६७. गीत मंजरी (नया तीसरा संस्करण) मूल्य २)५०
६८. आर्यसमाज के आधार—स्वामी सत्यानन्द मूल्य १)४०
६९. प्रार्थना सुमन—चन्द्रभानु सिद्धान्त भूषण मूल्य १)
७०. आदर्श सुधारक—स्वामी दयानन्द सरस्वती :
श्री देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय मूल्य ६० पैसे
७१. ब्रह्माकुमारी-मत समीक्षा । पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार मूल्य २५ पैसे
७२. सत्संग महिमा : स्वामी वेदानन्द तीर्थ मूल्य ४० पैसे
७३. वैदिक संध्या ३२ पृष्ठ मूल्य २० पैसे
७४. श्रद्धांजलियां मूल्य १)४०

प्रचार पुस्तिकाएं (ट्रैक्ट)

७५. आर्यसमाज क्या मानता है ? श्री मदनमोहन विद्यासागर मूल्य २० पैसे
७६. महर्षि दयानन्द की विशेषताएं : महात्मा नारायण स्वामी मूल्य २० पैसे
७७. आर्यसमाज की विचारधारा : पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय मूल्य २० पैसे
७८. आर्यसमाज की मान्यताएं, पं० रामचन्द्र देहलवी २० पैसे
७९. विश्व को वेद का सन्देश : पं० भारतेन्द्र नाथ मूल्य २० पैसे
८०. आर्यसमाज के दस नियम : व्याख्या सहित मूल्य २० पैसे
८१. निमन्त्रण आर्यसमाज का : स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय मूल्य २० पैसे
८२. आर्यसमाज के १०० वर्ष : पं० भारतेन्द्र नाथ मूल्य २० पैसे

८३. सुख का मार्ग : पं० भारतेन्द्र नाथ — मूल्य २० पैसे
८४. आर्य कौन : पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार — मूल्य २० पैसे
८५. स्वास्थ्य का महान शत्रु : अण्डा
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती — मूल्य २० पैसे
८६. साम्यवाद—समाजवाद क्यों नहीं ?
महात्मा नारायण स्वामी — मूल्य २० पैसे
८७. वेद महिमा — मूल्य २० पैसे
८८. उपनयन का महत्व — मूल्य २० पैसे
८९. स्वामी दयानन्द सरस्वती : संक्षिप्त जीवनी — मूल्य २५ पैसे

ईसाईयत सम्बन्धी साहित्य

९०. पोप की सेना का भारत पर हमला — मूल्य २० पैसे
९१. बाइबिल को चुनौती — मूल्य २० पैसे
९२. बाइबिल कसौटी पर — मूल्य २० पैसे

विविध साहित्य

९३. वेद ज्योति — सजिल्द मूल्य ६)। अजिल्द ४)
९४. बाल सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी जगदीश्वरानन्द — मूल्य २)५०
९५. भाई परमानन्द : जीवन चरित्र—वनारसी सिह — २)
९६. वन्दना के स्वर : क्षेमचन्द्र सुमन — सजिल्द मूल्य १५)
९७. बाल्मीकि रामायण (संक्षिप्त) श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री — मूल्य ३)
९८. दयानन्द चित्र-दर्शन — मूल्य २०)
९९. ज्ञान दर्शन : लेखक डा० भवानीलाल भारतीय
एम० ए० पी० एच० डी० — सजिल्द मूल्य १०)

१००. दयानन्द चित्रकथा— — मूल्य ५० पैसे
१०१. चार फल— — मूल्य ३० पैसे
१०२. योग की राह पर : — मूल्य ५० पैसे
१०३. पातंजल योगशास्त्र : — मूल्य १)
१०४. भारत की अवनति के सात कारण — मूल्य ६० पैसे
१०५. शक्ति रहस्य : पं० यशपाल सिद्धान्तालंकार मूल्य — १)५०
१०६. बृहस्पति राज धर्म सूत्र — मूल्य २)
१०७. उपनिषद कथा माला : महात्मा नारायण स्वामी — १)
१०८. अध्यात्म योग : पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार
(कपड़े की जिल्द) मूल्य ८)
१०९. स्वामी श्रद्धानन्द (जीवन परिचय) — मूल्य ४० पैसे
१०. महर्षि दयानन्द का ऐक्यवाद — मूल्य १)
१११. महर्षि दयानन्द ऐतिहासिक संस्करण — मूल्य १)
११२. राष्ट्रवादी दयानन्द — मूल्य १)
११३. ईश्वर : वैज्ञानिकों की दृष्टि में — मूल्य १५)
११४. जनज्ञान—(शताब्दी विशेषाँक) — मूल्य १०)
११५. योग और ब्रह्मचर्य (सचित्र) — मूल्य १)५०